नेहरू—विश्वशांति की खोज में

हमारे अन्य प्रकाशन

राख की परतें

मिट्टी का कलंक

काश्मीर की बेटी

मेरे नाटक

ख़त और ख़ुशबू

बावन पत्ते

जीना सीखो

आग

आँसू

बुरदा फरोश

प्रेम पुजारिन

चान्द सितारे

कौन किसी का ?

उसकी कहानी

पति-पत्नी-प्रेम

राजकुमारी की प्रेम-कहानी

शैतान पुजारी

क्रांतिकारी रमणी

फांसी की कोठरी से

शाही लकड़हारा

पायल

एक ही पतवार

चारसौ बीस

'नेहरू विश्वशांति की खोज में'

तथ्यों और आंकड़ों से युक्त एक प्रमाणिक विवरण

लेखक

श्री ओम प्रकाश गुप्ता

प्रकाशक

नारायण दत्त सहगल एण्ड संस

देहली

प्रकाशक
नारायण दत्त सहगल एण्ड संस
देहली

[प्रथम संस्करण]
मूल्य—चार रुपये, आठ आने

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, देहली

समर्पण

विश्व की उस महान जनता को जिसने उपनिवेशों के
विरुद्ध स्वाधीनता के लिए और युद्ध के विरुद्ध
शांति के लिए अपने संघर्ष को सुदृढ़ बनाकर
युद्ध से भयभीत विश्व को राहत और
शांति प्रदान करने में योग
दिया है।

भारतीय अपने राज्य के स्वर्णकाल में भी आक्रान्ता नहीं रहे। उनकी सभ्यता, धर्म और कला का प्रभाव शांतिपूर्ण उपायों से प्रसारित हुआ। भारतीयों की नम्रता और शांतिप्रियता सुविदित है, और उन्होंने उपनिवेशवादियों के विरुद्ध अपने हाथ तभी उठाए, जब वास्तव में उनकी निराशा की कोई सीमा न रही। नये गणतन्त्र के सामने इस समय यह कठिन काम है कि औपनिवेशक शासन के दौरान भारतीयों ने जो समय गँवाया है, उन सबकी पूर्ति कुछ वर्षों के भीतर करली जाए। उन्हें उन सब राष्ट्रों की भांति जो सृजनात्मक कामों में लगे हैं, शांति चाहिए।

इलिया एहरेन बुर्ग

प्रस्तावना

'नेहरू विश्व शांति की खोज में' एक तरुण कलम की उत्सुक दृष्टि को नई दुनियां के सम्मुख उपस्थित करती है। गांधी ने जो राजनीति में धर्मनीति का आरोप किया था, उसका प्रतिनिधित्व करते हुए पूर्व का ज्योतिस्तम्भ, यह नेहरू जो प्रकट में तो भारतीय गणतन्त्र का महामात्य मात्र है, पर जो विश्व के मनुष्यों को अभयदान देने के लिए विश्व की शक्तियों को अपनी ओर अभिमुख कर रहा है, आज के मनुष्यों का सबसे बड़ा त्राता है। तरुण लेखक ने उस वैकल्य और प्रतिक्रिया का विश्व को आगे बढ़ती हुई विनाशक प्रवृत्ति की पृष्ठ-भूमि पर विहंगम दृष्टि डालते हुए—एक रेखा-चित्र हमारे सम्मुख रखा है। जिससे आगे आने वाली पीढ़ी यह देख सकेंगी कि विश्व के राजनीतिज्ञ धुरीण-जन जब केवल अपने सामूहिक स्वार्थों पर त्याग और साहस का मुलम्मा चढ़ा कर जन जीवन को त्रस्त कर रहे हैं, तब भारत की राजनीति का यह शीर्ष-स्थानीय पुरुष विश्व के मनुष्यों को अभयदान देने के लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगा रहा है।

पुस्तक में मार्के की बात यह है कि लेखक ने अपने विचारों को पाठकों पर लादा नहीं हैं। वह केवल एक गम्भीर दृष्टा है, उसने विश्वात्मा नेहरू को भीतर बाहर जैसा देखा है, वैसा ही वह पाठकों के सम्मुख रख रहा है। उसके इस प्रयास में उसकी निर्लेप कामना का व्यक्तिकरण तो है ही, साथ ही विगत चालीस वर्षों की विश्व राजनीति का गहन अध्ययन का प्रकटीकरण भी है। जिससे लेखक की मननशील प्रवृत्ति प्रकट होती है। मैं हृदय से इस पुस्तक के सम्बन्ध में कामना करता हूं कि वह पाठकों की दृष्टि में वह आदर पाये जिसके लिए कि वह सर्वथा उपयुक्त है।

ज्ञानधाम प्रतिष्ठान **—आचार्य चतुरसेन शास्त्री**

१०-६-५६

लेखकीय

'नेहरू विश्व-शांति की खोज में' मेरी पुस्तक आज से एक वर्ष पूर्व लिखी जा चुकी थी, यानी जब पंडित नेहरू सोवियत संघ से लौटे थे, परन्तु प्रकाशक महोदय के शीघ्र प्रकाशन के अनुरोध के पश्चात् भी मैं अपनी लम्बी बीमारी के कारण इसे उन्हें प्रकाशन के हेतु न दे सका, और आजकल-आजकल करते वह दिन भी आगया जब सोवियत नेताओं ने भारत यात्रा की; ऐसी स्थिति में एक अध्याय मैंने भी जोड़ देना आवश्यक समझा, क्योंकि बिना उस अध्याय के पुस्तक अधूरी सी ही रहती। इस प्रकार आज से चार माह पूर्व यह प्रेस को दे दी गई, पर प्रेस में भी देर के बाद देर होती चली गई और इस बीच तथा पुस्तक लिखे जाने के पश्चात् दुनियां में बड़े-बडे परिवर्तन हुए। साम्यवादी देशों का संगठन (कामिन फार्म) भंग होने की घोषणा, पंचशील के आधार पर कई देशों के सम्बन्ध सुधार, युद्ध खोरों और उपनिवेशवादी-साम्राज्यवादियों का और भी पर्दा फाश हुआ मगर घटनाएँ तो घटती ही रहती हैं और इतिहास नया लिखा ही जाता है, इसलिए चाह कर भी मैं इसमें परिवर्तन नहीं कर सका, क्योंकि इतिहास कभी पुराना नहीं होता। यह भी इतिहास ही है 'विश्व शांति के प्रयत्नों का इतिहास' जिसकी भूमिका में पंडित नेहरू का भी प्रमुख हाथ रहा है।

इस सम्बन्ध में मैं एक बात तनिक स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि पंडित नेहरू से हमारे आपस के और चाहे कितने ही मामलों में मतभेद हों परन्तु उनके विश्व शांति प्रयत्नों का न केवल भारतीय जनता ने वरन् विश्व की महान जनता ने हृदय खोलकर स्वागत किया है, और सभी इस सम्बन्ध में एक राय हैं कि आज जो विश्वशांति की गारंटी देने की स्थिति पैदा हुई है, उसका श्रेय पंडित नेहरू को भी उतना ही है जितना किसी अन्य को अधिक से अधिक दिया जा सकता है।

मैंने इसकी भाषा की ओर विशेष ध्यान रखा है, पर फिर भी मैं अपने

बुजुर्ग पंडित सुन्दरलालजी की बात से सहमत हूँ कि इसकी भाषा और भी सरल हो सकती थी; मगर मेरा विचार था उससे भाषा का वह सौंदर्य न रहता जो इस समय है। हां कहीं कहीं भाषा में कुछ पांडित्य पूर्ण शब्द आगए हैं, उनको अगले संस्करण में मैं यथाशक्ति दूर करने की चेष्टा करूँगा।

मैं उन सभी ग्रन्थकारों, पत्र-पत्रिकाओं का अत्यन्त आभारी हूँ जिनसे मैंने इसके लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सहायता ली है। वैसे भरसक मैंने इस बात का प्रयत्न किया है कि उन सभी पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों का नाम यथा-स्थान दे दिया जाय, परन्तु मैं भी मनुष्य हूँ और भूल मनुष्य से ही होती है, हो सकता है कोई नाम छूट गया हो, इसके लिए मैं उनसे क्षमा प्रार्थी हूँ। क्षमा तो मुझे उन साहित्यकार मित्रों से भी मांगनी है, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इसे पढ़ा, इस पर अपनी सम्मतियां लिखीं परन्तु स्थानाभाव के कारण वह प्रकाशित न हो सकीं। इस सिलसिले में मैं साथी 'हंसराज रहबर' का नाम तो अवश्य ही लिखूंगा, जिन्होंने पहले इसकी भूमिका ही लिखी थी।

अब अन्त में मैं साथी मदन मोहन शर्मा का उल्लेख कर देना भी आवश्यक समझता हूँ जिनके प्रोत्साहन के कारण यह ग्रन्थ लिखा जा सका, मैं उनका आभारी हूँ।

इसमें क्या है, और इसे लिखने में मुझे कहां तक सफलता मिली है, यह निर्णय तो पाठक ही करेंगे। हां यदि इससे पाठकों की युद्ध के विरुद्ध शांति के लिए जानकारी बढ़ी और उन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में विश्व शांति के प्रयत्नों को सफल बनाने में तनिक भी सहायता दी तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

१५८६ सौदागरान — **ओमप्रकाश गुप्ता**

लालकुंआ, देहली ६ — **२६-६-५६**

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

(प्रति-क्रिया)

[प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् पैदा हुई परिस्थिति का पंडित नेहरू पर प्रभाव]

प्रथम महायुद्ध

आज मानवता के सामने एक आशंका है!

तीसरा महायुद्ध !

यह ठीक है कि हम भारतवासियों ने आधुनिक युद्ध अपनी आँखों से नहीं देखा, पर प्रथम और द्वितीय महायुद्ध से हमारा देश अछूता रहा हो, ऐसी भी बात नहीं हैं। पहला युद्ध योरोप में होता रहा, साम्राज्य विस्तार के लिये और व्यापारिक मण्डियों के लिये, जिसमें भारतवर्ष के कितने ही बहादुर गोलियों के शिकार हुये, यदि यों कहा जाय कि अंग्रेजों ने जर्मनी को पहले युद्ध में भारतीयों की लाशों पर चलकर विजय किया था तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि उस युद्ध के लिये पंजाब से राजी और जबरन दोनों ही तरह से रिकरूटों की भर्ती हुई थी, और वह होनहार युवक १६ रुपये में अंग्रेजों के हाथ बिक गये थे, उनके साम्राज्य को बढ़ाने के लिये, उनके व्यापार को उन्नति दिलाने के लिये और उनके व्यापार के लिये जर्मनी जैसे देश के व्यापार को नष्ट करने के लिये। क्योंकि जर्मनी ही उन दिनों एकमात्र प्रतिद्वन्दी था छोटे सामान के लिये जिसे आम जनता खरीदती थी। मगर उस युद्ध के पश्चात् लोगों को क्या मिला? बहादुरों के प्रान्त पंजाब को क्या मिला, युद्ध में काम आये वीरों की मां भारत को क्या मिला? इसे सब जानते हैं!

ज्योंही युद्ध समाप्त हुआ, देश पर नये-नये साम्राज्यी कानून जबरन लाद दिये गये। मंहगाई बढ़ गई, जलियां वाले बाग के रूप में पंजाबी और हिन्दुस्तानियों को युद्ध की विजय का पुरुस्कार मिला। और आजादी के आन्दोलन को बुरी तरह कुचल दिया गया। स्वयं पंडित नेहरू के शब्दों में—

'यूरोपियन महायुद्ध के अन्त में हिन्दुस्तान में एक दबा हुआ जोश फैला हुआ था। कल कारखाने जगह-जगह फैल गये थे और पूंजीवादी वर्ग धन और सत्ता में बढ़ गया था। चोटी पर के मुट्ठी भर लोग मालामाल हो गये थे और

उनके जी इस बात के लिये ललचा रहे थे कि बचत की इस दौलत को और भी बढ़ाने के लिये सत्ता और मौके मिलें। मगर आम लोग इतने खुश किस्मत न थे और वो उस बोझ को कम करने की टोह में थे कि जिसके तले वे कुचले जा रहे थे। मध्यम वर्ग के लोगों में यह आशा फैल रही थी कि अब शासन सुधार होंगे ही, जिससे सुराज के कुछ अधिकार मिलेंगे और उनके द्वारा उन्हें अपनी बढ़ती के नये रास्ते मिलेंगे। राजनैतिक आन्दोलन जोकि शान्त मय और बिल्कुल वैध था। कामयाब होता दिखाई देता था और लोग विश्वास के साथ आत्म-निर्णय, स्वसाशन और सुराज्य की बातें करते थे। इस अशान्ति के कुछ चिह्न जनता में भी, और खासकर किसानों में दिखाई पड़ते थे। पंजाब के देहाती इलाकों में जबरदस्ती रंगरूट भरती करने की दुखदायी बातें लोग अभी तक बुरी तरह याद करते थे और कोमागातामारू वाले दूसरे लोगों पर मुकदमे चलाकर जो दमन किया गया था उसने उनकी चारों ओर फैली हुई नाराजगी को और भी बढ़ा दिया। जगह-जगह लड़ाई के मैदानों से जो सिपाही लौटे थे वे अब पहले जैसे 'जो हुकुम' नहीं रह गये थे। उनकी जानकारी और अनुभव बढ़ गया था और उनमें भी बहुत अशान्ति थी।

'मुसलमानों में भी तुर्किस्तान और खिलाफत के मस्ले पर जैसा रुख अख्तयार किया गया उस पर गुस्सा बढ़ रहा था और आन्दोलन तेज हो रहा था। तुर्किस्तान के साथ संधिपत्र पर अभी हस्ताक्षर नहीं हो चुके थे, मगर ऐसा मालूम होता था कि कुछ बुरा होने वाला है, सो जहाँ वे एक ओर आन्दोलन कर रहे थे वहाँ दूसरी ओर इन्तजार भी कर रहे थे। देश भर में प्रतीक्षा और आशा की हवा जोर पर थी, लेकिन उस आशा में चिन्ता और भय समाये हुये थे। इसके बाद रौलट बिलों का दौर हुआ, जिसमें कानूनी कार्रवाई के बिना भी गिरफ्तार करने और सजा देने की धारायें रखी गयी थीं। सारे हिन्दुस्तान में चारों ओर उठे हुये क्रोध की लहर ने उनका स्वागत किया, यहां तक कि माडरेट लोगों ने भी अपनी पूरी ताकत से उनका विरोध किया था। और सच तो यह है कि हिन्दुस्तान के सब विचार और दल के लोगों ने एक स्वर से उनका विरोध किया था। फिर भी सरकारी अफसरों ने उनको कानून बनवा ही डाला, और

खास रियायत सच पूछो तो यह की गई कि उनकी मियाद तीन वर्ष रख दी गई।' (मेरी कहानी पृष्ठ ६८-६९)

हमारे देश की युद्ध के पश्चात् उस समय ऐसी दशा थी। अब तनिक मुख्य घटना जलियान वाले बाग की ओर भी एक दृष्टि डालिये, क्योंकि उसके बिना वास्तविक स्थिति का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता।

युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने सोच लिया था कि हमने न केवल जर्मन विजय किया है, वरन् विश्व विजय प्राप्त की है, और जिस प्रकार किसी गर्वीले आदमी को एक सफलता मिलजाने के पश्चात् गर्व अत्यधिक बढ़ जाता है बिल्कुल यही दशा अंग्रेजों की भी थी। जर्मन की विजय से उनका दिमाग सातवें आस्मान पर जा चढ़ा और हिन्दुस्तान में उन्होंने अपना रौब दिखाना आरम्भ कर दिया, क्योंकि हिन्दुस्तान अंग्रेजी उपनिवेशों में न केवल सब से बड़ा था, बल्कि माली हालत भी इसकी बहुत अच्छी थी, और जितना आर्थिक लाभ अंग्रेजों को अपने शेष उपनिवेशों से होता था, उन सबसे कई अधिक गुना लाभ केवल भारत से होता था। यही कारण था कि जहाँ देश की जनता एक ओर सुराज की मांग कर रही थी, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज उसे बुरी तरह से दलबल के साथ कुचल रहे थे।

बात यों हुई, जब अंग्रेजों ने देश पर रौलट कानून लाद दिया तो महात्मागांधी ने उसके विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ दिया। उन्होंने सत्याग्रह आरम्भ करने से पहले सत्याग्रह सभा की जिसके मेम्बरों से यह प्रतिज्ञा कराई गई थी कि उनपर लागू किये जाने पर रौलट कानून को वे न मानेंगे या यों कहना चाहिये कि जानबूझ कर उन्होंने जेल जाने की तैयारी की थी। पर उसी समय देश की दशा बदल गयी और गांधी जी को सत्याग्रह स्थगित करना पड़ा। पंडित नेहरू के शब्दों में "सत्याग्रह दिवस सारे हिन्दुस्तान में हड़तालें और तमाम काम काज बन्द—दिल्ली, अमृतसर और अहमदाबाद में पुलिस और फौज का गोली चलाना और बहुत से आदमियों का मारा जाना—अमृतसर और अहमदाबाद में भीड़ के द्वारा हिंसा काण्ड हो जाना—जलिया वाला-बाग का हत्याकांड, पंजाब में फौजी कानून के भीषण, अपमानजनक और जी दहला देने वाले कारनामे। पंजाब मानों

दूसरे प्रान्तों से अलग काट दिया गया हो, उस पर मानो दुहरा परदा पड़ गया था जिससे बाहरी दुनियां की आंखें उस तक नहीं पहुंच पाती थीं। वहाँ से मुश्किल से कोई खबर मिलती थी और कोई वहाँ से न जासकता था न वहाँ से आही सकता था।

'कोई इक्का-दुक्का जो किसी तरह नरक कुड से बाहर आ पहुँचता था, इतना भयभीत हो जाता था कि साफ-साफ हाल नहीं बता सकता था। हमलोग जो बाहर थे, असहाय और असमर्थ थे, छोटी-बड़ी खबर का इन्तजार करते रहते थे और हमारे दिल में कटुता भरती चली जा रही थी। हम में से कुछ लोग फौजी कानून की परवा न करके खुल्लम-खुल्ला पंजाब के उन भागों में जाना चाहते थे, लेकिन हमें ऐसा नहीं करने दिया गया और इस बीच कांग्रेस की ओर से दुखियों और पीड़ितों को सहायता पहुँचाने तथा जांच करने के लिये एक बड़ा संगठन बनाया गया।'

जलियावाला बाग

१३ अप्रैल को जलियावाला बाग में एक विराट सभा हुई थी जिसमें लग-भग २० हजार मनुष्य थे। भीड़ में मांऐं और बहिनें अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ थीं, कुछ मांऐ दूध पीते बच्चों को गोद में लिये बैठी थीं। लाला हँसराज व्याख्यान दे रहे थे। उसी समय पंजाब का लेफ्टीनेन्ट गवर्नर ओ डायर सैनिकों सहित उस बाग के बाहर पहुँचा। उसने बिना कोई हुक्म सभा को भंग कराने का दिये बाग के दर्वाजों पर २५-२५ सैनिक खड़े कर दिए और फायर का हुक्म दे दिया। कितने ही लोग मारे गये थे, कितने ही अपंग हो गये और कितने ही घायल हुये। सन् १९५७ के बाद अंग्रेजों का भारत पर यह सबसे अधिक अत्याचार था।

श्रीयुत ख्वाजा अब्बास अली बेग ने हंटर कमीशन और डायर के सवाल-जवाबों को बड़े उत्तम ढंग से लिखा है। ख्वाजा महोदय अपनी न्याय प्रियता के लिये प्रसिद्ध थे, और ईमानदारी के लिये भी।

'दंगे की जाँच करने के लिये जो हंटर कमीशन बैठा था उसके सामने बयान देते हुये जनरल डायर ने कहा—"मैंने वहाँ पहुंचते ही गोलियाँ दागनी आरम्भ कर दीं।"

कमीशन का प्रश्न—"क्या तुरन्त ?"

डायर—"हाँ, तुरन्त। मैंने इस पर पहले ही विचार कर लिया था और अपना कर्तव्य सोचने में मुझे तीस सैकिण्ड से अधिक न लगा।"

कमीशन के सामने डायर ने यह भी स्वीकार किया कि—"सम्भव है, सभा में उपस्थित बहुतेरे मनुष्यों ने मेरी मनाही की आज्ञा न सुनी हो।"

कमीशन के अध्यक्ष लार्ड हंटर ने पूछा—"यह जानकर भी तुमने भीड़ को पहले तितर बितर होने के लिये सावधान नहीं किया ?"

डायर—"नहीं, उस समय मैंने यह नहीं सोचा। मैंने यही समझा, कि मेरी आज्ञा नहीं मानी गयी। सभा करके मार्शल्ला की उपेक्षा की गई। इसीलिये मैंने गोलियाँ चलाना जरूरी समझा।"

कई प्रश्नोत्तर के बाद उस रक्त पिपासु जेनरल डायर ने कहा कि—"मैंने दस मिनट तक उस भीड़ पर धुँआधार गोलियाँ चलायीं। मैंने भीड़ को हटाने का उद्योग नहीं किया। मैं बिना गोलियाँ चलाये भी भीड़ को हटा सकता था; पर इससे लोग मेरी हँसी उड़ाते। कुल मिलाकर १६५० गोलियाँ दागी गयीं थीं। गोली बरसाना तभी बन्द किया गया, जब वे खत्म हो गयीं। सभा में भीड़ बहुत ही घनी थी, जहाँ गोलियाँ चलाई गईं।" जेनरल डायर ने यह भी स्वीकार किया कि घायलों को उठाने और उनकी मदद करने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। उसने कहा—"उस समय उन घायलों की मदद करना मेरा कर्तव्य नहीं था।"

लाला गिरधारीलाल का मकान जलियावाला बाग के निकट ही था, और उनके मकान से बाग दिखाई भी देता था। डायर की गोलियों का दृश्य वह अपने घर से देख रहे थे, और उनका बयान है कि—"मैंने उस जगह सैकड़ों को मरते देखा। गोलियाँ बाग के दरवाजों की ओर ही चलती थीं, जिधर से मनुष्य भागने की चेष्टा कर रहे थे मैंने घूम-घूम कर वह स्थान देखा और जगह-जगह लाशों के ढेर दिखायी दिये। कितनों का माथा कटा था; कितनों की आँखों में गोली लगी थी, कितनों के हाथ, पैर, नाक-कान और भेजे चूर-चूर हो गये थे। मैं समझता हूँ, कि एक हजार से अधिक मनुष्यों की लाशों के ढेर वहाँ पड़े थे।"

दूसरे दिन जनरल डायर ने शहर के रईसों, म्युनिस्पल कमिश्नरों, व्यापारियों आदि की एक सभा कोतवाली में की, जिसमें कहा गया—'आप लोग क्या चाहते हैं, शान्ति या युद्ध ? यदि शान्ति, तो सब दुकानें खुलवाइये, नहीं तो बन्दूकों के बल से दुकानें खुलवायी जायेगी।" जनरल डायर के बाद मि० अर्विंग बोले—❀आप लोगों ने अंग्रेजों को मारकर बुरा काम किया है। आपसे और आपके बच्चों से बदला लिया जायेगा।' १५ अप्रैल को सब दुकानें खुल गयी थीं। लोगों ने समझा था कि बस अब शान्ति हो गयी, और आगे कुछ न होगा। पर मार्शल-ला की घोषणा करने के बाद ९ जून तक लोगों को निम्न-लिखित भिन्न-भिन्न कष्ट सहने पड़े।

(१) जिस गली में मिस शेरउड पर मारपीट हुई थी, वहाँ लोगों को कोड़े लगाये गये, उधर से जाने वालों को पेट के बल रेंगाया गया (२) सभी अंग्रेजों को सलाम करना पड़ता था, नहीं तो गिरफ्तारी और अपमान का भय था (३) मामूली बातों पर लोगों को आमतौर से कोड़े लगवाये जाते थे (४) शहर के सभी वकील अकारण ही स्पेशल कांस्टेबिल बनाये गये और साधारण कुलियों की भांति उन्हें काम करना और चलना पड़ता था। (५) बिना प्रतिष्ठा का ख्याल किये लोग अन्धाधुन्ध पकड़े जाते थे और उनसे अपराध स्वीकार कराने या दूसरे सबूत के लिये या केवल उनका अपमान करने के लिये नाना प्रकार के कष्ट दिये जाते थे।

❀ (महात्मा गाँधी द्वारा संचालित सत्याग्रह के सिलसिले में डायर ने डा० सत्यपाल और डा० किचलू को गिरफ्तार करके न जाने कहाँ भेज दिया। इस समाचार से अमृतसर में सनसनी फैल गयी थी। सहस्रों मनुष्यों की भीड़ नंगे पैर नंगे सिर डिप्टी कमिश्नर के बंगले की ओर जाने लगी। भीड़ अपने नेताओं को छुड़ाना चाहती थी, पर रेलवे पुल के पास सैनिकों ने उन्हें रोका। सैनिकों से मुठभेड़ हुई। और सैनिकों ने गोलियाँ चलादीं। इसके बाद जनता के मन में दबी चिनगारी गोला बनकर भड़क उठी। जिसकी लपटों में कई अंग्रेज मारे गये, कई इमारतें जलीं। यदि गोली न चलाई गई होती तो ऐसी घटना कभी नहीं घट सकती थी)।

मनीआवाला

मनीआवाला में तो अत्याचारों की कोई सीमा ही नहीं रही थी। बहुत सी गिरफ्तारियाँ हुईं, जिनमें एक सौ वर्ष का बूढ़ा भी था। इन सब को लोहे के पिंजरे में बन्द किया गया, जो दिन भर धूप में तपाये जाते थे। स्त्रियों पर भी वहाँ जो जो अत्याचार हुये वह वर्णनातीत हैं। मंगल जाट की—वृद्धा स्त्री ने बताया कि—

'मार्शल-ला के दिनों में अंग्रेज अफसर मि० वोसवर्थ स्मिथ ने हमारे गाँव के साठ वर्ष के ऊपर के सब पुरुषों को अपने बंगले पर बुलाया जो गाँव से कई मील की दूरी पर था।"

वृद्धा ने कहा—'जब पुरुष बंगले पर चले गये, तो पुलिस दल सहित अंग्रेज अफसर हमारे घरों की ओर आये। जो स्त्रियां अपने पुरुषों के लिये बंगले पर भोजन लिये जाती थीं, उन्हें भी वह लौटाते लाये! गाँव में पहुँचकर वे गली-गली में गये और सब घरों की औरतों को बाहर निकलने की आज्ञा दी। सब स्त्रियाँ निकलीं, उन्होंने साहबों के हाथ जोड़े। कुछ स्त्रियों को उन्होंने छड़ी से मारा और बुरी-बुरी बातें कहीं। उन्होंने दो बार मुझे ठोकर मारी और मेरे मुंह पर थूका। जबर्दस्ती औरतों का मुंह खोल दिया और छड़ी से उनके घूंघट हटाये। इसके बाद वह उन्हें गधी, कुतिया, मक्खी और सूअरी कहकर गालियां देने लगा। उसने कहा—'तुम अपने शौहरों के बिस्तरों पर पड़ी थीं, फिर तुमने उन्हें बुराइयाँ करने से क्यों नहीं रोका? अब तुम्हारे पायजामों के भीतर पुलिस वाले देखेंगे।" उसने मुझे एक ठोकर मारी और हम लोगों को झुककर पैरों के भीतर से हाथ निकाल कर कान पकड़ने को कहा।"

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् हिन्दुस्तान ने, उपरोक्त विवरण से भी सैकड़ों गुना दृश्य अपनी आँखों से देखा। यह तो केवल एकादि घटना मात्र है। जो इतिहास के पन्नों में सदैव रक्तिम पृष्ठों में लिखी मिलेगी। युद्ध के समय तो जो विनाश होता है, वह तो होता ही है, पर महायुद्ध के बाद जो घटनायें घटीं क्या वह विनाश से कम थीं। कहते हैं उस समय अनाज इतना महँगा हो गया

था कि उससे पहले कभी उतना महंगा अनाज हमारे देश में नहीं बिका था। जब कि फस्लें अच्छी थीं, या यों कहिये कि उस समय फस्लें अच्छी हो रही थीं। और जर्मनी में, जो युद्ध में हार गया था न केवल आर्थिक संकट था, बल्कि बीमारी और बेरोजगारी का साम्राज्य था। जिसे पंडित नेहरू ने, उस समय अपनी आँखों से देखा जब वह युवा थे, उनका शरीर और हृदय युवा था और वह जनता के हृदय सम्राट समझे जाते थे।

द्वितीय महायुद्ध

यह युद्ध उस समय छिड़ा जब हमारे देश में कांग्रेस प्रान्तीय सरकारें बना चुकी थीं, केवल बंगाल को छोड़कर देश में सारे प्रान्तों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल बन चुके थे, और काफी अच्छे ढंग पर शासन प्रबन्ध चला रहे थे, यानी जैसी उनके हाथ में शक्ति थी! तभी यकायक जर्मनी से आग बरसने लगी।

अन्य युद्धों की भांति इस महायुद्ध के बीज भी काफी दिनों से बोये जा रहे थे : यदि यों कह दिया जाय कि पहले युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ही दूसरे महायुद्ध के बीज बोने आरम्भ कर दिये थे तो कोई बेजा बात नहीं होगी, क्योंकि जब रूस में अक्तूबर की महान क्रांति हुई तो दुनियां के साम्राज्यवादी एकबारगी कांप उठे। फ्रांस, इंगलैण्ड, अमेरिका जो उस समय उपनिवेशक राज्यों पर हकूमत करने के लिये प्रसिद्ध थे; का इस युद्ध में पूरा-पूरा हाथ था। हमारे देश के पुरुषों की कहावत है जो गढ़ा खोदता है, वही गिरता है। और ऐसा ही इस युद्ध में हुआ। गेहुँओं के साथ घुन पिस जाने की बात को तो अलग किया ही नहीं जा सकता।

ये महायुद्ध दो ओर से हो रहा था एक ओर एशिया में जापान चीन पर आक्रमण कर रहा था, जिसका नेतृत्व तोजो के हाथ में था और दूसरी ओर जर्मनी और इटली यूरोप में बढ़ रहा था। योजना थी, इटली और जर्मनी के तानाशाह मुसोलिनी और हिटलर पूरे यूरोप को फतह कर लेने के बाद रूस के मार्ग द्वारा भारत की ओर बढ़ें और पूरब में जापान, चीन ब्रह्मा और दूसरे

छोटे देशों को रोंदता हुआ भारत की ओर बढ़े। अर्थात् हिन्दुस्तान में तीनों तानाशाहों की फौजें अपने बूटों से हमारे सीनों को रौंदें।

हिटलर और मुसोलिनी तथा तोजो के पीछे कौन था जब तक यह बात समझ में पूरी तरह से नही आजायेगी आगे की बात समझनी कठिन होगी।

जब रूस में अक्तूबर क्रांति के पश्चात् मजदूर हकूमत स्थापित हो गई तो साम्राज्यवादियों के दिलों पर सांप लोट गये। उन्होंने *पेरिस कम्यून की तरह इसे भी समाप्त करने की ठान ली! अनेक तरह के संकट रूस में पैदा किये। जापान ने उसी समय साइबेरिया की ओर अपनी फौजें भेज दीं। जर्मनी और रूस की दुश्मनी तो उन दिनों जगत् प्रसिद्ध थी, मगर सोवियत सरकार ने तुरंत जर्मनी से संधि करली, हालांकि इस संधि में रूस को काफी नीची शर्तें माननी पड़ी थीं, और यही जापान के साथ हुआ। साम्राज्यवादियों की पहली चाल बेकार होगयी, उन्होंने तुरत आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये। इससे रूस की जनता विचलित हो उठी, मगर लेनिन और स्टालिन के नेतृत्व ने जल्दी ही इस परिस्थिति पर काबू पा लिया। हांलांकि महंगी बहुत दिनों तक चलती रही। जब प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने के बाद हमारे देश हिन्दुस्तान से महंगी काफी दिनों में समाप्त हुई थी तो रूस के बारे में तो कहा ही क्या जा सकता है, जो स्वयं युद्ध में फंसा था। जहाँ का व्यापारी और धनिक वर्ग सरकार को उलटने की नाकामयाब कोशिश कर रहा था। और जब ये सारी हरकतें साम्राज्यवादियों की बेकार हो गयीं और रूस की नयी सोवियत सरकार के श्रेष्ठ कार्यों का पता दूसरे देशों की जनता को लगा तो वहाँ भी गड़बड़ी सी होने लगी। इस सब पर विजय पाने के लिये साम्राज्यवादियों ने सोचा—'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।' रूस से इस शासन को ही समाप्त कर देना चाहिये। और तभी जन्म हुआ हिटलर, मुसोलिनी और तोजो का।

---

*सब से पहले मजदूर क्रांति फ्रांस में हुई, जिसमें दो महीने तक जनता का शासन रहा, पर जमींदार, धनिक वर्ग और उसकी लाड़ली पुलिस तथा फौज ने इसे दो माह से अधिक न जीने दिया।

इन तीनों को जन्म देने वाले वास्तव में अमेरिका, इंगलैण्ड और फ्राँस की साम्राज्यवादी सरकारें थीं, जिनकी इच्छा थी इन तीनों को काफी ताकतवर बनाकर एक साथ रूस पर अचानक आक्रमण ऐसे समय कर दिया जाय जब रूस निर्माणकारी कार्यों में लगा हो। और ये सब उस समय हुआ जब आस्ट्रिया में खून की नदियाँ बह रही थीं। वहाँ की आजादी को साम्राज्यवादी कुचल रहे थे। पंडित नेहरू उन दिनों जेल में थे। मेरी कहानी में उन्होंने लिखा है—

"फरवरी में जब मैं गिरफ्तार हुआ और मुझ पर मुकदमा चला तभी योरोप में बड़ी उथल-पुथल और झगड़े हुए। फ्रांस में भारी खलबली मची, जिसमें फासिस्टों ने दंगे किये और उसकी वजह से राष्ट्रीय सरकार कायम हुई। इससे भी बुरी बात यह थी कि आस्ट्रिया का चांसलर डालफस मजदूरों पर गोलियाँ चलवा रहा था और सामाजिक लोकतन्त्र के विशाल भवन के ढाँचे को ढा रहा था। आस्ट्रिया में होने वाली खून खराबी की खबर सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। यह दुनियां में कैसी बुरी और खूनी जगह है और इंसान भी अपने स्थापित स्वार्थों की हिफाजत करने के लिये कैसा बर्बर बन जाता है? ऐसा मालूम पड़ता था कि तमाम योरोप और अमेरिका में फासिज्म का जोर बढ़ता जा रहा है।"

(पृष्ठ ६६२)

हिटलर के सम्बन्ध में तथा फासिस्ट राष्ट्रों के सम्बन्ध में उन्होंने काफी पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी। वह कहते हैं—

"जब जर्मनी में हिटलर का आधिपत्य हुआ तब मुझे यह मालूम होता था कि उसकी हुकूमत ज्यादा दिनों तक नहीं चलेगी, क्योंकि उसने जर्मनी की आर्थिक कठिनाइयों का हल पेश नहीं किया था। इसी तरह जब दूसरी जगह फासिज्म फैला तब भी मैंने अपने मन को यह सोचकर सान्त्वना दी कि यह प्रतिक्रिया की आखिरी मंजिल है, इसके बाद सब बन्धन टूट जायेंगे। लेकिन मैं यह सोचने लगा कि मेरा यह ख्याल कहीं मेरी ख्वाहिश से ही तो नहीं पैदा हुआ? क्या सचमुच यह बात इतनी साफ दिखाई देती है कि फासिज्म की यह लहर इतनी आसानी से या इतनी जल्दी पीछे लौट जायगी? यदि ऐसी हालत पैदा हो गई जो फासिस्ट डिक्टेटरों के लिये असह्य हो, तो क्या वह हुकूमत की बाग-

डोर छोड़ने से पहले अपने देशों को सत्यानाशी की लड़ाई में न जुटा देंगे ? ऐसी लड़ाई का नतीजा क्या होगा ?" (वही)

पंडित जवाहरलाल नेहरू को पिछली लड़ाई का कड़ुवा अनुभव था। जब वह अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् कांग्रेस के प्रधान चुने गये और लासेन से हिन्दुस्तान को चल दिये तो इटली के तानाशाह का निमन्त्रण मिला कि वह रोम में उससे मिलें, पर एक फासिस्ट नेता से जो वास्तव में युद्ध की तैयारी पूर्ण कर चुका था उन्होंने मिलने से इन्कार कर दिया। मेरी कहानी के पृष्ठ नं० ८३६ पर यह मनोरंजक घटना दी है।

'लासेन में २८ फरवरी १९३६ को जब मेरी पत्नी की मृत्यु हुई, तब मैं उसके पास ही था। थोड़े दिन पहले ही मुझे खबर मिली थी कि मैं दूसरी बार कांग्रेस का सभापति चुना गया हूँ। मैं फौरन ही हवाई जहाज से हिन्दुस्तान लौटा। रास्ते में रोम में एक मजेदार अनुभव हुआ। चलने से कुछ दिनों पहले मुझे यह सन्देश मिला था कि जब मैं रोम होकर निकलूँ तो उस वक्त सिन्योर मुसोलिनी मुझसे मिलना चाहते हैं। फासिस्ट शासन का घोर विरोधी होते हुए भी मामूली तौर पर सिन्योर मुसोलिनी से मिलना मैं पसन्द करता और खुद पता लगाता कि वह शख्स कैसा है जो दुनियां के घटना-चक्र में महत्त्वपूर्ण हिस्सा ले रहा है। लेकिन उस वक्त मैं कोई मुलाकात नहीं करना चाहता था। सबसे बढ़कर जो मेरे रास्ते में रुकावट आई वह यह थी कि अबीसीनिया पर हमला जारी था और मुझे डर था कि ऐसी मुलाकात का फासिस्टों की ओर से प्रोपेगण्डा करने में अवश्य ही दुरुपयोग किया जायेगा।

'पर मेरे इन्कार करने से क्या होता था ? मुझे याद था कि जब गांधीजी १९३१ में रोम से निकले थे तब उनकी एक मुलाकात की झूठी खबर 'जर्नेल डि इटैलिया' में छापी गई थी। मुझे दूसरी कई मिसालें याद आईं, जिनमें हिन्दुस्तानियों के इटली में जाने के कारण उनकी मर्जी के खिलाफ फासिस्टों ने बड़ा प्रचार किया था। मुझे यकीन दिलाया गया कि इस किस्म की कोई बात मेरे बारे में नहीं होगी और मुलाकात कतई खानगी होगी। तो भी मैंने यही तय किया कि मैं मुलाकात से बचूँ और सिन्योर मुसोलिनी तक अपनी

लाचारी पहुँचा दी ।

'मगर रोम होकर जाना तो मुझे पड़ा ही, क्योंकि हालैण्ड के के० एल० एम० कम्पनी का हवाई जहाज जिस पर मैं सवार था, वहाँ रात भर रुका था । ज्योंही मैं रोम पहुँचा, एक बड़े अफसर मेरे पास आये और मुझे शाम को सिन्योर मुसोलिनी से भेंट करने का निमन्त्रण दिया । उन्होंने कहा कि सब कुछ तय हो चुका है । मुझे अचम्भा हुआ । मैंने कहा कि मैं तो पहले ही माफी मांगने के लिये कहला चुका हूँ । घंटे भर तक बहस चलती रही, यहाँ तक कि मुलाकात का वक्त भी आ पहुँचा । अन्त में बात मेरी ही रही । कोई मुलाकात ही नहीं हुई ।"

और एक दिन अचानक लोगों ने सुना कि स्पेन में जनरल फ्रेंको ने विद्रोह कर दिया है, दुनियां ने देखा कि इस विद्रोह के पीछे जर्मनी और इटली की शक्ति काम कर रही है, और इस तरह एक विश्वव्यापी संघर्ष की तैयारी हो रही थी, यह तो केवल भूमिका मात्र थी ।

स्पेन की समस्या या अबीसीनिया के आक्रमणों का जो प्रभाव पंडित नेहरू पर पड़ा उसके सम्बन्ध में वह कहते हैं—

'स्पेन के युद्ध की जो प्रतिक्रिया हुई, उससे पता चलता है कि मेरे मन में किस प्रकार हिन्दुस्तान का सवाल दुनियां के दूसरे सवालों से जुड़ा हुआ था । मैं अधिकाधिक सोचने लगा कि चीन, अबीसीनिया, स्पेन, मध्य योरोप, हिन्दुस्तान या अन्य स्थानों की सारी राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ एक ही विश्व समस्या के विविध रूप हैं । जब तक मूल समस्या हल नहीं कर ली जाती तब तक इनमें से कोई एक समस्या अन्तिम रूप से नहीं सुलझ सकती । सम्भावना इस बात की थी कि मूल समस्या सुलझने से पहले ही कोई क्रान्ति या कोई आफत आयेगी । जिस तरह कहा जाता था कि आज की दुनियां में शान्ति अविभाज्य है, उसी प्रकार स्वाधीनता भी अविभाज्य है । दुनियां बहुत दिनों कुछ आजाद, कुछ गुलाम नहीं रह सकती । फासिज्म और नाजीवाद की यह चुनौती मूलतः साम्राज्यवाद की ही चुनौती थी । यह दोनों जुड़वाँ भाई थे—फर्क सिर्फ इतना ही था कि साम्राज्यवाद का विदेशों में उपनिवेशों और अधिकृत देशों में

जैसा नंगा नाच देखने में आता था, वैसा ही नाच फासिज्म व नाजीवाद का निज के देशों में दिखाई पड़ता था। अगर दुनिया में आजादी कायम होती है, तो न सिर्फ फासिज्म और नाजीवाद को ही मिटाना होगा बल्कि साम्राज्यवाद का भी बिल्कुल नामोनिशान मिटा देना होगा।" (पृष्ठ ८३८)

भारत की भूमिका

सन् १९३८ !

यह वह समय था, जब दुनियां एक ज्वालामुखी के मुँह पर खड़ी थी और कब विस्फोट हो जाय इसकी प्रतीक्षा थी। चीन पर जापान के आक्रमण तेज हो गये थे और काफी तेजी से जापान चीन में घुसता जा रहा था, चीन की हार पर हार हो रही थी। जिसे देखकर राष्ट्रवादी [1]च्यांगकाई शेक और चीनी साम्यवादी पार्टी जापान से लड़ने के लिये एक हो गये थे और डटकर मुकाबला कर रहे थे। पंडित नेहरू चूंकि कांग्रेस के विदेश विभाग के इंचार्ज थे इसलिये उन्होंने (सन् १९३७ की) कांग्रेस में एक प्रस्ताव पास कराया—

'कांग्रेस महासमिति चीन में जापानी साम्राज्यवाद के आक्रमण से चिन्तित है और वह नागरिक जनता पर बम वर्षाए जाने के निर्दय व्यवहार और आतंक से परिचित है। असाधारण परेशानियों और विषमताओं के होते हुए भी अपनी स्वतन्त्रता और अपनी एकता के लिये चीनी जनता वीरतापूर्वक जो संघर्ष कर रही है, महासमिति उसकी प्रशंसा करती है। राष्ट्रीय संकट के समय आंतरिक एकता पर महासमिति चीनी जनता को बधाई देती है। इस राष्ट्रीय विपत्ति के अवसर पर चीनी जनता के प्रति महासमिति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रगट करती है और उसकी आजादी की लड़ाई में भारतीय जनता के पूर्ण समर्थन का आश्वासन देती है। महासमिति भारतवासियों से यह माँग करती है कि वह चीनी जनता के प्रति सहानुभूति के प्रतीक स्वरूप, जापानी चीजों का इस्तेमाल बन्द करदें।'

जब कांग्रेस ने चीन के सम्बन्ध में उपरोक्त प्रस्ताव पास किया था, तो

[1]उन दिनों च्यांगकाई शेक को राष्ट्रवादी ही कहा जाता था।

बात केवल प्रस्ताव तक ही सीमित नहीं रह गई थी, वरन् डाक्टर अटल के नेतृत्व में घायलों की सेवा करने के निमित्त एक चिकित्सक मण्डल भी भेजा था। जिसने चीन जाकर जापानी आक्रमणकारियों द्वारा घायल किये चीनियों की मन लगाकर चिकित्सा की थी। चीनी जनता ने भी खुले दिल से इस चिकित्सक दल की तारीफ की थी।

सन् १६३६ में पंडित नेहरू स्वयं चीन गये थे, अपनी आँखों से पड़ौसी देश पर जापानी दरिन्दों द्वारा ढाये जा रहे अत्याचारों को देखने के लिये। जहाँ वह च्यांगकाई शेक से मिले थे, पर समयाभाव के कारण वर्तमान प्रधानमन्त्री चाओ-एन लाई से नहीं मिल सके थे, क्योंकि गत महायुद्ध छिड़ गया था और उस समय के भारतीय शासक अंग्रेजों ने बिना हमारे देश के नेताओं से कोई राय लिये हिन्दुस्तान को युद्ध में रत राष्ट्रों में सम्मिलित घोषित कर दिया था, और इसीलिये कांग्रेस को तुरत पैदा हुई अचानक नई परिस्थिति पर विचार करने के लिये 'महा समिति' की एक आवश्यक मीटिंग बुलानी पड़ी थी। फलस्वरूप पंडित नेहरू चीन से तुरन्त लौट आये।

तेजी से बढ़ते हुए युद्ध और उस समय हमारे देश में पैदा हुयी परिस्थिति के बारे में पंडित नेहरू ने लिखा है:—

'युद्ध और हिन्दुस्तान ! अब हमें क्या करना है ? बरसों से हम इसके बारे में सोचते आ रहे थे और अपनी नीति की घोषणा कर चुके थे, मगर ये सब होते हुए भी ब्रिटिश सरकार ने हम लोगों की केन्द्रीय धारासभा की, या प्रान्तीय सरकारों की राय लिए बिना हिन्दुस्तान को लड़ाई में शरीक मुल्क करार दे दिया। इस उपेक्षा को हम यों ही नहीं टाल सकते, क्योंकि इससे प्रकट होता था कि साम्राज्यवाद पहले ही की तरह काम कर रहा है। सितम्बर १६३६ के मध्य कांग्रेस कार्यसमिति ने एक लम्बा वक्तव्य जारी किया, जिसमें हमारी पिछली और हाल की नीति की व्याख्या की गई और ब्रिटिश सरकार से माँग की गई कि वह अपने युद्ध उद्देश्य खासकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रश्न पर साफ़ करे। हमने अकसर फासिज्म और नाजीवाद की निंदा की थी, लेकिन हमारा निकट सम्बन्ध

तो साम्राज्यवाद से था जो हमारे ऊपर सवार था। क्या यह साम्राज्यवाद मिट जायेगा ?'
(मेरी कहानी पृष्ठ ८५०)

इसी बीच एक और विप्लवी बात हुई जिससे दुनिया चौक गई। रूस और जर्मन संधि। चूंकि अब तक रूस अपने नव निर्माण के कार्य में लगा था, सब कुछ देखते और जानते हुये भी उसने युद्ध की उपेक्षा की थी। रूस के नेताओं ने युद्ध के लिये तैयारी करने के बजाय निर्माण कार्य करना उचित समझा था, पर फिर भी जर्मनी की ओर से युद्ध का खतरा बराबर बना हुआ था। इसलिए रूस जर्मन संधि कर ली गई। जिसमें रूस को बहुत कुछ देना पड़ा। पर अपने देश के नव निर्माण के लिए और जर्मन जैसी फासिस्ट शक्ति से जिसे अमेरिका, इंग्लैंड और फ्रांस ने बरसों की कुर्बानी के बाद तैयार किया था, लोहा लेना था, उसकी तैयारी करनी थी। लोगों में चिमियागोई हुई, मगर स्व० मार्शल स्टालिन ने दुनियां की परवाह न करके संधि की और फिर लालसेना की शक्ति बढ़ने लगी।

अप्रैल में नार्वे की हार हुई। मई में हालैंड और बेलजियम के काण्ड हुये। जून में अचानक ही फ्रांस का पतन हो गया और पेरिस जो एक घमण्डी और मनोरम नगर था और आजादी का पालना समझा जाता था, उस समय कुचला हुआ पड़ा था। फ्रांस जितने बड़े राज्य को चौबीस घण्टे में घुटने टेक देने पड़े। क्योंकि फ्रांस के शासक तो इस ख्याल में गर्क थे कि जर्मन रूस पर आक्रमण करेगा। वह समझते थे कि नार्वे, हालैंड, बेलजियम के युद्ध और इनकी पराजय तो केवल भूमिका मात्र हैं, इनके बाद ही रूस पर आक्रमण हो जायगा और जर्मन रूसी संधि तब स्वयं टूट जायगी। इसलिए फ्रांसीसी साम्राज्यवादी पेरिस में ऐश कर रहे थे, उन्हें क्या पता था कि उनका भाग्य सो गया है और उनके बोए कांटे उन्हीं के पैरों में चुभोने की तैयारी हो रही है।

जर्मन और इटली दोनों ने न केवल योरोप भर में तबाही बरपा कर दी, बल्कि समुद्र पार इंग्लैंड में भी बम बरसाये। इंग्लैंडवासी अपने को पूर्ण सुरक्षित समझते थे, पर हिटलर के बमों ने सौंदर्यमय इग्लैंड को बरबाद कर दिया। चर्चिल की आँखें खुलीं, क्योंकि उस समय वही प्रधान मन्त्री थे। सांप को पालने

का मजा उन्हें मिल गया । अमेरिका को कुछ सूझता ही न था। उसने इंग्लैंड के साथ दुकानदारी आरम्भ कर दी, युद्ध सामग्री इंग्लैंड पहुँचने लगी । पर केवल सामग्री पहुँचाने भर से क्या हो सकता था । सवाल था जर्मनी का रुख दूसरी ओर यानी रूस की ओर कैसे मोड़ा जाय ।

रूस नव निर्माण छोड़कर अपनी लालसेना की शक्ति बढ़ाने में जुटा हुआ था, जर्मनी की ओर उसने अपनी सीमा पर फौजें भेज दी थीं ।

और एक दिन हिटलर ने अपनी मौत को निमन्त्रण देकर रूस की ओर अपना रुख मोड़ दिया। सैलाव की तरह से बढ़ने वाली हिटलर की फौजों ने जल्दी ही भाँप लिया कि रूस को जीतना लोहे के चने चबाना है। चर्चिल रूस गये और इस तरह फासिस्टों के विरुद्ध तीन बड़े देश एक हो गये, अमेरिका, फ्रांस और रूस । अमेरिका ने अपनी सेनाएं चीन की ओर भेजीं, रूस चारों ओर लड़ रहा था, पश्चिम में जर्मनी से, दक्षिण में इटली की सेनाओं से, पूरब में जापान से ।

हिटलर की फौजें मास्को तक बढ़ गयीं, और फिर चारों ओर से घिर गयीं ।

युद्ध और हिन्दुस्तान

इस युद्ध का बहुत बुरा प्रभाव हमारे देश पर पड़ा । जबरन रंगरूट तो इस बार भर्ती नहीं किये गये, मगर जबरन ही कहना ठीक होगा, क्योंकि जमींदारों ने जिन किसानों को रुपया दे रखा था या जिनपर लगान आदि बाकी था, उनपर दबाव डालकर उनके जवान बेटों को युद्ध में भिजवाया । भारतीय जनता का असन्तोष सन् १९४२ के संग्राम के रूप में फूट पड़ा था, जिसमें लाखों लोग जेल भेज दिये गये थे और सैकड़ों गोली के शिकार हुये, कितनों को फाँसी की सजायें दी गईं । और यह सब हुआ युद्ध के कारण ।

पण्डित नेहरू आदि राष्ट्रीय नेता उफान आने से पूर्व ही ९ अगस्त को गिरफ्तार कर लिए गये थे । जनता को कोई सन्देश तक न मिला था ।

देश बीमारी और अकालके मुँह में चला गया। अँग्रेजी सरकार के आँकड़ों के अनुसार अकाल से केवल बंगाल में ४० लाख व्यक्ति मौत के शिकार बने । इस

तरह से युद्ध हमारे देश की सीमाओं से टकराकर भी इतने बड़े नुकसान कर गया। जहाँ युद्ध हुआ था, वहाँ लोगों पर कैसी विपत्तियाँ पड़ीं, उसके बारे में तो वहाँ के निवासी ही जान सकते हैं।

नारियों का मूल्य अकाल के समय एक मुट्ठी भोजन (भात) रह गया। अमीर पहले युद्ध की तरह से और भी अमीर बन गये। मध्यम वर्ग और निचला तबका मर मिटा, उसकी रीढ़ टूट गयी। माओं ने प्यारे बच्चों को बेचा, बापों ने अपनी जवान बेटियों की लाज आँखों के सामने लुटते देखी, पर उफ़ तक न कर सके। कितने ही परिवार तो बिल्कुल नष्ट हो गये, जिनका नामोंनिशान तक मिट गया। अराकान और चटगांव के चकले युद्ध की देन थे। जहां नारी का आटे और दाल की तरह मोल होता था।

अनाज व्यापारियों ने खरीदकर भर लिया मनमाने दाम वसूल किये, सुना गया बंगाल में चावल ६० और ७० रुपये बिका। तमाम देश में अनाज गायब हो गया, युद्ध के ५-७ वर्ष बाद तक अनाज २० रुपये तक बिका। जबकि लोगों की आमदनी में कोई विशेष बढ़ती नहीं हुई थी।

युद्ध समाप्त हुआ। हिरोशिमा में हुये एटम बम के प्रयोग से न केवल हिरोशिमा नष्ट हो गया, वरन् उसके विषैले अणु वहाँ से बाहर भी लोगों पर प्रभाव डालने लगे। और इस तरह बीमारी का प्रकोप हुआ।

युद्ध की समाप्ति के पश्चात् हमारे देश के नेता जेल से छोड़ दिये गये। जिन्होंने देश का तूफानी दौरा किया, वह जानते थे कि जनता युद्ध काल की परेशानियों के कारण बेचैन है, क्योंकि जेल में बन्द रहकर भी समाचार पत्रों अथवा दूसरे ढंग से मिली सूचनाओं के सहारे वह परिस्थिति का अध्ययन करते रहे थे। अध्ययन अध्ययन होता है और वास्तविकता वास्तविकता ही। क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने अखबारों पर पाबन्दी लगा दी थी, फिर जब अखबारों के मालिक मुनाफा बटोर रहे थे, तो उनके चाकर अखबार उन्हीं के विरुद्ध किस प्रकार आवाज उठाते।

पंडित नेहरू पर इन युद्धों का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने तय कर लिया कि भविष्य में वह किसी भी तरह होने वाले युद्धों को न केवल हिन्दुस्तान

में रोकेंगे, वरन् कोशिश करेंगे कि दुनियां के किसी कोने में युद्ध न हो, क्योंकि युद्ध चाहे किसी भी देश में हो, कितनी ही दूर हो पर उसका प्रभाव प्रत्येक देश पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य पड़ता है।

और जब युद्ध के कारण जनता में फैली बेचैनी दूर नहीं हुई तो, उसने हथियार उठा लिये। देश भर में हड़तालों और दूसरे संघर्षों की लहर आयी। पटना की समस्त पुलिस हड़ताल पर चली गयी, पोस्ट आफिस बन्द हो गये, नौ सेना ने विद्रोह कर दिया और तब अँग्रेजों ने अपनी खैरियत न समझकर देश के टुकड़े कर दिये और समुद्र पार जहाँ से आये थे चले गये।

देश आजाद हुआ, मगर आजादी से बदतर होकर। नेहरू शासक बने युद्ध के विरुद्ध हृदय में बहुत सी घृणा समेटकर। क्योंकि आजादी के बाद तक युद्ध की महंगी बनी रही।

पंडित नेहरू ने दो युद्ध देखे, बहुत सों के बारे में उन्होंने पढ़ा, उन देशों को देखा जहाँ युद्ध हुए थे, मन पर घृणा आ बिराजी इन युद्ध खोरों के खिलाफ क्योंकि उन्होंने अपनी आंखों से जिन देशों को हरा भरा लहलहाता देखा था, वह उजड गये थे, वीरान बन गये थे। सारा वैभव मिट्टी में मिल गया था। बमों से हुए विस्फोट, मकान, इमारत, कालेज और यूनिवर्सिटी सब कुछ नष्ट हो गया था। बच्चों की पढ़ाई स्थगित हो गई थी लोग मारे तो गये ही थे मगर युद्ध से लौटनेवाले अपने साथ बीमारियाँ लेकर घरों को लौटे थे, बीमारियाँ फैल गई थीं। राष्ट्र अपंग बन गये थे, अब नये सिरे से नव निर्माण करना था। पूँजी युद्ध में समाप्त हो गई थी। बस जनता थी, जिसके पास न खाने को भोजन था, न पहनने को वस्त्र और न रहने को मकान। ऐसी दशा में राष्ट्र को कर्जा लेना पड़ा और यही कर्जा धीरे धीरे हाथ बाँधता गया, कर्जा देनेवाले राष्ट्र ने व्यापार खोला और इस प्रकार देश का व्यापार भी नष्ट हो गया। बेकारी बढ़ने लगी। अर्थात् युद्ध के पश्चात् जिन देशों ने भी कर्जा लेकर नव निर्माण आरम्भ किया, वह फिर गुलामी की ओर बढ़ने लगे, कर्जा उनके लिए अभिशाप बन गया।

और इन सबका पंडित नेहरू पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी आत्मा एक भारतीय की आत्मा है, वह तिलमिला गये और तभी उन्होंने भारत की बागडोर

अपने हाथ में लेते हुए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निश्चय किया तीसरी जंग नहीं होगी ।

शान्ति की ओर

पहला काम

भारत के विभाजन के तुरन्त बादही हिन्दुस्तान में साम्प्रदायक दंगों की एक लहर सी आई; बल्कि यों कहना ठीक होगा कि भारत का विभाजन ही इन दंगों का मूल कारण था, क्योंकि अंग्रेजों ने हमारे देश में सदैव से यही नीति बरती थी कि— 'फूट डालो और हुकूमत करो ।' और इसी नीति पर वह इतने दिन हुकूमत कर भी गये । जब भी राष्ट्रीय आन्दोलन तेजी पर हुआ और अंग्रेजों ने अपने लिये खतरा समझा तभी उन्होंने कहीं न कहीं साम्प्रदायक आग लगा दी । जिसमें साथ-साथ रहने वाले, एक सभ्यता और संस्कृति में पलने वाले, रोज रोज भाई की तरह आपस में मिलने वाले हिन्दू और मुस्लमान एक दूसरे के दुश्मन बन जाते । आपस में एक दूसरे की मां बहिनों की लाज तक लुट जाती । और यह कार्य करते गुंडे थे, हिन्दू भी और मुसलमान भी । सरकार इनको पैसे देती थी। सन् १९४७ में यह आग इतनी तेजी से फैली कि प्रतीत होने लगा सारा देश इन साम्प्रदायक दंगों की लपटों में भस्म हो जायगा, पर पंडित नेहरू देश के प्रगति-शील लोगों के साथ इस दंगे की लपटों से जूझते रहे, यहाँ तक कि महात्मा गांधी के प्राण इस दगे के कारण ही गए । जब तक इन साम्प्रदायक दंगों के मूल कारण और उससे पैदा हुई परिस्थिति पर प्रकाश नहीं डाला जायेगा तब तक पंडित नेहरू द्वारा की गई इन साम्प्रदायक दंगों के विरुद्ध कुर्बानी का मूल्य न समझा जा सकेगा ।

सन् १९४६ में भारत के वायसराय लार्ड माऊंटबेटन ने अंतरिम सरकार की उस समय घोषणा की जब अंग्रेजी सरकार का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। मगर दूसरी ओर उन्होंने मुस्लिम लीग के नेताओं पर हाथ रख दिया, खैर पंडित नेहरू ने किसी तरह गाड़ी खींची और अमन बनाये रखा । मगर जब लार्ड पैथिक-लारेंस के नेतृत्व में तीन मेम्बरों का मिशन भारत आया और हिन्दुस्तान की

तमाम राजनैतिक पार्टियों ने उन्हें विज्ञापन दिये तो उन्होंने अपने अन्तिम निर्णय में इग्लैण्ड में जाकर कहा—'हिन्दुस्तान में पाकिस्तान बनने के लिये कोई गुंजायश नहीं हैं, क्योंकि हिन्दुस्तान के बहुत से मुसलमान भी कांग्रेस के साथ हैं। प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनावों से यह बात वहाँ स्पष्ट हो गई है।'

स्वर्गीय मुहम्मदअली जिना को इस बात ने पागल सा बना दिया। और दबी हुई साम्प्रदायक आग की चिनगारी जिसे अंग्रेज सुलगा सकने में असमर्थ से थे फिर से जल उठी।

बम्बई में मुस्लिम लीग के नेताओं के बीच एक सभा में मि० जिना ने लार्ड पैथिक लारेंस की उक्त बात का बड़े कड़े शब्दों में खंडन किया। उन्होंने इंगलैण्ड को चुनौती दी—'क्या इंगलैण्ड की मजदूर सरकार[1] यह दावा करती है कि इंगलैण्ड में हकूमत बना लेने के बाद भी वह तमाम अंग्रेजों का नेतृत्व करती है। यह तो केवल हमारी आँखों में धूल झोंकने की बात है। ठीक इसी तरह से मुस्लिम बहुमत प्रान्तों में से यदि थोड़े से मुसलमान कांग्रेस में शामिल हो गये तो क्या वहाँ पाकिस्तान नहीं बन सकता। कोई सरकार जिस तरह अपने यहाँ के समस्त नागरिकों का नेतृत्व नहीं करती (इंगलैण्ड की भी) ठीक वैसी ही परिस्थिती पाकिस्तान पर भी चरितार्थ होती है। हम इसके लिये १६ अक्टूबर को विरोध दिवस मनायेंगे।'

१६ अक्टूबर भारतीय इतिहास का वह खूनी दिन था, जब हमारे इतिहास पर कालिख लगी।

१६ अक्टूबर को कलकत्ते का विरोध दिवस भयानक साम्प्रदायक दंगों में डूब गया। भाई ने भाई को कत्ल किया, मां बहिनों का सतीत्व लूटा गया, धन और दौलत को आग लगाई गई। लोगों का जीवन घरों के भीतर भी सुरक्षित न रहा, मकान जला दिये गये और मार्ग जन शून्य हो गये। लेकिन तब भी सड़कों पर अंग्रेजों को घूमते हुए देखा, रात को भी और दिन को भी। वह बिना रोक टोक घूमते रहे, बंगाल की मुस्लिम लीगी सरकार तमाशा देखती रही,

१. उन दिनों इंगलैण्ड में मजदूर दलीय सरकार के हाथ में सत्ता थी।

उसने इन साम्प्रदायक दंगों के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया। ऐसा प्रतीत होता था कि बंगाल की सरकार और लड़खड़ाती हुई अंग्रेज सरकार दोनों ने मिलकर यह आग लगाई थी, ताकि आजादी के लिये होने वाला संघर्ष इन दंगों के खून में डूब जाय और अंग्रेज कुछ दिन और हकूमत कर सकें, कुछ दिन और हिन्दुस्तान से लूट का माल इंगलैण्ड ले जा सकें। इन दंगों के पीछे लड़खड़ाती हुई अंग्रेजी हकूमत अपने पैर जमाने की चेष्टा कर रही थी, मगर व्यर्थ ! लाखों लोगों की जान जाने के बाद भी अंग्रेज न ठहर सके, सारे देश की जनता बहुत आगे बढ़ चुकी थी फिर अकेला बंगाल भाइयों के खून से होली खेलकर किस तरह से उन्हें रोक सकता था।

मगर बंगाल की आग बुझ गई हो, ऐसी बात नहीं थी, बंगाल की आग धीरे-धीरे सारे देश में फैल गयी, और सारा देश इन साम्प्रदायक आग की लपटों में भांय-भांय जलने लगा। राष्ट्रनेता किंकर्त्तव्य विमूढ़ से पहले तो देखते रहे, मगर जब नेहरू ने इन दंगों के विरुद्ध हुंकार भरी तो सभी लोग इन लपटों से जूझने लगे।

महात्मा गांधी की नोआखाली यात्रा जगत प्रसिद्ध यात्रा बन चुकी है। जो आजादी के संग्राम के समय की डांडी कूँच के बाद पहली और अपनी तरह की सर्वश्रेष्ठ यात्रा थी। गरीबों की झोंपड़ियों से लेकर गांधी जी अमीरों के महलों तक में गये, शांति का सन्देश सुनाया। और बंगाल में लगी आग को एक बड़ी सीमा तक कम किया।

इसी बीच आया पन्द्रह अगस्त १९४७ जब हिन्दुस्तान के दो टुकड़े कर दिये गये, मगर दोनों को स्वतंत्रता सौंप दी गई।

नया-रूप

पन्द्रह अगस्त १९४७ !

भारत की पूर्ण स्वाधीनता !!!

पंडित नेहरू देश के समस्त प्रगतिशील लोगों के साथ साम्प्रदायक आग से जूझने लगे।

और जब यह आग तनिक ठंडी पड़ी तो फिर शरणार्थियों का सैलाब आ

गया । लाखों लोग दोनों देशों में लुट पिट कर धर्म के आधार पर अपनी जन्म-भूमि को त्याग एक से दूसरे में चले गये ! कल तक जो पड़ौसी थे, एक देश के दो बाजू थे अब दो राष्ट्र बन गये थे ।

राष्ट्र की प्रगतिशील पार्टियों ने नेहरू जी का हाथ बटाया इन शरणार्थियों की सहायता में और पंडित नेहरू ने प्रत्येक मोर्चे को स्वयं जाकर देखा, जिससे उत्साह मिला, इस तरह शरणार्थियों की समस्या पूरी तरह तो हल नहीं हुई, मगर साम्प्रदायक दानव समाप्त हो गया । उसे इतना गहरा गड्ढा खोदकर दाबा गया कि फिर बाहर न निकल सके !

पर समय को यह बात मंजूर नहीं थी । राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के रूप में मुस्लिम लीग जीवित हो उठी । वही मुस्लिम लीग जिसने देश के दो टुकड़े कराये, जिसने बेटी और बेटों को माँओं की गोदी से छीन लिया । और इस संघ की मेहरबानी से प्रकट या अप्रकट महात्मा गांधी जैसा महामानव हिन्दुस्तान से छीन लिया गया । यही क्यों जब देश का बटबारा हो रहा था, तब इस सघ ने हमारे देश में खासकर देहली में इतनी घृणित कार्रवाहियां कीं कि पंडित नेहरू को विवश होकर उस पर पाबन्दी लगानी पड़ी । इस पावन्दी के खिलाफ सिवाय साम्प्रदायक तत्वों के और किसी ने सिर नहीं उठाया । हम समझते हैं, पंडित नेहरू ने जिस प्रकार तेजी से यह कार्य आरम्भ किया था, यदि उन्हें अपने मन्त्रिमण्डल का, कांग्रेस का या देश का वैसा ही सहयोग मिला होता तो हालत कुछ और ही होती । देश की प्रगतिशील ताकतों को जो इन दंगों के विरुद्ध संघर्ष कर रही थीं, पंडित नेहरू का काफी सहयोग मिला, और देश एक धधकती भट्टी से बाहर निकाल लिया गया । इस दंगे में हुई राष्ट्रीय क्षति का अनुमान कई अरब रुपये तक था । मरने वालों की संख्या हजारों से ऊपर निकल गई ।

पंडित नेहरू का ही यह प्रयास है कि आज हिन्दू और मुसलमान हमारे देश में साथ-साथ रह रहे हैं, भाई-भाई की तरह, बिना किसी भी प्रकार के भेद-भाव के ! और यदि पंडित नेहरू की इस बात पर अमल किया गया तो निश्चय ही भविष्य में कभी साम्प्रदायक झगड़े नहीं होंगे ।

काश्मीर

गत पृष्ठों में जिन दंगों का जिकर किया गया है वह केवल साधारण से दंगे न थे, उसमें अंग्रेजों की एक चाल थी कि हिन्दुस्तान का बटवारा इस तरह से किया जाय कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान सदैव आपस में लड़ते रहें और हम बन्दर बांट करने के लिये पंच बन जांय ? यदि हिन्दुस्तान ने तनिक भी गलती की होती तो निश्चय ही अंग्रेजों को पंच बनने का अवसर मिल गया होता।

जिस समय देश में आबादी परिवर्तन हो रही थी; यानी भारत के मुसलमान जो पाकिस्तान जाना चाहते थे जा रहे थे, और पाकिस्तान के जो हिन्दू भारत आना चाहते थे आ रहे थे। भारतीय सरकार उनके प्रबन्ध में दत्त-चित्त हो लगी थी। जब पं० नेहरू की सरकार के सामने लाखों शरणार्थियों को फिर से बसाने और तुरंत उन्हें भोजन और कपड़े तथा अस्थायी निवास का प्रबन्ध करना था, तभी कश्मीर पर पाकिस्तानी फौजों ने आक्रमण कर दिया। इन फौजों के बारे में पहले तो कोई पता ही नहीं था, समझा ये गया था कि हिन्दुस्तान की तरह ही कश्मीर में भी हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायक दंगे हो गये हैं। लेकिन जब अच्छी तरह से जांच पड़ताल के पश्चात् ज्ञात हो गया कि न केवल कबाइली काश्मीर में गड़बड़ कर रहे हैं वरन् काश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने के लिये पाकिस्तान अपनी फौज भी प्रयोग में ला रहा है।

काश्मीर की हालत समझने के लिये हमें इससे पूर्व की घटनाओं पर प्रकाश डालना आवश्यक है, क्योंकि काश्मीर की पूर्व की घटनाऐं ही पाकिस्तान के आक्रमण को उत्साह दे सकी थीं।

काश्मीर राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स के आन्दोलन की जड़ें काफी गहरी थीं और महाराजा काश्मीर इस आन्दोलन को अपनी पूरी ताकत से कुचलते रहे थे। यहाँ तक कि जिस समय भारत और पाकिस्तान की घोषणा हुई तब भी महाराज ने प्रजा परिषद के नेताओं को जेल में बन्द कर रखा था। प्रजा परिषद के नेताओं की उस समय फौरी मांग थी कि काश्मीर में जनता का राज्य स्थापित किया जाय। मगर देसी नरेश अंग्रेजों के नशे में थे, उन्हें पता नहीं

था, अब हमारा भाग्य अंग्रेजों के साथ नत्थी न होकर देश की जनता के साथ जुड़ा है। काश्मीर और हैदराबाद तथा जूनागढ़ इन राज्यों ने इस सिलसिले में सिर उठाया। यहाँ हम केवल काश्मीर के संबंध में ही बता सकेंगे, क्योंकि मामला काश्मीर संबंधी है, अन्य स्थानों पर जूनागढ़ तथा हैदराबाद के विषय में भी लिखा गया है।

काश्मीर के महाराज हरीसिंह वैसे एक सफल शासक थे, पर एक जागीरदार सामन्ती युग के अवशेषों से दूर नहीं जा सकता यह एतिहासिक तथ्य उन पर भी पूरी तरह से लागू होता था, फलस्वरूप जब काश्मीर में 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन तेजी से चला जिसका नेतृत्व शेख अब्दुल्ला और बख्शी गुलाम मुहम्मद के हाथों में था, तो महाराजा हरीसिंह ने इस आन्दोलन को बुरी तरह से कुचल दिया और तमाम नेताओं को जेल में बन्द कर दिया। जिस समय भारत और पाकिस्तान की सीमाओं का बटवारा हो रहा था, ये नेता जेल में बन्द थे और महाराज कश्मीर पाकिस्तानी नेताओं से सौदेबाजी कर रहे थे कि यदि मैं पाकिस्तान के साथ सम्मिलित हो जाऊँ तो क्या आप मुझे स्वतंत्र रहने देंगे। मगर पाकिस्तानी शासक साम्प्रदायक मनोवृत्ति के थे, उन्होंने इस बात को ठीक न समझा, पर महाराज हरीसिंह को अपनी बातचीत में उलझाये रहे, और दूसरी ओर कबाइलियों को शस्त्र देकर काश्मीर पर आक्रमण करा दिया। महाराज ने सोचा यह तो सन् १९३३ जैसा साम्प्रदायक झगड़ा है, जो तनिक कठोर कार्यवाही करने से समाप्त हो जायेगा, मगर उस झगड़े के पीछे जो पाकिस्तान की राजनैतिक चाल थी, उसे वह नहीं समझ सके थे।

काश्मीर के लिए ही पाकिस्तान ने यह चाल क्यों चली, यह एक भेद था। इसके पीछे एंग्लो अमेरिकन गुट का पूरा-पूरा हाथ था। भारतीय नक्शे में काश्मीर एक महत्वपूर्ण स्थान है, यहां हिन्दुस्तान, चीन, रूस, अफगानिस्तान और पाकिस्तान की सीमाएँ मिलती हैं, या यों कहिये काश्मीर, हिन्दुस्तान, चीन, रूस, अफगानिस्तान और पाकिस्तान के बीच का केन्द्र है, जहाँ से इन सारे देशों पर कभी भी आक्रमण किया जा सकता है, और यही प्रमुख कारण था पाकिस्तान का काश्मीर पर आक्रमण करने का। अमेरिका और अंग्रेज हर मूल्य पर काश्मीर

को अपने हाथ में चाहते थे, मगर वह काश्मीर पर सीधे-सीधे हकूमत भी नहीं कर सकते थे, इसलिये उन्होंने पाकिस्तान को उकसाया। पाकिस्तान के उच्चाधिकारी इस महत्व को समझते थे, इसलिये काश्मीर के बदले उन्हें और बहुत से वायदों की अमेरिका और इंगलैण्ड से उम्मीद थी और अमेरिका तथा इंगलैण्ड चाहते थे यहाँ काश्मीर में रहकर **रूस की हलचलों का अध्ययन करना तथा, रूस, चीन और हिन्दुस्तान की सीमाओं पर जासूसी जाल बिछाना और किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर युद्धस्थल के रूप में काश्मीर को प्रयोग करना।**

पंडित नेहरू ने काश्मीर का महत्व न समझा हो ऐसी बात न थी, बल्कि वह उचित समय की प्रतीक्षा में थे। पंडित नेहरू नहीं चाहते थे, कि पड़ोसी देश पाकिस्तान से काश्मीर के लिये युद्ध हो, क्योंकि पंडित नेहरू समझते थे, काश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है काश्मीर की जनता का हित भारत के साथ रहने ही में है, मगर महाराज काश्मीर कुछ और ही ढंग से सोच रहे थे, उनकी इच्छा न भारत के साथ मिलने की थी, न पाकिस्तान के साथ। वह काश्मीर को स्वतंत्र रखना चाहते थे, अर्थात् अंग्रेजों ने देश के दो टुकड़े किये थे भारत और पाकिस्तान, पर काश्मीर के महाराज हरीसिंह देश के तीन टुकड़े करने की फिराक में थे, भारत, पाकिस्तान और काश्मीर। पर यह किसी भी तरह सम्भव नहीं था, क्योंकि यदि काश्मीर अकेला रह भी जाता तो भी उसको आर्थिक समस्या के लिये दोनों देशों में से किसी एक के साथ सम्मिलित होना ही पड़ता।

कबाइलियों के आक्रमण २२ अक्तूबर १९४७ को आरम्भ हो गये और देखते ही देखते मुजफ्फराबाद का नगर नृशंसतम लूटमार का केन्द्र बन गया तथा वहां के सुन्दर भवन धू-धू करके जल उठे। सीमा उल्लंघन का यह पहला ही दृष्टान्त नहीं था। सितम्बर मास के मध्य से ही कभी कहीं और कभी कहीं पाकिस्तान समर्थित लुटेरे काश्मीर प्रान्त में घुस आते थे और लूटमार कर भाग जाते थे, किन्तु २२ अक्तूबर का आक्रमण सोच समझकर किया गया था, जिसकी योजना पहले ही बन चुकी थी, क्योंकि लुटेरे केवल लुटेरे ही नहीं थे, वे ब्रेनगनों, स्टेनगनों, हथगोलों और आग उगलने वाली तोपों, टैंक तोड़ राइफलों आदि आधु-

निक फौजी शस्त्राशस्त्रों से मुसज्जित थे और मोटर ट्रकों पर सवार होकर आये थे। कबाइलियों के साथ सैना के बहुत से अफसर और सैनिक भी थे, जिनकी संख्या लगभग दो हजार थी।

और इस दशा में काश्मीर के महाराजा हरीसिंह ने पाकिस्तान की वास्तविक शक्ल देखी और डोगरा सेना को इस बढ़ते हुये आक्रमण को रोकने के लिये भेजा, मगर सेना इस कबाइली फौज को रोक सकने में असमर्थ रही, फिर भी महाराज हरीसिंह ने एक दुरंगी चाल चली, पाकिस्तान और भारत से यथापूर्व समझौता करने की घोषणा, यद्यपि उस समय तक यह समझौता केवल पाकिस्तान से हुआ था, मगर पाकिस्तान ने जहां एक ओर इस समझौते को तोड़कर आक्रमणकारियों को भेजा वहीं दूसरी ओर अन्न पेट्रोल तथा अन्य आवश्यक सामान देना बन्द कर दिया। इस आर्थिक दबाव के साथ ही साथ लुटेरों के छुटपुट आक्रमण के रूप में सैनिक दबाव भी डाला जाने लगा। २२ अक्तूबर का बृहद आक्रमण इसी योजना से संबंधित था, क्योंकि पाकिस्तान को पूरी-आशा थी कि काश्मीर आर्थिक और सैनिक आक्रमण की धमकियों से डर कर पाकिस्तान को आत्म समर्पण कर देगा, उसकी कल्पना थी कि पाकिस्तानी सैनिकों के आक्रमण के साथ ही साथ काश्मीर की मुस्लिम जनता विद्रोह कर बैठेगी, किन्तु दुर्भाग्यवश स्वप्न स्वप्न ही रहा। क्योंकि काश्मीर के महाराज हरीसिह ने स्थिति भांप ली, उनके सामने दो ही मार्ग थे या तो पाकिस्तान की प्रभुसत्ता स्वीकार करना या भारत में विलीन हो जाना। मगर चूंकि काश्मीर जनता का ८५ प्रतिशत भाग मुस्लिम जनता है, महाराज उससे डरते थे, कहीं भारत के साथ मिलने पर ८५ प्रतिशत मुस्लिम जनता विद्रोह न कर बैठे। और इस परेशानी को हल किया शेख़ अब्दुल्ला और उसके साथियों ने ! क्योंकि शेख अब्दुल्ला राज्य परिषद के अध्यक्ष थे और काश्मीर के अधिकांश निवासी इस संस्था के साथ थे; फलस्वरूप शेख अब्दुल्ला के सहयोग से महाराज हरीसिंह को मुक्ति मिली।

शेख़ अब्दुल्ला और उनके साथियों ने अत्याचारियों से मोर्चा लेने का निर्णय किया और महाराज को भारत से सैनिक सहायता लेने का परामर्श

दिया। फलतः २४ अक्तूबर को महाराज ने भारत सरकार से सैनिक सहायता की याचना की। स्थिति नाजुक थी, इस समय काश्मीर को सैनिक सहायता देने का अर्थ था पाकिस्तान से युद्ध मोल लेना और हिंसा तथा रक्तपात के क्षेत्र में कमर कस कर उतरना। नेहरू सरकार ने स्पष्ट कह दिया हम इस तरह युद्ध के लिये अपने सैनिक नहीं भेज सकते, जब तक काश्मीर अपने भाग्य का फैसला न कर ले, वह या तो पाकिस्तान में सम्मिलित हो जाय या भारत में, यदि भारत में मिल गया तो अवश्य उसे सैनिक सहायता दी जायेगी, क्योंकि हम देश के दो टुकड़ों का नतीजा देख चुके हैं (साम्प्रदायक दंगे) अब तीन टुकड़ों का फल और नहीं देखना चाहते ! काश्मीर नरेश ने अपनी परिस्थिति को जांचा और घोषणा कर दी कि हम भारत के साथ हैं; और इस घोषणा के तुरत बाद यानी २५ अक्तूबर को भारतीय सैना वायुयान द्वारा काश्मीर में जा उतरी।

कल्पना कीजिये उस समय की भारतीय सैनिक स्थिती की, जब आक्रमण-कारियों की सैना हरेभरे काश्मीर को लूटती जलाती बड़े बेग और अहंकारके साथ आगे बढ़ रही थी। बारामूला पदाक्रान्त हो चुका था और श्रीनगर के द्वार उसके सामने निर्विघ्न खुले पड़े थे। दुर्भाग्य वश रियासत की डोगरा सेना भी इधर-उधर बिखरी हुई थी काश्मीर में शांति स्थापना कराने के लिये और इस तरह काश्मीर की राजधानी की रक्षा का कोई साधन दिखायी नहीं देता था। ऐसे समय में कुछ गिने चुने भारतीय वीरों ने आगे बढ़कर साहस पूर्वक शत्रु को ललकारा। जिसमें कितने ही भारतीय सैनिकों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी और उस टुकड़ी के नायक कर्नल डी० आर० एम भी शहीद हो गये, किन्तु इन बहादुरों ने कबाइलियों की आगे बढ़ने की बाढ़ को रोकने के लिये एक बाँध सा बना दिया था। यदि यों कहा जाय कि काश्मीर में भारतीय सफलता का भवन वस्तुत इन्हीं वीरों की समाधि पर खड़ा किया गया है तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी।

पंडित नेहरू इस संबंध में बड़े दूर की सोच रहे थे, वह मौन होकर हालात को देखते रहे और काश्मीर में शांति स्थापित कराने का आदेश देते रहे।

काश्मीर के युद्ध की कहानी लम्बी कहानी है। वह काश्मीर की टेड़ी मेढ़ी,

दुर्गम पर्वतमालाओं के बीच भयंकर तम शीत का सामना करते हुये साहस पूर्वक लड़ने वाले भारतीय वीरों के अपूर्व पराक्रम और पौरुष की कहानी है। वह कर्नलराय के अतिरिक्त मेजर शर्मा और ब्रिगेडियर उस्मान की कहानी है. और वह कहानी है काश्मीर के नरनारियों के दृढ़ आत्मबल की जिन्होंने अनेका-अनेक मुसीबतों के आगे भी अत्याचारियों के आगे सिर नहीं झुकाया।

लगातार चौदह मासतक युद्ध करने के पश्चात् भी, और अपार धन तथा युद्ध सामग्री की क्षति उठाने के बाद भी भारत ने काश्मीर में अपने स्वार्थ के लिये पदार्पण नहीं किया था। यही नेहरू जी की महानता थी। नेहरूजी ने काश्मीर की रक्षा का भार वहन करते समय ही स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि काश्मीर के भाग्य निर्णय का अधिकार तो केवल काश्मीर की जनता को ही है, भारत या पाकिस्तान को नहीं, यद्यपि विपत्तियों से विवश होकर काश्मीर ने अपनी पूर्ण सत्ता भारत को सौंप दी थी।

काश्मीर की राष्ट्रीय कान्फ्रेंस ने १२ अक्टूबर १९४८ के अपने एक विशेष अधिवेशन में भारत में स्थायी रूप से विलय होने का निर्णय कर लिया था और शेख अब्दुल्ला एक बार नहीं अनेक बार यह घोषणा कर चुके थे कि काश्मीर में जनमत संग्रह का कोई प्रयोजन नहीं रह गया तथापि नेहरू सरकार अपनी न्याय प्रियता पर किसी प्रकार का कलंक का टीका नहीं लगने देना चाहती थी और न वह अपनी सत्ता किसी प्रकार की कच्ची भित्त पर खड़ी करना चाहती थी कि तनिक सी तगड़ी वारिस में भित्त गिर जाय और फिर जग हँसाई का सामना करना पड़े।

संयुक्त राष्ट्रसंघ और काश्मीर

काश्मीर की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया था कि भारत किसी प्रकार भी संघर्ष के मार्ग को अपनाकर पाकिस्तान से कटुता पैदा नहीं करना चाहता, तभी तो काश्मीर में भारतीय सेनाएँ भेजने के बाद भी पाकिस्तान से बराबर कहा गया कि वह कबाइलियों को फौजी सहायता देना बंद कर दे, मगर पाकिस्तान के कान पर जूँ नहीं रेंगी, जब कि भारतीय जनता काश्मीर के कबाइली विजित

क्षेत्र पर आक्रमण करने के लिये नेहरू सरकार पर दबाव डाल रही थी, पर पंडित नेहरू ने न्याय और प्रेम के मार्ग को न छोड़कर भारतीय जनता की इस मांग को ठुकरा दिया और संयुक्त राष्ट्र संघ में काश्मीर का मामला १ जनवरी १९४८ को सोंप दिया, ताकि कल को कोई भारत की ओर अंगुली न उठा सके। इस समय भारतीय प्रतिनिधि ने जो स्मरण पत्र सुरक्षापरिषद को दिया उसमें अकाट्य प्रमाणों के बल पर यह सिद्ध कर दिया गया था कि काश्मीर में पाकिस्तानी सैनिक खुल्लम-खुल्ला भारतीय सेना से युद्ध कर रहे हैं। नेहरू जी को आशा थी कि विश्व-शांति के हित को दृष्टि में रखते हुये सुरक्षा परिषद तत्काल न्याय का मार्ग ग्रहण करेगी और पाकिस्तान को तुरन्त काश्मीर से हट जाने का आदेश देगी, पर जब सुरक्षा परिषद् ने उल्टे भारत को दोषी सिद्ध करने की चाल चली तो भारतीय अधिकारियों की आँखों पर जो भ्रम का पर्दा पड़ा था हट गया और उन्होंने अनुभव किया कि संयुक्तराष्ट्रसंघ न्याय का मंच नहीं, स्वार्थों का क्रीड़ा स्थल है। जिस ब्रिटेन ने मजबूर होकर भारत से बोरिया बिस्तर समेट लिया था उसी ने भावी स्वार्थ सिद्ध के लिये बड़ी चतुराइके साथ पाकिस्तान का निर्माण किया था, वह भला भारत का पक्ष कैसे ले सकता था ? और अमेरिका जिसकी संयुक्त राष्ट्रसंघ में तूती बोलती है, कैसे सहन कर सकता था कि काश्मीर पाकिस्तान के हाथ से चला जाए, क्योंकि वह रूस और चीन की, काश्मीर में में अपनी फौजें रखकर नाके बन्दी करना चाहता था, और जानता था कि भारत की जनता रूस के अन्दरूनी मामलों में दिलचस्पी लेती है। और यही क्यों जब काश्मीर समस्या पर सुरक्षा परिषद में विचार होने लगा तो पाकिस्तान के प्रतिनिधि श्री जफरुल्लाखाँ ने काश्मीर की समस्या के साथ ही साथ हैदराबाद और जूनागढ़ की समस्या पर भी विचार करने की मांग की तो ब्रिटेन और अमेरिका तथा उसके सहयोगी राष्ट्रों ने तुरन्त श्री जफरुल्लाखां का समर्थन किया। पर भारत ने सुरक्षा परिषद की इस धांधले बाजी के आगे सिर झुकाने से साफ इन्कार कर दिया था। फलतः ढाई महीने तक व्यर्थ ही पाकिस्तान और भारतीय प्रतिनिधियों के बीच बहस चलती रही। और २० जून १९४८ को सुरक्षा परिषद् ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया कि तीन व्यक्तियों का एक

कमीशन स्थिति की जाँच करे, पर कमीशन के कार्याधिकार के बारे में कभी भी भारत और पाकिस्तान के अधिकारियों के बीच समझौता नहीं हो सका, हारकर भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता गोपाल स्वामी आयंगर निराश होकर कुछ समय के लिये देहली लौट आये। सब ओर से निराश होकर पंडित जवाहरलाल नेहरू जिन्हें संयुक्त राष्ट्रसंघ पर बड़ी आस्था थी, को मार्च १९४८ में कहना पड़ा 'संयुक्त राष्ट्र पथ भ्रष्ट हो गया है।' उसी समय नेहरू जी ने सभासदों की जानकारी के लिये काश्मीर के सम्बन्ध में एक विस्तृत विवरण उपस्थित किया जो इतिहास में श्वेत पत्र के नाम से उल्लेखनीय है।

सुरक्षा परिषद् में घुटाला

नेहरू जी प्रत्येक मूल्य पर शान्ति बनाये रखना चाहते थे, वह यह कदापि नहीं चाहते थे कि कोई अँगुली उठाये कि—'पाकिस्तान या हिन्दुस्तान के शासक शासन नहीं कर सकते, स्वतन्त्र होते ही उन्होंने युद्ध छेड़ दिया।' इसलिये उन्होंने गोपाल स्वामी आयंगर को फिर से लेकसक्सेस भेज दिया और उन्हें कड़ा आदेश दिया कि जाँच कमीशन की अधिकार सीमा के सम्बन्ध में वह रंचमात्र भी न झुकें और इस पर सुरक्षा परिषद में व्यर्थ का वादविवाद चलता रहा। इस बादविवाद का भी एक कारण था कि वार्ता को या समस्या को जितना लम्बा खींचा जाय खींचनी चाहिये यह पाकिस्तान और इंगलैण्ड की इच्छा थी, ताकि इस बीच काश्मीर के विजित क्षेत्र पर मजबूती के साथ पाकिस्तान शासन स्थापित कर सके। पर भारत का पक्ष इतना स्पष्ट और दृढ़ था कि जफरुल्लाखाँ की माँगों का ज्यों का त्यों अमेरिका और इंगलैंड समर्थन नहीं करसके। अतएव २१ अप्रैल को सुरक्षा परिषद में ब्रिटेन, अमेरिका, चीन, कोलम्बिया, कनाडा और बेलजियम की ओर से एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया जिसे न तो भारत ने स्वीकार किया न पाकिस्तान ने ही, और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ में काश्मीर की गुत्थी सुलझने की आशा क्षीण हो गई।

उपरोक्त ६ राष्ट्रों द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव में कमीशन के सदस्यों की संख्या ३ से बढ़ाकर पाँच कर दी गई थी और कहा गया था कि भारत को

चाहिये कि वह अपनी सेना काश्मीर से हटा ले। पर इस प्रस्ताव के दो दिन पश्चात् ही भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने घोषणा कर दी थी कि भारत इस प्रस्ताव को मानने में असमर्थ है।

३ जून को सुरक्षा परिषद् ने ब्रिटेन के प्रतिनिधि का प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें पिछले प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कमीशन के सदस्यों को जल्दी से जल्दी काश्मीर जाने का आदेश दिया गया था और इस कमीशन को काश्मीर के साथ ही साथ जूनागढ़ आदि का मामला भी सौंपा गया था। पंडित नेहरू ने इस ३ जून के प्रस्ताव के बारे में एक कड़ा विरोध पत्र संयुक्त राष्ट्र संघ को दिया और साफ-साफ कह दिया भारत काश्मीर के प्रश्न के साथ-साथ जूनागढ़ आदि की समस्या को मिलाये जाने को कदापि सहन नहीं करेगा।

मगर 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' वाली कहावत। अमेरिका से प्रभावित संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने इस प्रस्ताव पर कार्य आरम्भ कर दिया और फलस्वरूप ५ राष्ट्रों का कमीशन ७ जुलाई को क्रांची तथा १० जुलाई को नई दिल्ली पहुँच गया। जिसके निम्नलिखित सदस्य थे—

श्री रिकार्डो जे० सीरी (अर्जेन्टाइना) सभापति, श्री अलफ्रेडो लोजानो (कोलम्बिया) उपसभापति, श्री एगवर्त ग्रेफे (बेलजियम) श्री जोजेफ कार्बेल, (चैकोस्लोवाकिया) और जे० के० हडल (अमरीका) श्री एरिक कालवन इस कमीशन के नेता थे, वह संयुक्त राष्ट्र के महामन्त्री श्री ट्रिग्वेली के प्रतिनिधि के रूप में आये थे।

भारत का पक्ष चूँकि स्पष्ट था, इसलिये उसने कमीशन से कुछ छिपाया नहीं, उसके सामने हर बात को स्पष्ट कर दिया और जाँच के लिये उसे पूरा-पूरा अवसर दिया, पर पाकिस्तान जिसने संयुक्त राष्ट्रसंघ में चिल्ला चिल्लाकर कहा था कि भारत काश्मीर में उसे खाँमखाँ आक्रमणकारी कहता है, इस समय काश्मीर में तेजी से लड़ रहा था। वह चाहता था काश्मीर में ऐसी अराजकता पैदा हो जाय कि कमीशन समझ ले पाकिस्तान आक्रमणकारी नहीं है, वरन काश्मीर की जनता स्वयं ही पाकिस्तान में सम्मिलित होना चाहती है। पर काश्मीर कमीशन ने अपनी आँखों से जब पाकिस्तान को काश्मीर में लड़ते हुए

देखा तो उसकी क़लई खुल गई और कमीशन ने अनुभव किया कि बिना युद्ध बन्द किये जाँच की कार्रवाही पूरी न हो सकेगी। अतएव १३ अगस्त को उसने भारत और पाकिस्तान के समक्ष तत्काल युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव रख दिया। प्रस्ताव में कहा गया कि विराम सन्धिकाल में पाकिस्तान और कबाइली सेनाएँ काश्मीर से हटा ली जायँ तथा स्वाभाविक स्थित स्थापित होने पर काश्मीर में जनमत लिया जाय। पहले तो भारत और पाकिस्तान दोनों ने ही इस प्रस्ताव (जनमत) को ठुकरा दिया, किन्तु कुछ स्पष्टीकरण के पश्चात् भारत ने उसे स्वीकार कर लिया, यद्यपि पाकिस्तान अब भी अपनी अड़ पर जमा हुआ था।

कमीशन और उसका कार्य

कमीशन निराश होकर लौट गया और उसने सुरक्षा परिषद को अपनी अन्तिम रिपोर्ट जाकर दे दी, जिसमें पाकिस्तान के झूठे अलाप और हठधर्मी की ओर भी संकेत था। यह रिपोर्ट पेरिस में २२ नवम्बर १९४८ को प्रकाशित हुई थी और उसमें पाकिस्तान पर आरोप लगाया गया था कि काश्मीर में युद्ध विराम न होने का कारण ये था कि पाकिस्तान ने १३ अगस्त के विराम सन्धि प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, जब कि भारत ने उसे स्वीकार कर लिया था।

पर कमीशन इतने पर भी हताश नहीं हुआ वह जैनेवा में अपनी रिपोर्ट तैयार करने में लगा रहा। पेरिस में जहाँ संयुक्त राष्ट्रसंघ का अधिवेशन हो रहा था भारत और पाकिस्तान के प्रतिनिधियों के बीच जनमत गणना सम्बन्धी कुछ आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार विनमय होता रहा। जिन सिद्धान्तों पर दोनों देशों के प्रतिनिधि सहमत थे उनकी सूचना दोनों सरकारों को उनके प्रतिनिधियों द्वारा भेज दी गई। इस बीच कमीशन के उपाध्यक्ष डाक्टर लो जानो एक बार फिर करांची और नई दिल्ली आये। इस बार उन्हें अपने कार्य में सफलता मिली और २६ दिसम्बर को वह अपनी रिपोर्ट देने न्यूयार्क के लिये रवाना हो गये। उनके जाते ही भारत के प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री श्री लियाकतअलीखाँ से युद्ध बन्द करने का प्रस्ताव किया। और दोनों के सहयोग से कमीशन की नियमित घोषणा से पूर्व ही

३१ दिसम्बर की अर्द्ध रात्रि को काश्मीर में युद्ध बन्द हो गया। और इस सुखद संवाद को भारत और पाकिस्तान ही नहीं बल्कि समस्त संसार की शान्ति प्रिय जनता ने नव वर्ष के लिये एक अनुपम उपहार के रूप में ग्रहण किया।

और इस तरह काश्मीर का एक महत्वपूर्ण भाग खोकर भी पंडित नेहरू ने काश्मीर के लिये ही नहीं, भारत और पाकिस्तान तथा इनसे सम्बन्धित राष्ट्रों की भलाई के लिये युद्ध बन्द करके अपनी शान्ति प्रियता का एक उदाहरण संसार के सामने और उपस्थित कर दिया। जब कि संसार इस बात को जानता है कि भारत की फौजें पाकिस्तानी फौजों से हर मामले में तगड़ी थीं और यदि पंडित नेहरू चाहते तो वह आज के आजाद काश्मीर को मुक्त कर सकते थे, पर उन्होंने अपने कई उच्च सेनापतियों और बहुत से तरुण जवानों का बलिदान होने पर भी अपनी शान्ति की नीति को नहीं छोड़ा और इस तरह काश्मीर का एक भाग आजाद काश्मीर के नाम से पाकिस्तान के पास चला गया।

दूसरा पहलू

सन् १९४७ के अक्तूबर के तीसरे सप्ताह में जब आक्रमणकारी कबाइली और पाकिस्तानी सैना काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से केवल कुछ ही मील दूर रह गई, तब काश्मीर के महाराज हरीसिंह जम्मू चले गये और महाराज के साथ ही साथ सभी राज्य कर्मचारी पुलिस और फौजी अधिकारियों सहित जम्मू या दूसरे स्थानों को चले गये और श्रीनगर एक तरह से बिल्कुल खाली कर दिया। ऐसी स्थिति में शेख अब्दुल्ला अपने अन्य साथियों के साथ जेल से छोड़ दिये गये। वह तुरत भारत आये, पंडित नेहरू से काश्मीर की समस्या पर परामर्श किया। इस बीच काश्मीर की स्थिति और भी गम्भीर हो चुकी थी। शेख अब्दुल्ला ने नेशनल कान्फ्रेंस की ओर से पंडित नेहरू से सहायता माँगी और भारतीय सैना के श्रीनगर आने तक श्रीनगर में गृहरक्षक दल तैयार करना आरम्भ कर दिया। गृहरक्षक दल कबाइली और पाकिस्तानी फौजों से आक्रमण की रक्षा करने लगा और शहर की सारी शासन व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। इस तरह बिना किसी के शासन व्यवस्था सौंपे ही शेख अब्दुल्ला ने शासन व्य-

वस्था सम्हाल ली। और काश्मीर के मंत्रिमंडल का निर्माण हो गया। कहने को कहा गया महाराज काश्मीर ने मंत्रिमंडल का निर्माण किया, मगर महाराज काश्मीर को उस समय पता चला जब मंत्रिमंडल सुचारु रूप से काम करने लगा और बाद में महाराज ने औपचारिक रूप से इसे स्वीकृत कर लिया।

मगर जब काश्मीर के सवाल पर शेख अब्दुल्ला को संयुक्तराष्ट्र संघ में अपना मत व्यक्त करने के लिये बुलावा आया तो पंडित नेहरू हिचके, और परिस्थिति भांप गये, मगर चूँकि उन्होंने न केवल काश्मीर वरन् विश्वशांति के हेतु काश्मीर समस्या को संयुक्त राष्ट्र-संघ को सौंपा था, अतएव वह इस नये नाटक को देखते रहे इसके सिवाय कर भी क्या सकते थे। फलस्वरूप शेख अब्दुल्ला वहाँ गये और एक दूसरे नाटक की आधार शिला रखी गयी। कहने के लिये शेख अब्दुल्ला ने यह सिद्ध किया कि काश्मीर पाकिस्तान के साथ नहीं रहना चाहता। काश्मीरी जनता इसके खिलाफ है कि काश्मीर पाकिस्तान में मिलाया जाय, उस के हित भारत के साथ रहने में सुरक्षित हैं; मगर उन्होंने खुलकर नहीं कहा था कि काश्मीर भारत में विलय होना चाहता है अथवा काश्मीरी जनता भारत में विलय होना चाहती है, मगर भारत सरकार ने इस नये नाटक की ओर कम से कम उस समय ध्यान नहीं दिया, क्योंकि पंडित नेहरू ही नहीं हिन्दुस्तान की समस्त जनता शेख अब्दुल्ला पर विश्वास करती थी। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में भारतीय और काश्मीरी जनता ने मिलकर देसी नरेशों के विरुद्ध संघर्ष किया था। फिर शेख अब्दुल्ला कुनंदन की नाईं नये नेता थे, यह किसी को भास भी नहीं था कि शेख ही एक दिन राष्ट्र की कमर में अपने स्वार्थों के निमित्त छुरा घोंप देगा।

शेख अब्दुल्ला अब प्रधान मंत्री बन जाने के बाद और अपनी स्थिति काश्मीर में काफी मजबूत कर लेने के बाद एक प्रकार से पाकिस्तान और भारत से सौदेबाजी करने लगे। उन्होंने समझा पंडित नेहरू सीधे आदमी हैं, उन्हें धोखा देना कोई नई बात नहीं है, मगर पंडित नेहरू सब कुछ देख और सुन रहे थे, और बड़ी बारीकी के साथ परिस्थितियों का अध्ययन कर रहे थे। शेख उनकी आँखों में धूल झोंक सकने में असमर्थ रहा। और जब काश्मीर के प्रधान मंत्री

के बजाय उसने काश्मीर का सम्राट बनने का स्वप्न देखा तो वह तुरत पकड़ लिया गया। पाकिस्तान के द्वारा रची अमेरिका की नई साजिश भी कामयाब न हो सकी। और इस तरह विश्वशांति को, भारत में दूसरी बार काश्मीर द्वारा खतरा पहुंचाने की चाल अमेरिका की असफल हो गयी।

अमेरिकन साम्राज्यवादियों ने पाकिस्तान द्वारा शेख अब्दुल्ला को लालच दिया कि यदि काश्मीर भारत में विलय हो गया तो तुम्हारे पल्ले क्या पड़ेगा, क्योंकि जनमत जब तक तुम्हारे साथ है तुम प्रधान मंत्री हो और हिन्दुस्तान में हिन्दुओं की आबादी अधिक है इसलिये काश्मीर के भारत में विलय हो जाने के बाद कभी भी वहाँ की हिन्दू जनता का जनमत तुम्हारे खिलाफ हो सकता है, इस तरह तुम्हारा मंत्रिमंडल भारत के हिन्दुओं के हाथ में है जो कभी भी तुम्हें सहन नहीं करेंगे। शेख की अक्ल पर पत्थर बरस गये और भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अपनी अनेकों कुर्बानियों को भूलकर वह अमेरिका की साम्राज्यवादी चालों में आ गये।

उन्होंने सम्राट होने जैसी अपनी स्थिति बना ली। एक मजूर का लड़का शेख अब्दुल्ला अब चालीस और पचास हजार रुपये की कार में बैठने लगा और फिजूलखर्ची इतनी करने लगा कि जहां काश्मीरी जनता भूखों मर रही थी, वहीं शेख काश्मीर की अधिकतर आमदनी अपने ऊपर खर्च कर रहा था। काश्मीर में अमेरिकन गुप्तचरों का जाल सा बिछ गया जो काश्मीर के महत्वपूर्ण स्थानों के चित्र तो लेते ही थे भारत के विरुद्ध काश्मीरी जनता के दृढ़ मनोबल को भी कमजोर करते थे।

इस बीच एक ऐसी घटना घटित हो गयी कि जिसका प्रभाव शेख अब्दुल्ला पर भले ही न पड़ा हो, मगर काश्मीर की काया आन्तरिक ढंग से पलट गयी। यानी महाराज हरीसिंह स्वर्गवासी हो गये थे और उनकी जगह पर उनके पुत्र कर्णसिंह राजप्रमुख बन गये थे।

कर्णसिंह भले ही दकियानूसी परिवार में पैदा हुये थे, मगर नये जमाने की हवा लग चुकी थी। और कम से कम एक बात, राजप्रमुख कर्णसिंह के सामने साफ थी कि यदि शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर की अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाकर

स्वतंत्र घोषित कर दिया तो उनका क्या बनेगा। पहली बात श्री कर्णसिंह जी ने चाहे न सोची हो, मगर दूसरी बात अवश्य सोची, फलस्वरूप शेख के मन्त्रिमंडल के एक प्रमुख सदस्य और आज के प्रधान मंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद को उन्होंने पंडित नेहरू के पास भेजा। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जो बड़ी बारीकी से काश्मीर और शेख की गतविधियों को देख रहे थे, पता नहीं क्या परामर्श दिया। शेख तक को इस मुलाकात की जानकारी नहीं मिल पायी। और जब काश्मीर को शेख स्वतंत्र राष्ट्र घोषित करने की पूर्ण तैयारी कर चुका, पाकिस्तानी और अमेरिकी गुप्तचरों से जब काश्मीर पूर्णरूप से भर गया तब यकायक शेख का पतन हो गया। उसे, अन्य साथियों के सहित जो काश्मीरी जनता और भारत के साथ गद्दारी कर रहे थे, अचानक एक दिन गिरफ्तार कर लिया गया और दूसरे ही दिन लोगों ने समाचार पत्रों में मोटे-मोटे शीर्षकों में पढ़ा।

'शेख अब्दुल्ला गिरफ्तार'

काश्मीर का नया मंत्रिमंडल बख़्शी गुलाम मुहम्मद के नेतृत्व में बना।

लोगों को आश्चर्य चाहे हुआ हो, पर जब समाचार पत्रों के प्रतिनिधि पंडित नेहरू के पास गये और उन्होंने इस नयी स्थिति के बारे में ज्ञात करना चाहा तो वह मुस्करा कर बोले—'मैं कुछ नहीं जानता'

और इस 'मैं कुछ नहीं जानता' के कूटनीतिज्ञ पूर्ण उत्तर से सभी को विस्मय हुआ।

और इसके कुछ दिन बाद ही पंडित नेहरू ने घोषणा कर दी, काश्मीर में पर्यवेटक नहीं रह सकेंगे जिन्होंने बाकायदा भारत से अनुमति न ले ली होगी, और इस तरह काश्मीर में फैले गुप्तचरों का सफाया स्वयं ही हो गया। पंडित नेहरू की चातुरी से काश्मीर द्वारा विश्वशांति को नष्ट होने से बचा लिया, जिसका कारण शेख बनता।

और जब से अब तक काश्मीर के बारे में कई बार पाकिस्तान और भारत के प्रधान मंत्री, उच्च अफसर आपस में भेंट कर चुके हैं, मगर हालत वही है, जो थी। अब कम से कम बख़्शी गुलाम मुहम्मद के नेतृत्व में वह खुराफातें नहीं हो सकेंगी जो शेख के शासन काल में हो गयी थीं, और इस तरह से अब काश्मीर

की ओर से खतरा नहीं रह गया है विश्व शांति के लिए, यह सारी दुनियां जान गई है, और शायद अब अमेरिका पाकिस्तान द्वारा ऐसे कुकृत्य कराने की हिम्मत भी न कर सकेगा। फिर भी काश्मीर की जनता सजग और सचेत है।

हैदराबाद एक समस्या

हैदराबाद रियासत की हालत भी बड़ी विचित्र हो गई थी, जब एक ओर भारतीय फौजें काश्मीर में शांति और सुरक्षा स्थापित करने में लगी हुई थीं, तभी हैदराबाद रियासत के नौकरशाही हैदराबाद को स्वतंत्र घोषित करने की चेष्टा में लगे हुये थे। उनकी इच्छा थी, हैदराबाद एक इकाई राज्य के रूप में स्वतंत्र रहे, जिस स्वप्न को शेख अब्दुल्ला ने बहुत बाद में देखा, नवाब हैदराबाद ने उसे बहुत पहले ही देखा। पर नवाब हैदराबाद ने तो वास्तविकता की ओर से बिल्कुल आँखें ही मूँद ली थीं, अर्थात् काश्मीर की बहुसंख्यक आबादी मुस्लिम आबादी है और हैदराबाद की बहुसंख्यक आबादी हिन्दू आबादी है, जो हर तरह से हिन्दुस्तान के साथ रहना चाहती थी। हैदराबाद की जन संख्या लगभग एक करोड़ सत्तर लाख है, राजस्व सतरह करोड़ है और यह रियासत (अब प्रान्त) दक्षिणी पठार के ८२६६८ वर्ग मील में फैली हुई है। हैदराबाद दक्षिणी भारत के बीचोंबीच है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हैदराबाद दक्षिणी भारत का हृदय है, हैदराबाद की सीमा किसी भी विदेशी प्रदेश से काश्मीर की तरह नहीं लगी हुई है बल्कि चारों ओर भारतीय प्रान्तों और रियासतों (अब प्रान्त) से घिरा हुआ है और इसकी सभ्यता, इसकी संस्कृति व ऐतिहासिक परम्परा दक्षिण पठार की द्रविड़ सभ्यता के अभिन्न अंग हैं। इस प्रकार हैदराबाद को किसी भी मूल्य पर भारत से अलग नहीं किया जा सकता था, पर नवाब हैदराबाद एक ओर जहाँ चुपचाप बैठे एक स्वतंत्र राज्य के सम्राट बनने के स्वप्न देख रहे थे, वहीं कुछ सिर फिरे लोग नवाब के इन स्वप्नों को बढ़ावा दे रहे थे।

'रिजवी' नामक एक साम्प्रदायक नौकरशाह ने 'रजाकार' नामक एक दल का संघठन किया, कहते हैं इस दल के सम्बन्ध में पूर्णरूप से निजाम को जान-

कारी थी । रजाकारों में वह लोग सम्मिलित थे, जो पहले (या वर्तमान) पुलिस या फौज में थे, पुलिस और फौज का पूरा पूरा सहयोग उसे मिला था । पाकिस्तान ने उसे शस्त्र मुहैया किये थे, और इस तरह से रजाकार एक जनसाधारण संगठन न होकर फौजी संघठन बन गया था, जो हिन्दुस्तानी फौज और पुलिस का मुकाबिला करने की भीतर ही भीतर पूरी तैयारी कर रहा था । उड़ती हुई एक खबर के आधार पर यह बात भी सुनी गई कि नवाब हैदराबाद के परिवार के कुछ लोग पाकिस्तान पहले ही चले गये थे, जो अमेरिका से शस्त्रास्त्र मंगा कर हैदराबाद भेजे रहे थे । इस तरह से भीतर ही भीतर षड्यंत्र चल रहा था, और भारत सरकार का इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं था, क्योंकि भारत सरकार अपनी सारी शक्ति से देश में शांति स्थापना में लगी थी, दूसरे प्रश्न भी सामने थे जैसे शस्त्रास्त्र शरणार्थियों के लिए काम और मकानों की समस्या आदि ।

पता उस दिन लगा जब रजाकारों ने अपनी हलचलें आरम्भ कर दीं, और वह हैदराबाद की जनता को लूटने खसोटने का कार्य करने लगे, मगर भारत सरकार ने उस समय भी चुप रहना ठीक समझा क्योंकि हैदराबाद तब तक राज्य नहीं बना था, देसी रियासतें अपनी सीमा के भीतर की व्यवस्था करने के लिये स्वतंत्र थीं ।

काश्मीर के प्रश्न के साथ ही साथ श्री जफरुल्लाखां पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के सामने हैदराबाद की समस्या भी रखी । जिसका भारतीय प्रतिनिधि ने अपनी पूरी शक्ति के साथ विरोध किया, पर इस विरोध के बावजूद भी इंगलैण्ड और अमेरिका ने हैदराबाद में दिलचस्पी लेनी कम नहीं की थी, मगर इंगलैण्ड या अमेरिका जब तक कोई कदम उठाए उस समय तक देश में शांति स्थापित करने के हेतु भारतीय पुलिस ने हैदराबाद को अपने कब्जे में कर लिया था, इस तरह इंगलैण्ड या अमेरिका दखलन्दाजी करने में अपने को असमर्थ पा चुप रह गये ?

बात यों हुई कि रजाकारों ने पहले अपनी शक्ति हैदराबाद राज्य के भीतर ही साम्प्रदायक झगड़ों में आजमायी और जब निहत्थी जनता की लूट खसोट

में उनके मुँह खून लग गया तो उनकी हलचलें हैदराबाद के सीमावर्ती राज्यों में भी होने लगीं, जिसे सरकार सहन न कर सकी और फलस्वरूप पुलिस कार्रवाही करनी पड़ी। और तीन दिन के भीतर सम्पूर्ण हैदराबाद में फिर से शाँति स्थापित हो गई। भारतीय पुलिस का हैदराबाद के नागरिकों ने हृदय खोल कर स्वागत किया, रजाकारों पर बुरी मार पड़ी, और इस पुलिस कार्रवाही में रजाकारों की सारी शक्ति नष्ट हो गई, तथा नवाब हैदराबाद को हिरासत में ले लिया गया। इस तरह सबसे पहले देशी रियासतों में सबसे सम्पन्न रियासत हैदराबाद समाप्त होकर भारतीय प्रान्त बन गयी। और पंडित नेहरू ने शीघ्र ही हैदराबाद की ओर से जो शांति भंग होने का खतरा उत्पन्न हो गया था उसे सदैव के लिये समाप्त कर दिया।

द्वितीय अध्याय

पंडित नेहरू की अमेरिका यात्रा

अमरीका में नेहरू

एक दृष्टि

पंडित नेहरू जब अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन के निमन्त्रण पर अमेरिका गए थे, तब विश्व में एक तनावपूर्ण वातावरण चल रहा था, लगता था अब विस्फोट हुआ, अब विस्फोट हुआ। और तो और स्वयं भारत ने अमेरिका का कई मामलों में विरोध किया था, काश्मीर और हैदराबाद का मामला तो भारत का घरेलू मामला था, जिसके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के बीच भारत ने अमेरिका का पूरे जोर के साथ प्रतिवाद किया था। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने एक भाषण में स्पष्ट कह दिया था—"काश्मीर के संबध में ट्रूमैन और श्री एटली के हस्तक्षेप से मैं आश्चर्यचकित हूँ।"

प्रशांतक्षेत्र एवं सुदूर पूर्व सम्बन्धी नीति के बारे में भी भारत और अमेरिका के विचारों में मेल नहीं खाता था, फिलिपाइन्स के राष्ट्रपति (तत्कालीन) ने प्रशांत संघ योजना तयार की थी। अमेरिका प्रशांत और सुदूरपूर्व कम्युनिस्टों से मुकाबला करने के उद्देश्य से इस योजना में दिलचस्पी ले रहा था। भारत यह नहीं चाहता था कि एशियाई देशों के मामले में सैनिक स्तर पर हस्तक्षेप किया जाय, पर अमेरिका के परराष्ट्र विभाग ने इस योजना पर विचार किया और दुनियां के सामने तात्कालिक कार्रवाइयों के रूप में अमेरिका के रुख का नया पहलू आ गया। क्योंकि परराष्ट्र विभाग द्वारा इस योजना पर विचार करने से पूर्व ही प्रशांत क्षेत्र में बचे लगभग एक करोड़ डालर की लागत के अतिरिक्त सामरिक और विस्फोटक पदार्थ चीन की राष्ट्रीय सरकार (च्यांग सरकार) के हाथ दसवांश मूल्य पर बेच दिये।

इधर चीन में जनवादी प्रजातन्त्र की स्थापना की घोषणा सितम्बर १९४९ में हो चुकी थी। चीन की इस नयी सरकार को भारत ने मान्यता दे दी थी,

मगर अमेरिका चीन को मान्यता देने में अकारण ही बहाने तलाश कर रहा था। अमेरिका के परराष्ट्र सचिव श्री अचेसन ने तीन प्रश्न दुनियां को दिखाने के लिये चीन की मान्यता के सम्बन्ध में उठाये—(१) यह बात साफ नहीं है कि चीन की साम्यवादी सरकार जिस क्षेत्र पर कब्जा करने का दावा करती है, क्या वास्तव में उसपर उसीका कब्जा है ? (२) क्या वह अन्तर्राष्ट्रीय उत्तर-दायित्य को पूर्ण रूप से निभा सकती है, और क्या वह उसके लिए तैयार भी है ? (३) उसे जनता की अधिकतर संख्या का हार्दिक सहयोग प्राप्त है ?

कुछ दिन बाद ही यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई कि इन तीन प्रश्नों का कोई महत्त्व नहीं है, अचेसन ने सिर्फ टालने वाली बात का बहाना बनाने के लिये ये तीन प्रश्न तैयार किये थे, भारत ने जनवादी चीन की सरकार को स्वीकार कर लिया था, इस प्रश्न पर भी दोनों देशों में मतभेद सा ही था।

चीन के साथ ही साथ दक्षिण अफ्रीका के बारे में भी अमेरिका और भारत में खींचा तानी सी चल रही थी। दक्षिणी अफ्रीका द्वारा स्वीकृत 'एशियाटिक लैण्ड रेन्योर अमेंडमेंट एक्ट' के विरुद्ध भारत ने आवाज उठायी थी और एक विरोधपत्र भी अफ्रीका की सरकार के पास भेजा था। भारत की इच्छा थी कि अमेरिका और इंगलेंड उस पर दबाव डालें, पर अमेरिका ने इसमें बिल्कुल दिल-चस्पी नहीं ली। दक्षिणी अफ्रीका में रंग भेद की नीति जो संसार में सभ्यता का ढोंग रचते हैं उनके लिए आज भी एक चुनौती है।

नेहरू और अमेरिका

राष्ट्रपति ट्रूमैन के आग्रह पर पंडित नेहरू ११ अक्तूबर को वाशिंगटन हवाई अड्डे पर पहुँच गये। चूंकि भारत एशियाई देशों में चीन को छोड़कर सबसे बड़ा है, और एशिया के मध्य में रहने से एशिया का प्राण है, इसलिये पंडित नेहरू को प्रसन्न करके अमेरिका भारत में अपने व्यापार की मंडी खोलना चाहता था, या यों ठीक रहेगा कि जब काश्मीर और हैदराबाद में घुस पैठ नीति अमेरिका की नहीं चली तो काश्मीर को हथियाने की दृष्टि से और अपने व्यापार को और भी उन्नति दिलाने के लिए पंडित नेहरू को उन्होंने अपने यहां बुलाकर अमेरिकन ऐश्वर्य से चकाचौंध कर देना चाहा।

पंडित नेहरू के अमेरिका पहुंचने से पूर्व ही लगभग अमेरिका के समस्त अखबारों ने पंडित नेहरू और भारत के विषय में बहुत कुछ छापा। मोटे मोटे विशेषांक अखबारों ने प्रकाशित किये जिससे अमेरिकन जनता का पंडित नेहरू की ओर विशेष आकर्षण हो गया था। वाशिंगटन पोस्ट के लिए, विशेष संवाददाता ने पंडित नेहरू को विश्व नागरिक के रूप में अपने पाठकों को परिचय दिया था और इस आगमन को पूर्व और पश्चिम का अद्भुत मिलन कहा था। और लिखा था—'एशिया महाद्वीप के बहुत बड़े भाग का भाग्य पंडित नेहरू के हाथों में है। यहाँ से जिस धारणा को वह भारत ले जायेंगे, उसके द्वारा भविष्य में पर्याप्त काल पर्यन्त पूर्व और पश्चिम के पारस्परिक सम्बन्ध का निर्माण हो सकता है। प्राचीन भारत और वर्तमान अमेरिका दोनों महसूस कर रहे हैं कि एक के लिए दूसरा बहुत महत्वपूर्ण है।'

पंडित नेहरू का एक बहुत बड़े राजनीतिज्ञ के रूप में अखबारों ने अमेरिकन जनता से परिचय कराया था। इसी अखबार ने लिखा—'स्वतन्त्रता की प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् शुरू होनेवाले साम्प्रदायक दंगों का मुकाबला साहस के साथ करने, राज्य के रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुये राष्ट्रमंडल में रहने की पुष्टि करने वाला समझौता करने, हिन्देशिया के संबंध में एशियाई देशों का सम्मेलन, जिसकी व्यवस्था और संचालन उन्होंने इतनी कुशलता से किया कि परोक्ष में शान्तिपूर्ण ढंग से मामला सुलझाने की प्रकृति को प्रोत्साहन मिला, इन प्राप्त सफलताओं ने नेहरू जी को सच्चा राजनीतिज्ञ सिद्ध कर दिया है और इनके कारण अमेरिका के अधिकारियों की दृष्टि में उनका सम्मान काफी बढ़ गया है।'

न्यूयार्क टाइम्स ने लिखा—'यदि किसी की लोकप्रियता उसके अपने देश के निवासियों के स्वेच्छा प्रेरित सहयोग से आंकी जा सकती है तो अमेरिकन जनता प्रथम बार विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति का दर्शन करेगी।'

हवाई अड्डे पर जब पंडित नेहरू उतरे तो राष्ट्रपति ट्रूमैन तथा उनके मन्त्रिमण्डल के मन्त्री और अन्य उच्च सरकारी अफसर उनके स्वागत के लिए आए हुये थे। राष्ट्रपति ने आगे बढ़कर उनका अभिवादन किया और उनके सम्मान

में १९ तोपों की सलामी दी गई, इसके बाद अन्य उपस्थित सज्जनों से परिचय कराया गया।

हवाई अड्डे पर दोनों देशों के राष्ट्रगीतों की ध्वनि प्रसारित की गयी। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने इस समय जो भाषण दिया वह अत्यन्त संक्षिप्त था। उन्होंने कहा:—

'भारत के प्रधान मन्त्री महोदय ! संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की जनता और सरकार की ओर से यहां स्वागत करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। न केवल भारत सरकार के प्रमुख के रूप में वरन् स्वतन्त्र लोगों के एक महान् देश के प्रतिष्ठित नेता के रूप में भी मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ।

'भाग्य की यह इच्छा थी कि भारत का मार्ग खोजने के सिलसिले में खोजक ने अमेरिका का पता लगाया। मुझे आशा है कि आपकी यात्रा भी एक प्रकार से 'अमेरिका की खोज' के रूप में होगी।

'मैं संयुक्त राज्य अमेरिका की जनता की ओर से अतिशय भाव और सद्-भावना प्रकट करता हूँ और आशा करता हूं कि इस देश की यात्रा के पश्चात् लौटने पर आपकी यह भावना मजबूत होगी कि हम आपके घनिष्ट मित्र हैं।'

(न्यूयार्क टाइम्स)

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने संक्षिप्त पर प्रथम भाषण में स्वागत का आभार प्रकट किया और बताया कि आपस के लाभ तथा मानव समाज के कल्याण के लिए पूर्व और पश्चिम के देश मित्रता एवं लाभदायक सहयोग के आधार पर कई प्रकार से मिलजुलकर कार्य कर सकते हैं।

स्वागत के पश्चात् उन्हें गार्ड आफ आनर दिया गया।

पंडित जवाहरलाल नेहरू 'ब्लेयर हाउस' में ठहराये गये। अमेरिकन राष्ट्र-पति श्री ट्रूमैन भी इसी में अस्थायी रूप से ठहरे हुए थे, क्योंकि व्हाइटहाउस में इन दिनों मरम्मत हो रही थी। यहां उसी दिन संध्या को प्रीति भोज दिया गया। जिसमें अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य जज श्री फ्रेड विसन और श्रीमती विसन, अमेरिका की साधारण सभा के स्पीकर श्री सैमरेवर्न, परराष्ट्र मन्त्री डी० अचेसन और श्रीमती अचेसन, रक्षामन्त्री लुईजानसन और श्रीमती

जानसन, परराष्ट्र संबंधी समिति के अध्यक्ष सिनेटर एम कानोली और श्रीमती कानोली, भारत स्थित अमेरिका के राजदूत और श्रीमती विजयलक्ष्मी आदि गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

भोज के पश्चात् श्री ट्रूमैन से दो घन्टे तक आपकी बातचीत होती रही। दूसरे दिन ही वह ब्लेयर हाऊस छोड़कर भारतीय राजदूत भवन में चले गये।

इसी दिन नेहरू जी अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन की समाधि पर गये और वहाँ पुष्पांजलि अर्पित की। जार्ज वाशिंगटन अमेरिका के भाग्य निर्णायक थे, और अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति भी। जिन्होंने मानवता की जीवन भर सेवा की थी और अमेरिका को दासता के बंधन से मुक्त कराया था.। विश्व के महान् नेताओं के नाम के साथ उनका नाम भी आदर से लिखा जाता है।

नेहरू जी का उद्देश्य मेलजोल बढ़ाना तथा अमेरिका निवासियों की भावनाओं और उनके आदर्श को समझना था, और इसी कार्य में अमेरिका के अधिकारियों से विचार-विमर्श करने का कार्य भी सम्मिलित था। अमेरिका में पहुँचने के दूसरे दिन ही श्री नेहरू के सम्मान में डी० अचेसन की ओर से एक भोज का आयोजन किया गया तथा साथ ही मैसेच्युट्स एवेन्यू स्थित इण्डियन चांसरी में अमेरिका निवासी भारतीय विद्यार्थियों की ओर से स्वागत समारोह का आयोजन भी किया गया। इस तरह से जहाँ भोज में उन्होंने अमेरिकन सरकार के अधिकारियों से परिचय प्राप्त किया, वहीं दूसरी ओर भारतीय विद्यार्थियों से भी वार्तालाप का उन्हें तुरन्त समय मिल गया।

१३ अक्तूबर १९४७ अमेरिका के इतिहास में सदैव स्मरण रखा जानेवाला दिन बन गया। क्योंकि इस दिन पंडित नेहरू ने प्रथम बृहत् भाषण अमेरिका की साधारण सभा और सीनेट के समक्ष दिया। जिसमें उन्होंने बताया हिंदुस्तान कैसा है और क्या चाहता है। यह भाषण अमेरिका में सुना है अब ऐतिहासिक भाषण माना जाता है। अतएव इस ऐतिहासिक भाषण को हम ज्यों का त्यों पंडित नेहरू के शब्दों में ही दे रहे हैं क्योंकि अमेरिका में पंडित नेहरू ने अपने भाषणों में जो कुछ कहा वह केवल पंडित नेहरू की आवाज नहीं थी,

बल्कि भारत की ३६ करोड़ जनता की आवाज थी। वह भाषण केवल भारत के प्रधानमन्त्री की आवाज नहीं थी, बल्कि भारत की जनता के एक होनहार बेटे की आवाज थी, जो मानव को मानव समझता है।

प्रथम भाषण

'इस सभा के सदस्यों के समक्ष भाषण करने का समय प्रदान किये जाने को मैं बहुत बड़ा सम्मान समझता हूँ। मुझे इसके लिये आभार प्रकट करना चाहिए। यह सभा एक विस्तृत भाव में अमेरिका के गणराज्य का, जिसका आज मानव जाति के निर्माण कार्य में गहरा हाथ है प्रतिनिधित्व करती है। आपकी महान सफलताओं से कुछ सीखने के लिये मैं आपके देश में आया हूँ और इसलिए भी मैं आया हूँ कि आपके प्रति अपने देश की शुभकामनायें व्यक्त करूँ। मेरी यात्रा एक दूसरे को समझने की दोनों देश की जनता की भावना के विकास में सहायक हो सकती है, और एक ऐसे मजबूत बन्धन को तैयार कर सकती है जो कभी-कभी छिपा रहता है, पर जो मनुष्यों के शारीरिक सम्बन्धों से भी अधिक मजबूत होता है और जो तरह-तरह के देशों को एक दूसरे से संयुक्त कर देता है।

'मेरे आगमन पर श्रीमन् राष्ट्रपति महोदय ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भाषा में कहा था कि मैं अमेरिका की खोज के लिये आया हूँ। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका सुदूर स्थित भारत के लिए कोई अज्ञात देश नहीं हैं। हम में से अनेक उन आदर्शों और उद्देश्यों की प्रशंसा करते हुए युवा हुए हैं, जिन्होंने इस देश को महान् बनाया। हम एक दूसरे के इतिहास और संस्कृति को जान सकते हैं, पर आवश्यकता इस बात की है कि एक दूसरे को हम भली प्रकार समझें और आदर करें, जहाँ मतभेद हो वहां भी यही बात रहे। इस तरह के विचारों से समान आदर्शों की प्राप्ति के प्रयास में फलदायक सहयोग जन्म लेता है। सम्भवतः दुनियाँ में आज सबसे बड़ी कमी इसी बात की है। इसीलिये मैं अमेरिकनों के हृदय और मस्तिष्क की खोज और उनके सामने अपने देश के हृदय और मस्तिष्क रखने के लिये यहाँ आया हूँ। इसी तरह हम उपरोक्त भावना और सहयोग के आधार पर आगे बढ़ सकते हैं। मुझे पूरा विश्वास है दोनों देश

हृदय से इसके लिये इच्छुक हैं।

'गत दो दिनों से मैं वाशिंगटन में हूँ, इस बीच में इस राष्ट्र के महान् निर्माताओं के स्मारकों पर भी गया हूँ, मैंने केवल रस्मी काम करने के लिए ही ऐसा काम किया है, क्योंकि वे तो बहुत बड़े अर्से से मेरे हृदय में अंकित हैं, उनके उदाहरण ने मुझे और मेरे अगणित देशवासियों को प्रोत्साहन प्रदान किया है। ये स्मारक ही तो सच्चे देवस्थान हैं। प्रत्येक पीढ़ी को इन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिये और श्रद्धांजलि करते समय उस प्रकाश से एक भाग अवश्य ग्रहण करना चाहिये जो न केवल इस देश की स्वतन्त्रता के बल्कि विश्व की स्वतन्त्रता के मार्ग दर्शकों के हृदयों में प्रकाशित रहा। वास्तव में जो महान होते हैं, उनका कुछ न कुछ संदेश भी होता ही है, और ऐसा संदेश किसी देश की परिधि तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता, ऐसे संदेश तो विश्वभर के लिये हुआ करते हैं।

'हमारी पीढ़ी में ही एक महा मानव का उदय हुआ, उसने सदैव हमें स्मरण दिलाया कि विचार और कार्य में नैतिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध टूटना न चाहिये और इसीसे हमारे हृदयों को प्रेरणा मिलती रही आगे बढ़ने के लिये।' उन्होंने कहा—'सत्य एवं शान्ति का मार्ग ही मानव के लिये सच्चा मार्ग है।' उनके नेतृत्व में ही हमने अपनी आजादी की लड़ाई लड़ी। हमारे मनों में किसी के भी खिलाफ बुराई नहीं थी। श्रद्धा और प्यार के कारण हमने उनको राष्ट्रपिता कहा था, पर उनकी महानताएँ इतनी थीं कि वह एक देश के भीतर नहीं समा सकते थे, उन्होंने हमें जो सन्देश दिया वह आज विश्व की बड़ी से बड़ी समस्या पर भी विचार करने में मददगार सिद्ध हो सकता है।

'स्वतन्त्रता और अतुलनीय वैभव के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी गत डेढ़ दो सौ वर्षों से संघर्ष किया है, जिससे वह आज महान शक्तिशाली राष्ट्र है। भौतिक धन के विकास एवं साइंस तथा शिल्प विज्ञान सम्बन्धी प्रगति के लिये उसका रिकार्ड आज दुनियाँ में आश्चर्यजनक है। यदि आरम्भ में उसने अपने महान सिद्धान्तों का सहारा न लिया होता तो आज अमेरिका की यह स्थिति न होती। भौतिक विकास तो न तब तक प्रगति कर सकता है न स्थायी रह सकता है जब तक कि उसकी जड़ नैतिक सिद्धान्तों और उच्च आदर्शों पर

स्थापित न की जाय । ये सिद्धान्त आपके स्वतंत्रता के घोषणा पत्र में मौजूद हैं । इसमें स्वत: सिद्ध सत्य की सम्मति में यह स्वीकार किया गया है कि सभी मनुष्य समान पैदा हुए हैं । पर कर्मो ने उन्हें कुछ निश्चित अधिकार सौंपे हैं, जिनमें जीवन, स्वतन्त्रता और प्रसन्नता की उपलब्धि का प्रयास भी सम्मिलित है । आपको यह जानकर हर्ष हो सकता है कि गणराज्य भारत के संविधान को तैयार करने में हम आपके संविधान से काफी प्रभावित हुए हैं । भारतीय विधान की परिभाषा में कहा गया है-—"हम भारत निवासी, भारत की सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के हेतु, तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिये, तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुदृढ़ करने वाली बन्धुता बढ़ाने के निमित्त, इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं ।"

'स्पष्ट ही इन शब्दों में आपको आपके गणराज्य की नींव डालने वालों की आवाज सुनाई देगी । इस प्रकार आप देखेंगे कि यद्यपि भारत आपसे ऐसी आवाज में बात कर सकता है जिसे आप तुरत पहचान न सकें और जो विदेशी सी लगे, पर उसकी आवाज में उस ध्वनि की गहरी प्रतिच्छाया है जो बहुधा आपने पहले भी सुनी है । पर इस सबके पश्चात् भी यह बात सच है कि भारत की आवाज कुछ भिन्न है । यह आवाज पुरानी योरोपीय दुनियाँ की नहीं अपितु नयी दुनियाँ की है, यों कहें कि यह एक प्राचीन सम्पदा की आवाज है जो स्पष्ट और जोरदार है, तथा जिसने नव जीवन धारण किया है और जिसने आपसे तथा पश्चिमी देशों से काफी सीखा है, तो ठीक रहेगा । अतएव यह नई और पुरानी दोनों तरह की सम्मिलित आवाज है । इसकी जड़ें भूतकाल में जमी थीं, पर यह वर्तमान समय की प्रगतिशील आवश्यकताओं की भी प्रतिनिधित्व करती है । इस तरह भारत और अमरिका की आवाज में चाहे कितनी ही भिन्नता दिखायी दे, इनमें समानता भी बहुत कुछ है । आपकी तरह हमने भी अपनी स्वतन्त्रता क्रान्ति द्वारा प्राप्त की है, पर तौर-तरीके भिन्न-भिन्न रहे हैं । आपके

राष्ट्र की तरह भारत भी संघ राज्य के सिद्धान्तों पर आधारित गणराज्य होगा। और यही उनकी सबसे बड़ी देन है जिन्होंने आपके राज्य की नींव रखी थी।

'भारत ऐसे महान् देश में, जैसा कि महान् गणराज्य संयुक्त राज्य अमेरिका में है, केन्द्रीय नियन्त्रण और प्रादेशिक स्वतन्त्रता में हलका संतुलन बनाये रखना आवश्यक हो जाता है। पर हमने अपने संविधान में उन मौलिक मानवीय अधिकारों को सामने रखा है जिसके लिये स्वतन्त्रता, समानता और विकास के प्रेमी इच्छुक होते हैं। यह अधिकार है—व्यक्ति स्वातन्त्र्य, समानता और कानून द्वारा शासन। हमारे संविधान में तथा हमारे देश की जनता के विचारों में लोकतन्त्र की जड़ें गहराई तक जमी हुई हैं। इसी रूप में हम स्वतन्त्र देशों के परिवार में सम्मिलित होते हैं। हमने अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करली है, पर क्रान्ति अभी अपूर्ण है और वह आज भी विकासोन्मुख है। जीवित रहने और खुशहाली प्राप्त करने के अधिकार के बिना जो केवल आर्थिक उन्नति से ही प्राप्त हो सकती है, राजनैतिक स्वतन्त्रता जनता को प्रसन्न नहीं रख सकती। दूसरा हमारा कार्य है देश की जनता के जीवन स्तर को उठाना और उन तमाम कार्रवाइयों को दूर करना जो राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में बाधक हों।

हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या खेती की समस्या है। और ये समस्या न केवल हिन्दुस्तान की समस्या है वरन् सारे एशिया की समस्या है, पर हमने इस पर काबू पा लिया है। भूमि पर जो सांमती शासन था वह धीरे-धीरे अब बदलता जा रहा है, ताकि खेती का फल उसके जोतने और बोने वाले को मिल सके, ताकि जोतने वाला जिस भूमि को जोतता है उस पर उसका अधिकार बना रहे। ऐसे देश में जहाँ आज भी खेती प्रचुर मात्रा में होती है, न केवल व्यक्ति की स्वतन्त्रता और सन्तोष के लिये ऐसा आवश्यक है, वरन् समाज को मजबूत बनाने के लिये भी इसकी आवश्यकता है।

'दुनियाँ के अनेक भागों में मुख्यतया एशिया में सामाजिक अस्थिरता के मुख्य कारणों में से एक कारण भूमि पर अधिकार की वर्तमान प्रणाली भी है, जो आज की दुनियाँ के लिये सही नहीं है। एशिया और अफरीका के अधिकतर भाग में साधारण जन का जीवन स्तर निम्न है यह भी एक कारण सामाजिक

अस्थिरता के लिये है।

'ऐसे भी बहुत से देश हैं, जिनकी दृष्टि में भारत औद्योगिक रूप में उनसे अधिक विकसित है। दुनियाँ के औद्योगिक राष्ट्रों में उसका स्थान सातवां या आठवां है। पर गणित का यह हिसाब हमारे देश की गरीबी को छिपा नहीं सकता है। उत्पादन का बढ़ाना, ठीक-ठीक बँटवारा और अच्छी शिक्षा और स्वास्थ्य के द्वारा इस दीनता को दूर करने की समस्या हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या है—यही हमारा सबसे बड़ा काम है, जिसको पूरा करने के लिये हमने प्रतिज्ञा की है।

'हम यह बात जानते हैं और मानते हैं कि मनुष्य की नाईं राष्ट्र की सफलता की आरम्भिक शर्त स्वावलम्बन है। हम इस बात के लिये जागरुक हैं, कि अपनी इस सफलता के लिये पहले हमें ही चेष्टा करनी चाहिये। अपने इस उत्तरदायित्व से छुटकारा पाने के लिये हम कभी भी किसी अन्य का दामन नहीं पकड़ेंगे, हालांकि हमारी आर्थिक शक्ति बहुत है पर तैयार माल के रूप में उसको बदलने के लिये हमें काफी यन्त्रों और शिल्प विज्ञान कौशल की आवश्यकता है। अतएव हम ऐसी शर्तों पर जो दोनों देशों के लिये समुचित मात्रा में लाभ-दायक हों, ऐसी सहायता और सहयोग का प्रसन्नता से स्वागत करेंगे। हमारा विश्वास है कि इस प्रकार उन समस्याओं को भी हल किया जा सकता है जिनका सामना आज विश्व कर रहा है। **कड़ी तपस्या के पश्चात् मिलने वाली स्वतन्त्रता के किसी अंश के बदले में हम इस प्रकार की भौतिक सुविधा को प्राप्त नहीं करना चाहते।'**

अपनी परराष्ट्र नीति के सम्बन्ध में खुलासा प्रकाश डालकर पंडित नेहरू शान्ति समस्या पर आये। जो अमेरिका यात्रा में उन्होंने सबसे बड़ी बात कही वह युद्ध के विरुद्ध शान्ति की बात थी। उन्होंने अपने भाषण के अन्तिम भाग में कहा—

'विश्व शान्ति की रक्षा और मानव स्वतन्त्रता का विकास हमारी पर राष्ट्रनीति का उद्देश्य है। दो दुखान्त युद्धों ने युद्ध की आवश्यकता को बिलकुल समाप्त कर दिया है। शान्ति की रक्षा के बिना विजय बेकार होती

है। ऐसी दशा में विजयी और विजित दोनों भूतकाल के गहरे और दुखदायी घावों तथा समान रूप से भविष्य के भय से चिन्तित रहते हैं। क्या मैं यह कह सकता हूँ कि आज की दुनियाँ के बारे में यह बात गलत नहीं है? मनुष्य के विवेक और मानवता के लिये यह बात कोई अच्छी बात नहीं है। क्या यह दुखद स्थिति बनी रहनी चाहिये और विज्ञान तथा धन की शक्ति मानव समाज के सर्वनाश के लिये खर्च होनी चाहिये? प्रत्येक राष्ट्र को चाहे वह बड़ा हो अथवा छोटा इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देना है, जो राष्ट्र जितना बड़ा है, उसकी जिम्मेदारी भी सही उत्तर खोजने के लिये उतनी ही बड़ी है।

'दुनियाँ की राजनीति के लिये भारत क्या हो सकता है और इस युग के शक्तिशाली राष्ट्रों की समता में उसकी सैनिक शक्ति महत्त्वहीन हो सकती है, पर भारत का ज्ञान और अनुभव बहुत पुराना है और जीवन के संघर्षों में वह ऐसी कई शताब्दियों से निकल चुका है जिनका नामोनिशान भी नहीं था। और अपने इसे लम्बे इतिहास में सदैव उसने शान्ति का पक्ष लिया है और प्रत्येक प्रार्थना जो भारतीय करता है की समाप्ति निर्मल हृदय में शान्ति की याचना के साथ होती है। प्राचीन भारत जो वर्तमान में भी युवा है, महात्मा गाँधी का अविर्भाव हुआ, जिन्होंने हमें कार्य करने की शान्ति प्रणाली की शिक्षा दी। यह प्रणाली वास्तव में प्रभावकारी थी और इससे हमें न केवल स्वतन्त्रता मिली, बल्कि उनके साथ हमारी मैत्री भी बनी रही जो कल तक हमारे शत्रु थे। यह सिद्धान्त बड़े पैमाने पर कहाँ तक व्यवहार में लाया जा सकता है इसे मैं नहीं जानता। परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, और उनकी बुराई को दूर करने के लिये साधना की शक्ल का निर्धारण तथा उनका उपयोग पैदा हुई बुराई के रूप को देखते हुए करना पड़ता है।

'इसके बावजूद भी मुझे इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं हैं कि ऊपर की कार्य प्रणाली के पीछे समस्याओं के सम्बन्ध में आधारभूत दृष्टि है, वह माननीय समस्याओं के सम्बन्ध में सही है और यही समदृष्टि ऐसी है जो अन्ततोगत्वा सन्तोषप्रद ढंग से समस्या को हल करती है। हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है और उसकी रक्षा करनी है। हमें आक्रमण का सामना करना है और उसका

प्रतिरोध करना है। उद्देश्य सिद्धि के लिये जिस शक्ति से काम लिया जाय वह पर्याप्त होनी चाहिये। आक्रमण का प्रतिरोध करने की तैयारी करते समय भी हम शान्ति और समझौते के अंतिम उद्देश्य को आँखों से अधिक ओझल न करें। हमारे हृदय और मस्तिष्क इस महान् लक्ष्य के साथ हों और घृणा तथा भय का प्रभाव उन पर न पड़ना चाहिये।

'हमारी परराष्ट्रनीति का आधार और लक्ष्य यही है, न तो हम वास्तविकता के प्रति अंधे हैं, न मनुष्य की स्वतन्त्रता को दी गयी चुनौती को, चाहे वह चाहे जहाँ से आये, बिना प्रतिरोध के स्वीकार कर सकते हैं। स्वतन्त्रता के खतरे में पड़ने पर न्याय के संकटापन्न होने पर और आक्रमण होने पर न तो हम तटस्थ रह सकते हैं, न रहेंगे।

'मुझे पूरा-पूरा यकीन है कि संयुक्त राज्य अमेरिका हमारे जीवन के इस दृष्टिकोण को समझेगा और सराहेगा क्योंकि उसका भी कोई दूसरा लक्ष्य या आदर्श नहीं हो सकता। इसीलिये संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत इन दोनों देशों के बीच मैत्री और पारस्परिक सहयोग स्वाभाविक है। न्याय, स्वतन्त्रता और शान्ति के लिये दोनों देशों के सचेष्ट रहने की घोषणा मैं यहाँ करता हूँ।'

भाषण के पश्चात् उन्होंने राष्ट्रपति ट्रूमन और परराष्ट्र मन्त्री अचेसन से बातचीत की, जिसमें लगभग एक घन्टे का समय लगा। यहाँ नेहरूजी को पत्रकारों ने घेर लिया और उन पर प्रश्नों की बौछार लगा दी। पर पण्डितजी ने उन्हें केवल यही उत्तर देकर टाल दिया—'हमने किसी सम्बन्ध विशेष पर बातचीत नहीं की।'

यहाँ पर पंडित नेहरू ने मुख्य-मुख्य स्थान देखे—नेशनल गैलरी आफ आर्ट, कांग्रेस की लायब्रेरी, ह्वाइट हाउस, वुडरो विलयन लायब्रेरी और निम्न मुख्य-मुख्य लोगों से मिले—

अमेरिका के भ्रमणशील राजदूत श्री फिलिप, श्री विलार्ड थार्प, जार्ज सी० मेघी, श्री लौय हैण्डरसन, जार्ज एफ कैनान श्री एलबर्ट जी मैथ्यूज, कर्नल हैरी मैक्ब्राइड, श्री मैकिगल, श्री हटिंगनक ायरस, श्री इयांक, डेविड मिअर्न्स और डा० हौर्स पोलमैन, आदि।

भ्रमण

पंडित जवाहरलाल नेहरू १५ अक्टूबर १९४९ को अमेरिका के रक्षामन्त्री श्री लुई जानसन के साथ न्यूयार्क चले गये। जब उनका वायुयान हवाई अड्डे पर पहुँचा उस समय वहाँ काफी घना कुहरा छाया हुआ था, मगर तब भी नेहरू जी के स्वागतार्थ वहाँ राजकीय व्यक्ति और भारतीय काफी संख्या में थे। कुहरा इतना घना था कि वायुयान को आधा घण्टा तक ऊपर ही उड़ते रहना पड़ा। उपस्थित व्यक्तियों में महिलाओं की संख्या अधिक थी, ये रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहिने हुए थीं। नेहरू जी ने इन सबका मुस्कराते हुये स्वागत किया।

हवाई अड्डे पर पत्रकार भी काफी संख्या में थे जो नेहरू जी से किसी-न-किसी तरह यह जान लेना चाहते थे कि अब उनका झुकाव रूस की ओर है या अमेरिका की ओर है। इस सम्बन्ध में नेहरू जी ने उनके प्रश्नों का निम्न उत्तर दिया—

'हम पूर्व या पश्चिम के परस्पर विरोधी किसी गुट में सम्मिलित नहीं होना चाहते। वाशिंगटन में मैंने इस सम्बन्ध में कोई आश्वासन नहीं दिया है। हमारा लक्ष्य है—जनतांत्रिक पद्धति से विश्व में शान्ति की स्थापना। हम अन्त तक इसका प्रयास जारी रक्खेंगे।'

अखबार वालों ने जब अमेरिका के बारे में उनकी राय जाननी चाही तो पंडित नेहरू ने कहा—'अमेरिका की प्रतिनिधि सभा में मैं भारत का दृष्टिकोण बता चुका हूँ, इस दशा में उठाये गये किसी भी कदम का मैं स्वागत करूँगा।'

पत्रकारों का एक और प्रश्न था, जिसके जरिये वह भारत की रूस के प्रति जो धारणा है उस सम्बन्ध में जानना चाहते थे। पत्रकारों ने पूछा, 'रूस के पास परमाणु बम होने के समाचार के आधार पर क्या भारत उत्तर पश्चिमी सीमा पर खतरा बढ़ा हुआ समझता है?' पंडित नेहरू ने इसके उत्तर में कहा—'मैं ऐसा नहीं समझता।'

पत्रकारों से छुट्टी पाकर उन्हें भारतीय दूतावास तक पहुँचाया गया। ६५ वर्दीधारी पुलिस और २५ खुफिया कर्मचारी उनकी सुरक्षा के लिये साथ

थे। भारतीय दूतावास में इस दिन पं० नेहरू ने एकत्रित भारतियों से बातचीत की और हिन्दुस्तानी में भाषण दिया। जिसमें उन्होंने संक्षेप में बताया था कि मैं अमेरिका से कुछ माँगने या लेने नहीं आया हूँ। मेरी यात्रा का उद्देश्य तो केवल पारस्परिक मैत्री को दृढ़ करना है। हम स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक हैं। गत तीस वर्ष तक हमने विशाल शक्तिशाली राष्ट्र से आजादी का युद्ध लड़ा है। परतन्त्रता के युग में हम भयभीत रहते थे, मगर अब हम स्वतन्त्र हो गये हैं, तब भविष्य के लिये डर किस बात का है।' इसी दिन पंडित नेहरू ने परमाणु-शक्ति कमीशन के अध्यक्ष श्री डेविड लिलिन्थस से लगभग एक घंटे अस्टोरिया होटल में बातचीत की।

१६ अक्तूबर १९४९ को विजयलक्ष्मी पंडित, इंदरा गांधी, ब्रिगेडियर दिलीप चौधरी और उन्नीनयर के साथ न्यूयार्क से हाइड पार्क के लिये रवाना हो गये। जहाँ युद्धकालीन राष्ट्रपति रुजवेल्ट की निवास समाधि है। पंडित जवाहरलाल इनका बहुत आदर करते थे और अपनी श्रद्धांजलि भेंट करने के निमित्त ही पंडित जी हाइड पार्क गये थे।

फोकलेन डी रुजवेल्ट लायब्रेरी में श्री रुजवेल्ट के पारिवारिक पत्रों, अनेक पांडुलिपियों, चित्रों तथा उनके जीवन से सम्बन्धित अनेक वस्तुओं का संग्रह है, जिसकी सुरक्षा सरकार करती है, और ये लायब्रेरी जनता के लिये प्रत्येक समय खुली रहती हैं। लायब्रेरी के अन्तर्राष्ट्रीय कक्ष में नेहरू जी ने संयुक्त राष्ट्र-संघ का घोषणा पत्र देखा। नेहरू जी ने बाइबिल की वह पुरानी प्रति बड़ी दिलचस्पी से देखी, जो सन् १६८६ में आक्सफोर्ड में प्रकाशित हुई थी और जो 'डच फेमिली बाइबिल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ को ही हाथ में लेकर जीवन में श्री रुजवेल्ट ने दो बार गवर्नर और चार बार राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण की थी। श्रीमती रुजवेल्ट ने राष्ट्रपति कक्ष के बारे में स्वयं कुछ महत्त्व-पूर्ण बातें बतलायीं। उन्होंने बताया कि स्व० रुजवेल्ट ने इस कक्ष में युद्धकाल में पाँच महत्त्वपूर्ण भाषण दिये थे। इस लायब्रेरी की स्थापना जब १९४१ में हो गई थी, तब से उनका कार्यालय इसी कक्ष में रहता था। जो ईरानीकालीन फर्श पर बिछा है वह सन् १९४६ में ईरान के शाह ने उन्हें भेंट में प्रदान किया था।

श्रीमती रूजवेल्ट पंडित नेहरू और उनके साथियों को बाग में ले गयीं जहाँ स्व० रूजवेल्ट की समाधि है। बाग के मार्ग के दोनों ओर दर्शक कतार बाँधे खड़े थे, नागरिकों के अतिरिक्त प्रेस संवाददाता और फोटोग्राफर भी थे। श्रद्धांजलि भेंट करने के पश्चात् जब नेहरू जी स्व० रूजवेल्ट के पहले निवास स्थान की ओर जाने लगे जो अब एक ऐतिहासिक स्थान है तो श्रीमती रूजवेल्ट और नेहरू जी कुछ क्षणों तक सीढ़ियों पर एक दूसरे का अभिवादन करने के लिये रुके। मकान के सामने हजारों दर्शक मौजूद थे। नेहरू जी ने इस ऐतिहासिक मकान को देखा।

नेहरू जी ने स्व० रूजवेल्ट के मकान की ओर जाते हुए कहा था—'मेरे लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और पवित्र अवसर है जो मैं उस स्थान को देखने जा रहा हूँ, जहाँ इस पीढ़ी के एक महान् व्यक्ति ने निवास किया और मनुष्य जाति की भलाई के लिए अनेकों कार्य किये। गत अनेक वर्षों से मेरी हार्दिक इच्छा उनसे मिलने की थी। मेरे लिये यह अत्यन्त दुःख की बात है कि मैं व्यक्तिगत रूप से उनसे कभी नहीं मिल सका।'

१७ अक्तूबर १९४९ को नेहरू जी का शानदार स्वागत हुआ। नेहरू जी का जलूस १५ मोटरों पर निकाला गया। यह जलूस प्लाजा (टाउनहाल) की ओर गया। जलूस के अगले भाग में सैनिकों का मोटर साइकिल दस्ता चल रहा था। पीछे अमेरिकी सेना के तीन बैण्ड थे। न्यूयार्क शहर का शानदार दमकल विभाग भी जुलूस में सम्मिलित था। सड़क के दोनों ओर अपार जनसमूह था।

मध्याह्न के समय जुलूस प्लाजा पहुँचा। न्यूयार्क के टाउन हाल के सामने अपार जनसमूह उनके स्वागत के लिये तैयार था।

सर्वप्रथम न्यूयार्क के सौ सज्जनों का परिचय कराया गया। यहाँ नेहरू जी को उस ऐतिहासिक कुर्सी पर बैठाया गया जिस पर अमेरिका के उद्धारक जार्ज वाशिंगटन को पहली बार अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। उनके सामने जो टेबुल लगी थी, उस पर राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने जो राष्ट्र के नाम पहला सन्देश दिया था, लिखा था।

नगर के मेयर श्री ओडायर ने पंडित नेहरू का स्वागत करते हुए कहा—

'न्यूयार्क के सम्मानित अतिथि नेहरू जी ३५ करोड़ की जनसंख्या वाले देश के उच्च अधिकारी हैं। हमारा देश उस महापुरुष के रूप में इनका आदर करता है, जिसने स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष किया। सारा भारत इनका आदर करता है, क्योंकि इन्होंने अपने सारे व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग कर स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी थी। उन्होंने महात्मा गांधी के मार्ग पर चलते हुए अपनी आवाज वर्षों तक स्वतन्त्रता के संग्राम के रूप में जनता तक पहुँचाई। **आज भारत के प्रधानमन्त्री विश्व-शान्ति और न्याय के लिये गांधी जी की आत्मिक देन को लेकर अनवरत प्रयास में लगे हैं।** गांधी जी के सिद्धान्तों में आपकी अटूट श्रद्धा है। ऐसा महान् व्यक्ति जो भारत की संस्कृति और उसकी विविध समस्याओं को पूर्ण रूपेण समझता है, प्रथम वार अमेरिका में आगमन हुआ है। हम भारत जैसे महान् राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में इनका स्वागत करते हैं, अमेरिकी सभ्यता को समझने के लिये न्यूयार्क में हमें उनकी सहायता करनी चाहिये। अभिनन्दन करने के साथ-साथ हमें उन्हें यह विश्वास भी दिलाना चाहिये कि यह राष्ट्र जिसका प्रतिनिधित्व न्यूयार्क नगर की जनता वास्तविक रूप में यहाँ कर रही है, दुनियाँ के समस्त राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के पक्ष में उनके साथ है।

'देवियो और सज्जनों जहाँ हम हैं, वहाँ अनेक महापुरुषों का स्वागत हुआ है। वह व्यक्ति भी हमारे सामने है जिसने बिना बलप्रयोग के स्वतन्त्रता प्राप्त करने की शिक्षा दी है। **वह व्यक्ति हमारे सामने है जो इस दुनियाँ में उस शाश्वत तत्व का प्रतिनिधित्व करता है जो शान्ति प्रदान कर सकता है—न केवल भारत को वरन् विश्व के समस्त राष्ट्रों को।** ऐसे महान् व्यक्ति का स्वागत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। हम भी वही चाहते हैं जो प्रधान मन्त्री की इच्छा है।

'आने वाली पीढ़ी के लिये हम इस बात की गारन्टी के बिना चैन न लेंगे कि एक दिन यह विश्व शान्तिमयविश्व होगा, जिसमें निवास करने वाले लोग एक दूसरे को समझेंगे। मैं प्रधानमन्त्री महोदय का हार्दिक स्वागत करता हूँ।'

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वागत का उत्तर देते हुए यह आशा की कि विश्व शान्ति और स्वतन्त्रता के निमित्त संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और भारत दोनों

देश पारस्परिक सहयोग की भावना से कार्य करेंगे ।

१७ अक्तूबर की रात को दस बजे कोलम्बिया विश्व विद्यालय के पदवी-दानोत्सव के अवसर पर पंडित नेहरू ने महत्त्वपूर्ण भाषण दिया, यह भाषण भी उनके पहले भाषण की तरह एक ऐतिहासिक भाषण बन गया है ।

दूसरा भाषण

'अध्यक्ष महोदय, आपने जो मुझे 'डाक्टर आफ लाज' की सम्मानित उपाधि देकर सम्मान प्रदान किया है, उसके लिए मैं विश्वविद्यालय और आपके प्रति विशेष कृतज्ञ हूँ । इस विश्वविद्यालय से तथा यहाँ के विद्वानों और सत्यान्वेषियों से सम्बन्ध स्थापित हो जाना मेरे लिए गौरव की बात है, और मैं अपने हृदय में बहुमूल्य निधि की भांति इसे सुरक्षित रक्खूंगा । यह अनोखा सम्मान मुझे एक ऐसे व्यक्ति से मिला है जिसने 'युद्ध तथा शान्ति' दोनों ही में ख्याति प्राप्त की है ।'

उन्होंने बहुत जल्दी ही अपने भाषण के इस भाग को समाप्त करके विश्व-शान्ति की समस्या पर प्रकाश डालना आरम्भ कर दिया । वह बोले—

'पिछली पीढ़ी ने कुछ महान् व्यक्तियों को जन्म तो दिया किन्तु विश्व को विनाश के मार्ग पर ले जाने का कार्य भी उसी ने किया । इस तरह इस पीढ़ी ने समझदारी से कार्य नहीं किया, और इसी का मूल्य उसे दो महायुद्धों के रूप में चुकाना पड़ा । यह बहुत बड़ा मूल्य था, पर दुख की बात यह है कि इतना बड़ा मूल्य चुकाने के पश्चात् भी हम न तो वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सके, न संघर्ष ही बन्द हुआ । उससे भी बड़ी दुख की बात यह है कि मनुष्य-जाति अपने अनुभव से कोई लाभ नहीं उठाती और उसी पर निरन्तर बढ़ती रहती है, जिस मार्ग पर चलने के कारण कई बार विनाश हो चुका है ।

'हमने लड़ाइयाँ लड़ीं और विजय भी प्राप्त की तथा उसका उत्सव भी मनाया, पर विजय कहते किसे हैं, उसका मापदण्ड क्या है ? यह बात माननी पड़ेगी कि कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने के हेतु ही युद्ध किया जाता है । शत्रु की पराजय युद्ध का लक्ष्य नहीं हुआ करता बल्कि यों कहना चाहिये कि लक्ष्य प्राप्ति

की जो बाधा थी वह शत्रु की पराजय से दूर हो पाती है। और यदि शत्रु की पराजय के पश्चात् भी लक्ष्य सिद्धि न होती हो तो सारहीन राहत मिल जाती है, जिसे कोई भी वास्तविक विजय नहीं कह सकता। पर हम देख रहे हैं कि युद्धों का लक्ष्य प्रायः पूर्ण रूप से शत्रु की हार ही होती है। और दूसरा तथा असली उद्देश्य भुला दिया जाता है, जिसका परिणाम होता है कि शत्रु की हार केवल लक्ष्य प्राप्ति में आंशिक होती है और इससे वास्तविक समस्या का समाधान नहीं होता, और यदि तुरन्त इससे किसी प्रश्न का निपटारा हो भी जाता है तो इससे और कितनी ही नया कभी-कभी तो और भी बदतर समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। इसलिये जरूरत इस बात की है कि असल मंशा नजरके सामने हो, फिर चाहे युद्ध का समय हो अथवा शान्ति का और उसे प्राप्त करना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये।

'मैं यह बात भी समझा दूँ जिस लक्ष्य को हम सामने रखते हैं उसमें और उसे प्राप्त करने के लिये हम जिन साधनों का उपयोग करते हैं उनमें सदैव निकट का और गहरा सम्बन्ध रहता है। अगर लक्ष्य ठीक भी हो, पर यदि साधन अनुचित हों, तो वे असफल कर देंगे या फिर गलत मार्ग पर भरमा देंगे। इस तरह साध्य और साधन दोनों ही घनिष्ठ रूप से परस्पर सम्बन्धित हैं और उनमें से हम एक को दूसर से पृथक् नहीं कर सकते। यह एक पुरानी शिक्षा है जो भूतकाल में अनेक महापुरुषों ने हमें सिखायी है, पर दुर्भाग्यवश हम उसे स्मरण नहीं रखते।

'इनमें से थोड़े से विचार मैं आपके समक्ष उपस्थित करने का साहस करता हूँ, इसलिये नहीं कि वे नवीन हैं; वरन् इसलिए कि जीवन की उन घड़ियों में मुझ पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा है जो मैंने अनवरत सक्रियता और संघर्ष या कारागृह में जबरदस्ती लादे गये अवकाश के समय बिताई हैं। मेरे देश में महान् नेता महात्मा गांधी, जिनके प्रोत्साहन और देखरेख में मैं बड़ा हुआ, नैतिक पहलू पर सदैव जोर देते रहे और हमें चेतावनी देते रहे कि हम साध्य से कम साधन को न समझें। हम भारतीय उनके योग्य तो न थे, फिर भी हमने अपनी ताकत भर उनके उपदेश पर चलने की कोशिश की। यद्यपि आंशिक रूप से ही हम

उनकी शिक्षा का अनुसरण कर सके, फिर भी हमने उससे अच्छा लाभ उठाया। एक महान् और शक्तिशाली राष्ट्र से एक पीढ़ी तक जोरों से संघर्ष करने के पश्चात् हमने सफलता पाई और उस सफलता का कदाचित सबसे महत्त्वपूर्ण भाग, जिसका श्रेय दोनों ही पक्षों को दिया जाना चाहिये, वह उपाय है जिससे सफलता मिली। इतिहास में ऐसा उदाहरण शायद ही मिले, जब ऐसे संघर्ष का इस तरह शान्ति पूर्वक निपटारा हुआ हो और उसके पश्चात् दोनों के बीच मित्रतापूर्ण सहयोग स्थापित हो गया हो। यह बात विस्मयकारी है कि इन दो राष्ट्रों के बीच सारी कटुता और दुर्भावना किस प्रकार तेजी से दूर हो गई और उसका स्थान सहयोग की भावना ने ग्रहण कर लिया और हमने बिल्कुल अपनी इच्छा से यह सहयोग स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में भी चालू करने का निश्चय किया है।

'अन्य राष्ट्रों को जो अधिक अनुभवी भी हैं, किसी प्रकार का उपदेश देने की मेरी इच्छा नहीं है, पर क्या मैं आपके विचारार्थ कुछ सुझाव रख सकता हूँ कि भारत की शान्तिमय क्रान्ति से ऐसी शिक्षा ग्रहण की जा सकती है जो विश्व के समक्ष उपस्थित अधिक बड़े प्रश्नों पर भी लागू हो सके। इस क्रान्ति ने हमें पाठ पढ़ाया है कि शस्त्र बल से ही मनुष्य के भाग्य का निर्णय हो यह आवश्यक नहीं है और यह भी कि संघर्ष करने के ढंग और उसके समाप्त करने का भी महत्त्व है। पुराने इतिहास से पता चलता है कि शस्त्र बल का बड़ा प्रभाव रहा है, किन्तु वह यह भी बतलाता है कि यह शस्त्र बल अन्तोगत्वा विश्व के नैतिक प्रभाव को नहीं भुला सकता, और यदि वह ऐसा करने की कोशिश करता है तो फिर वह स्वयं अपने ही ऊपर आघात करता है।

'आज यह समस्या हमारे समक्ष बड़े गम्भीर रूप से है, क्योंकि पशु शक्ति के पास जो साधन हैं, उनकी कल्पना करना भी भयावह है। क्या प्रारम्भिक बर्बरता और इस बीसवीं सदी की बर्बरता में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य की प्रतिभा ने जन-धन को नष्ट करने के लिए जो शस्त्रा-शस्त्र तैयार किये हैं, वे विनाशकारी प्रभाव में अधिक बढ़े हुए हैं? अपने गुरु की शिक्षा के अनुसार मेरा तो विश्वास है कि इस स्थिति का मुकाबिला करने और हमारे सामने जो

समस्या है उसके समाधान करने का दूसरा मार्ग भी है ।

'मैं समझता हूँ कि किसी भी राष्ट्र नायक के लिये या उसके लिए जिसे सार्वजनिक समस्या पर सोचना पड़ता है, वस्तुस्थिति की उपेक्षा करना और उससे असम्बद्ध सत्य के आधार पर कार्य करना सम्भव नहीं है, उसकी सक्रियता सदैव उसके साथियों की सत्यता पर निर्भर रहती है। परन्तु फिर भी मूल सत्य तो सत्य ही बना रहता है, वह कभी आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता और जहाँ तक सम्भव हो उसका अनुसरण हमें अपने कार्यों में करना चाहिये। ऐसा न करने पर हम बुराई के ऐसे जाल में फँस जाते हैं जब एक अनुचित काम दूसरे अनुचित काम का कारण बनता जाता है ।

'भारत प्राचीन देश है, जिसका अतीत भी महान् है, पर यह नई प्रेरणाओं को और नई महत्वाकांक्षाओं वाला राष्ट्र भी है। अगस्त १९४७ से ही वह अपनी स्वतन्त्र परराष्ट्र नीति पर चल रहा है। स्थिती को उस यथार्थता से वह भी सीमित है जिनको न हम भुला सकते हैं न जिस पर विजय पा सकते हैं। ऐसा होने पर भी भारत अपने महान नेता की शिक्षा को नहीं भुला सकता। उसने वस्तु स्थिति के साथ उसका सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। भले ही इसमें उसे अधिक कामयाबी न मिली हो। राष्ट्रों के परिवार में उसने हाल में ही प्रवेश किया था, इसलिये आरम्भ में उसका प्रभाव कम पड़ा; किन्तु फिर भी उसे एक विशेष सुविधा प्राप्त है जो उसका प्रभाव बढ़ा देगी। एक बड़ी सुविधा इस बात में भी कि वह अतीत से नहीं बँधा था, पुरानी शत्रुताओं या पुराने बन्धनों में नहीं जकड़ा था और न ऐतिहासिक दावों या परम्परागत प्रतियोगताओं से ही प्रभावित था । यहाँ तक कि अपने पुराने शासकों के प्रति भी उसके मन में कोई कटुता नहीं बची थी ।

'इस तरह भारत ने बिना किसी प्रकार की पूर्व दुर्भावना या शत्रुभाव के राष्ट्रमंडल को स्वीकार कर लिया, वह प्रत्येक का स्वागत करने को तैयार था और उसकी इच्छा थी कि अमेरिकी इसी प्रकार उसका स्वागत करें। यह तो निश्चित था कि वह अपनी विदेश नीति पर उच्च आत्म-हित की दृष्टि से विचार करे पर साथ ही ऐसा करते समय उसने इसमें अपने आशीर्वाद की भी पुट दे

दी। इस तरह उसने राष्ट्रीय हित के साथ आदर्शवाद का समन्वय करने की चेष्टा की है। उस नीति के मुख्य लक्ष्य ये हैं—

(१) शान्ति का अनुगमन, किसी बड़ी शक्ति या समूह के साथ गुटबन्दी करके नहीं, वरन् प्रत्येक विवादग्रस्त प्रश्न पर स्वतन्त्र दृष्टिकोण से विचार करें।

(२) पराधीन राष्ट्रों को उनकी स्वतन्त्रता वापिस दिलवाना।

(३) स्वतन्त्रता की राष्ट्रीय और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, दोनों की रक्षा करना।

(४) जातिगत द्वेष-भाव दूर करना।

(५) वस्तुओं का अभाव, रोग एवं अज्ञान को दूर करना, जिससे विश्व की जनसंख्या का एक बड़ा भाग पीड़ित है।

'प्राय मुझ से लोग पूछा करते हैं कि भारत किसी एक राष्ट्र या राष्ट्रसमूह से गठबन्धन क्यों नहीं कर लेता, और प्राय वह बताया करते हैं कि हमें ऐसा अवश्य करना चाहिये, इसी में भारत का लाभ है। पर हमने ऐसा नहीं किया, इसी से अभी तक हम दुविधा की स्थित में पड़े हुये हैं। यह प्रश्न भी सरलता से समझ में आ जाता है और इसका उत्तर भी। क्योंकि सकट के समय डरे हुये लोगों का यह समझ लेना कठिन बात नहीं कि ऐसे समय दूसरों का शान्तिभाव से प्रथक बने रहना, गैर जिम्मेदाराना, अदूर दर्शिता पूर्ण, सारहीन, वस्तु स्थिति के विपरीत यहाँ तक कि अपुरोचित होना भी कहा जा सकता है।

भारत ने जिस नीति पर चलने का निश्चय किया है, वह निषेधात्मक या तटस्थता की नीति नहीं हैं। वह ठोस और अत्यन्त आवश्यक नीति है जो हमारे स्वातन्त्र्य संग्राम और महात्मा गांधी की शिक्षाओं से निःसृत हुई है। भारत के लिये ही शान्ति आवश्यक नहीं है, जिससे वह उन्नति कर सके और उसका विकास हो सके वल्कि सारे विश्व के लिये इसकी आवश्यकता है।

'अब प्रश्न उठता है कि ऐसी शान्ति बनाये रखना कैसे सम्भव है। आक्रमणकारी के आगे सिर झुका देने से या अन्याय और बुराई से समझौता कर लेने से इसकी रक्षा तो हो नहीं सकती, पर इसके साथ ही तरह-तरह की अनंगल

बातें करने और युद्ध की तैयारी करते रहने से भी हम उसे नहीं बचा सकते। आक्रमण का मुकाबिला तो करना ही होगा, क्योंकि आक्रमण से शान्ति संकट में पड़ जाती है, उसके लिये खतरा पैदा हो जाता है। इसके साथ ही हमें गत दो महायुद्धों का पाठ भी स्मरण रखना होगा और यह बात तो वास्तव में बड़ी विस्मयकारी लगती है कि इस सबके पश्चात् भी हम फिर उसी मार्ग पर चल रहे हैं। दो शत्रुता पूर्ण शिवरों में दुनियां के बटवारे का प्रयत्न अपने आप ही युद्ध को पास ले आता है। जिसे बचाने का इरादा किया जाता है, उससे उत्कट भावना पैदा हो जाती है और यह भावना मनुष्यों के मन को ढांप लेती है तथा उन्हें गलत मार्गों पर ले जाती है। जीवन में और कोई भावना सम्भवतः इतनी बुरी और इतनी खतरनाक नहीं होती जितनी भय की भावना होती है। जैसा कि अमेरिका के एक महान राष्ट्रपति ने कहा था—

'भय को छोड़कर वास्तव में और कोई चीज ऐसी नहीं जिससे डरना लाजिमी हो।'

'हमारी समस्या ऐसी दशा में डर की इस भावना को घटाना और अन्त में उसे मिटा देना है। यदि विश्व के समस्त राष्ट्र दलबन्दी में पड़ जायें और युद्ध की बातें करते रहें तो यह सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में युद्ध का छिड़ जाना आवश्यक हो जाता है।'

'भारत भी राष्ट्रों के परिवार का सदस्य है और हमारा लक्ष्य सदस्यता के आवश्यक कर्तव्यों या जिम्मेदारियों के भार को उठाने से मुँह मोड़ने का नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के कारण हमने सम्पूर्ण जिम्मेदारियाँ स्वीकार कर ली हैं। हमारी अभिलाषा है हम उन्हें पूरा करें। सामान्य संग्रह में हम अपना पूरा भाग देना चाहते हैं और अपनी ताकत भर सेवा करना चाहते हैं, पर यह कार्य हम अपने ढंग से और अपनी इच्छा के अनुसार ही सरलता से कर सकते हैं।

'लोकतन्त्र प्रणाली में हमारा गहरा विश्वास है और हम प्रयत्न कर रहे हैं कि राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में लोकतन्त्र की सीमा का विस्तार कर दिया जाय, क्योंकि अभाव, निर्धनता और विषमता में कोई भी लोकतन्त्र

अधिक समय तक टिक नहीं सकता। हमारी तुरत की आवश्यकता अपने देश वासियों को आर्थिक स्थिति में सुधार करना तथा उनके जीवन के स्तर को उठाना है। इस कार्य में हम जितने अधिक सफल होंगे, उतनी ही अधिक सेवा हम विश्वशांति के लिये कर सकेंगे।

'अपनी त्रुटियों और दोषों की हमें पूरी जानकारी है, हम किसी से अच्छा बनने का दावा तो नहीं करते, पर दलबन्दी से दूर रहकर हमें जो सुविधाएँ मिली हुई हैं, उन्हें भी तो खोना नहीं चाहते, हमारा विश्वास है कि हम अलग रहने की अपनी इस नीति पर कायम रहते हैं, तो इसमें केवल हमारी ही भलाई नहीं है, वरन् संसार की शक्ति और स्वतन्त्रता की भी इससे भलाई है। दलबन्दी से इस तरह दूर रहने का यह अर्थ कदापि नहीं कि जब शान्ति और स्वतन्त्रता के लिये खतरा पैदा हो जाय तब भी हम अपने देश को प्रथक रखना चाहेंगे, न यह हमारी उदासीनता है न तटस्थता है। **जब मनुष्य की शान्ति या स्वतन्त्रता खतरे में होगी, तब हम तटस्थ नहीं रह सकते न रहेंगे। उस समय भी तटस्थ बने रहना हमारे लिये उन सिद्धान्तों के साथ विश्वासघात करने जैसा होगा, जिनके लिये हम सदैव से प्रयत्नशील रहे हैं, और जिनके हम समर्थक हैं। अगर हमारा लक्ष्य शान्ति भंग न होने देना हो तो हमें युद्ध के मूल कारणों पर प्रहार करना होगा, उसके बाह्य-चिह्नों पर नहीं।** एशिया के बड़े-बड़े भू-भागों पर अभी तक विदेशियों का कब्जा रहा है, जिसमें यूरोप उल्लेखनीय है। हम स्वयं पाकिस्तान और बर्मा भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अंग थे। इंगलैंड और पुर्तगाल के अधीन अब भी ऐसे क्षेत्र हैं, जिन पर वह शासन करते हैं, पर राष्ट्रवाद और स्वतन्त्रता की लहर ने एशिया के कितने ही साम्राज्यवादियों को हिला रक्खा है। मुझे आशा है हिन्देशिया में शीघ्र ही सार्वभौमिक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होगी। हमें यह भी पूरी आशा है कि फ्रेंच-हिन्द-चीन भी बिना देर किये अपनी सलाह के अनुसार स्वतन्त्रता और शक्ति प्राप्त कर लेगा, पर अफ्रीका का अधिकांश भाग तो आज भी विदेशी राष्ट्रों के आधीन है, और वहाँ के लोग भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये संघर्ष कर रहे हैं। या यों कह लीजिये कि **अब समय आ गया है जब साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के चिह्न तक मिट जायेंगे।**

'जाति भेद भी युद्ध का दूसरा कारण है। ज्ञान में दूसरी जातियों ने जो थोड़ी-बहुत उन्नति कर ली है, उससे उन लोगों में यह गलतफहमी आ गई है कि वह अन्य लोगों से श्रेष्ठ हैं। इस गलतफहमी की धारणावश ऐसे लोग दूसरे लोगों से घृणा करने लगते हैं। इसके उदाहरण में यहूदियों को नष्ट करनेवाली वह रोमाँचकारी घटना बताई जा सकती है, जो बहुत कुछ सफल भी हुई थी। अफ्रीका और एशिया में भी जातिगत श्रेष्ठता का भाव खुल्म-खुल्ला बड़ी उदंडता से प्रचारित किया जा रहा है। यह बात भुला दी गई है कि मनुष्य-जाति के सभी बड़े-बड़े धर्मों का जन्म पूर्व में ही हुआ है। और ऐसे समय पूर्व में चमत्कारिक सभ्यता का उदय हुआ जब अमेरिका और इंगलैंड का पता तक न चला था। पश्चिम ने एशिया तथा अफ्रीका को बराबरी के अधिकार नहीं दिये, और कितने ही स्थानों में तो आज तक नहीं दे रहे हैं, बल्कि यहाँ तक होता है कि उन लोगों के साथ मनुष्यता और दयालुता तक का व्यवहार नहीं होता है। आज की दुनियाँ के लिये यह खतरे की बात है, क्योंकि आज एशिया और अफ्रीका अपनी सुस्ती त्याग रहे हैं, और उनकी नींद खुल चुकी है, अतएव इस बुराई से ऐसी आग भड़क सकती है, कि क्या हो जायगा नहीं कहा जा सकता। आपके सबसे महान् व्यक्तियों में से एक का ही तो यह बचन है कि—'यह देश आधा गुलाम और आधा स्वतन्त्र नहीं रह सकता।' अगर आधी दुनियां को गुलाम बनाकर रखा गया या उसकी अवहेलना की गई तो शान्ति अधिक दिन तक स्थायी नहीं रह सकती। यह प्रश्न सदैव सरल नही और इसका समाधान क्रान्ति से या विशेप आदेश से ही सम्भव है, किन्तु जब तक उसे हल करने का दृढ़ और सच्चा निश्चय न हो, तब तक स्थायी शान्ति स्थापित हो ही नहीं सकती।

'लोगों के कष्ट और अभाव भी युद्ध का तीसरा कारण है, विशेषकर एशिया और अफ्रीका के करोड़ों लोगों का उल्लेख किया जा सकता है। पश्चिम में यद्यपि युद्ध ने अनेकों विपत्तियाँ उत्पन्न कर दी हैं, फिर भी आम तौर से लोग आराम का जीवन व्यतीत करते है, उनके पास भोजन, वस्त्र, और कुछ हद तक मकान भी मौजूद हैं।

'अतएव पूर्व की मूल समस्या जीवन की इन आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति ही है। यदि इनकी कभी भी कमी हो जाय तो आशा निराशा में पलट जाया करती है या फिर क्रान्तिकारी बनने की विनाशक प्रतियोगिता आरम्भ हो जाती है। राजनैतिक स्वतन्त्रता, जातिगत असमानता, आर्थिक विषमता तथा कष्ट—यही वे रुकावटें हैं जिन्हें हमें दूर करना है, यदि हम निश्चित रूप से शान्ति चाहते हों। और यदि हमने इसका कोई उपाय न किया तो निश्चय ही अन्य घोषणाएँ और नारे जनता का मन अपनी ओर आकर्षित कर लेंगे।

'राष्ट्र परिवार के सदस्य एशिया के बहुत से देश बन चुके हैं, और अफ्रीका के देशों के बारे में भी हमें ऐसी ही आशाएँ हैं। यह प्रक्रिया शीघ्रता से होनी चाहिये और इसे सरल बनाने के लिए अमेरिका तथा योरोप को पहल करनी चाहिये। हम अपनी आँखों के समक्ष विशाल परिवर्तन होता देख रहे हैं, केवल राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों के लिये ही नहीं, वरन् इससे भी अधिक एशिया के नागरिकों के मन में जो उन्नति के लिये और अपने विशाल जन-समुदाय का स्तर ऊपर उठाने के लिये उत्सुक है। इससे महाद्वीप की जागृति मानव जाति के लिये बड़ी महत्त्वपूर्ण है। और इसके लिये बड़े ऊँचे दर्जे की कल्पनाशील राज-नीतिज्ञता आवश्यक है। इस जागृति की समस्याएँ हल नहीं हो सकेंगी यदि हम उन्हें भय के दृष्टिकोण से देखेंगे या अलग होने के भाव से देखें। हमें उन्हें मित्रता और समझदारी से समझना होगा, अपने सामने स्पष्ट लक्ष्य रखना होगा और मिलकर रहना होगा और मिल-जुलकर अपने सम्मान की चेष्टा करनी होगी। शस्त्रास्त्रों की वृद्धि के लिये जो भारी फिजूल खर्ची कितने ही राष्ट्र कर रहे हैं, वह शान्ति का सही हल नहीं है। यदि इस फिजूल खर्ची का एक भाग किसी अन्य उपयोगी काम पर खर्च किया जाय तो शायद उससे लाभ हो और वह अधिक स्थायी शान्ति के लिये काम आ सके।

'मेरी यही सम्मति है जो समझदार स्त्री-पुरुषों तथा सद्भावना-प्रेरित सभी व्यक्तियों के समक्ष उस मानवता के नाम पर प्रस्तुत की जा सकती है, जिसमें हम सब समान रूप से सम्मिलित हैं। यह दृष्टिकोण किसी इच्छा विशेष पर आधारित नहीं वरन् उन घटनाओं के गम्भीर अध्ययन के आधार पर आधारित

है जो हमें परेशान कर रही हैं, और उसकी भलाई के लिये ही मैं इसे आपके सामने उपस्थित कर रहा हूँ।'

व्यापार

कोलम्बिया विश्व विद्यालय के पदवी दानोत्सव के दूसरे दिन ही नेहरू जी के सम्मान में एक भोज दिया गया, जिसमें सभी वर्गों के व्यक्ति सम्मिलित थे। जिसमें नेहरू जी से कई प्रश्न पूछे गये जिनमें दो प्रश्न मुख्य थे—

(१) अगर भारत के विकास कार्यों में बड़े पैमाने पर अमेरिकन पूँजी लगाई जाय तो क्या पुरानी तरह के औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के संकट को दूर रखा जा सकेगा ?

(२) भारत के साथ अमेरिका किस प्रकार सहयोग कर सकता है ?

पंडित नेहरू ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में कहा—'भारत की साधारण योजनाओं में हस्तक्षेप किये बिना अमेरिकन पूँजी लगाने की व्यवस्था करना कठिन कार्य नहीं होगा। मैं इसमें आर्थिक साम्राज्य का संकट नहीं देखता। यह प्रश्न भारतीय जनता के मस्तिष्क में भी खूब चक्कर काट रहा है। और ऐसा इसलिये नहीं है कि इसमें कोई खतरा है, बल्कि इसलिए कि भारत भूतकाल के अनुभव को भुला नहीं सका है।'

अगले प्रश्न के उत्तर में पंडित जवाहरलाल ने कहा—

'भारत से सहयोग करने का एक मात्र मार्ग यह है कि उसे काफी मात्रा में गेहूँ दिया जाय।'

पंडित जवाहरलाल ने यहाँ एक संक्षिप्त-सा भाषण भी दिया जिसमें उन्होंने कहा—

'हम अपनी भौगोलिक और ऐतिहासिक स्थिति को नहीं भुला सकते, प्रायः यह एक बोझ के ही समान है पर फिर भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

'एशिया की स्थिति असाधारण नहीं है, न विद्रोह की सी है, पर इस महाद्वीप में बड़ी तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा है। इस महाद्वीप की सबसे प्रबल जो समस्या है वह भूमि की है।

'एशिया में राष्ट्रवाद आज भी प्रारम्भिक दशा में है, उसकी राष्ट्रवादी भावना सर्वोपरि महत्ता की है।'

उन्होंने अपने भाषण में आगे चलकर कहा—'पर एशिया आज उपनिवेश के चक्कर से मुक्त हो रहा है, और इस तरह वह विश्व की समस्या में एक महत्त्वपूर्ण योग देने वाला है। आज उसकी दशा शक्ति के संचय के विकास की-सी है, उसकी भावना दृढ़ है। हो सकता है दृढ़ता की इस भावना के कारण कुछ गलतियाँ भी हो जायँ, पर मेरी दृष्टि से कमजोरी से यह अधिक अच्छी स्थिति है, भले ही उसके कारण चाहे गलतियाँ क्यों न हों। जहाँ तक इन दोनों देशों भारत और अमेरिका के सहयोग का प्रश्न है, मैं समझता हूँ इसके लिये दोनों देशों में एक दूसरे को समझने और उसके सहयोग की पूरी इच्छा होनी चाहिये।'

कनाडा की राजधानी

कनाडा की राजधानी में २४ अक्टूबर को उनका एक भाषण और हुआ, जिसमें कनाडा की संसद के दोनों सदनों के सदस्य उपस्थित थे। आपने कहा—

'मुझे प्रसन्नता है कि मैं इस उपनिवेश की राजधानी में हूँ, और भारत की जनता की शुभ कामनाएं आपके लिये लाया हूँ। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में आपके प्रधानमन्त्री श्री सेंट लारेंस और विदेशमन्त्री श्री पियर्सन से लगभग बारह महीने से विचार-बिमर्श वार्ता चल रही है। हमें अनेक कठिन और दुरूह समस्याओं पर विचार करना पड़ा। मैं कोई भेद प्रकट नहीं कर रहा कि अनेक मामलों में भारत और कनाडा के विचार एक से रहे हैं या एक रहे हैं।'

अपने इसी भाषण में उन्होंने एक जगह कहा—'कुछ वर्ष पूर्व भारतीय राष्ट्रवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद आपस में संघर्ष रत थे, जिसके कारण दुर्भावना, सन्देह और कटुता फैली। हालांकि यह विदेशी प्रभुता के विरुद्ध किसी भी राष्ट्रवादी संघर्ष से पैदा हुई दुर्भावना से काफी कम थी, क्योंकि हमारे संघर्ष के साथ हमारे नेता महात्मा गांधी की शिक्षा थी। भला उस समय किसने यह

बात सोची थी कि यह दुर्भावना और कटुता की भावना इतनी तेजी से मिट जायगी, और उसका स्थान समान और स्वतन्त्र राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण सहयोग का प्राप्त होना होगा। यह ऐसी समस्या है जिसके लिए सम्बन्धित सभी लोगों को श्रेय है। यह कठिन समस्याओं के शान्तिपूर्ण हल का अतुलनीय उदाहरण है। और मेरी समझ से यही वास्तविक हल है, क्योंकि इससे नई समस्याएँ पैदा नहीं होतीं। शेष विश्व इस उदाहरण से यदि चाहे तो लाभ उठा सकता है।'

दोनों देशों की भौगोलिक सीमाओं का जिकर करने के बाद पंडित नेहरू ने कहा—'आज की दुनियां में न तो आप, न हम विचारों की दृष्टि से पूरे राष्ट्रवादी या यूरोपीय अथवा एशियाई नहीं बने रह सकते हैं। इस नजर से दुनियां सीमित हो गई है। अगर हम एक दूसरे से सहयोग नहीं करते और शान्ति से नहीं रहते तो हम एक दूसरे पर टूट पड़ते हैं और एक दूसरे का गला दबोचने लगते हैं।'

एशिया की स्थिति के बारे में उन्होंने इस भाषण में भी स्पष्ट रूप से कहा—'एशिया, जो महाद्वीपों की जननी है, और जिसकी गोद में इतिहास का एक बड़ा भाग फला फूला है, आज फिर से जाग रहा है, इसकी नव जागृति स्वतन्त्रता की रफ्तार अत्यधिक तेज है क्योंकि गत दो शताब्दियों से इसकी प्रगति रोकी गई, अतएव झुँझलाहट अधिक रही। नई शक्तियाँ जाग उठी हैं। राजनीतिक स्वतन्त्रता खोने वाली ये शक्तियाँ तत्त्वतः राष्ट्रवादी रही हैं। जनता की आर्थिक दशा को सुधारने की इनकी प्रबल इच्छा रही। जहाँ राष्ट्रवाद का अवरोध हुआ, वहीं संघर्ष हुआ—जैसा कि आज वहाँ आप देख रहे हैं, और उसे दबाया भी जा रहा है उदाहरण के लिये दक्षिण पूर्वी एशिया को ले लीजिये। दक्षिण पूर्वी एशिया की वर्तमान अस्थिर स्थिति को आदर्शमय समझना बड़ी महानतम भूल होगी। विश्व के इस बड़े भाग और वास्तव में एशिया के अधिकतर भाग में वर्तमान परेशानियाँ और असन्तोष अवरुद्ध स्वतन्त्रता और गहरी गरीबी का प्रतिफल है। स्वतन्त्रता के संघर्ष को सफल गति देना और गरीबी को दूर करना ही परेशानियों और असन्तोष को दूर करने का उपाय है। यदि ऐसा हो गया तो निश्चय ही एशिया स्थायी शान्ति देने का कारण

बन जाएगा। एशिया का दर्शन ही शान्ति का दर्शन है, और रहा है।

'एशिया की दशा का एक अन्य दूसरा पहलू भी है, जिसका उल्लेख आवश्यकीय है। एशिया में दीखने वाला विद्रोह पश्चिम के कुछ राष्ट्रों के दम्भ के विरुद्ध प्राचीन और स्वाभिमानी लोगों की जायज चेष्टा है। कुछ देशों म जाति गति भेद-भाव अब भी दिखाई देता है और अखिल विश्व संघठनों में एशिया के मूल्य को आज भी पूरा-पूरा महसूस नहीं किया जा रहा है।

'भारत एशिया और अफ्रीका की स्वतन्त्रता की माँग की जो वकालत कर रहा है, वह भूगोल और इतिहास के तत्त्वों की स्वाभाविक माँग है। भारत किसी देश के नेतृत्व या उस पर अधिकार अथवा प्रभुत्व का भूखा नहीं है। पर एशिया और विश्व में अपना पार्ट निभाने के लिए हमें परिस्थितियों ने वाध्य कर दिया है। क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि जब तक एशिया की आधारभूत समस्याएँ हल नहीं हो जातीं तब तक विश्व शान्ति सम्भव नहीं है। लोकतन्त्र की अपनी परम्पराओं और ज्ञान के आधार पर कनाडा में हमारे उद्देश्यों और भावनाओं को समझने की शक्ति होनी चाहिए। स्वतन्त्रता क्षितिज का विस्तार करने, सुव्यवस्था और स्वतन्त्रता को अग्रसर करने तथा अभाव को कम करने एवं इस प्रकार स्थायी शान्ति को दृढ़ करने में अपनी बढ़ती हुई सम्पत्ति और शक्ति का उपयोग करना चाहिये।'

पंडित नेहरू ने स्पष्ट कह दिया—'यदि दूसरे देशों में शान्ति न हो, किसी देश में शान्ति सुनिश्चित नहीं हो सकती। इस तंग और छोटी होने वाली दुनियाँ में युद्ध, शान्ति और स्वतन्त्रता अविभाज्य हो रही है।'

और शान्ति की गारण्टी कब तथा कैसे मिल सकती है, इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने इसी भाषण में आगे चलकर कहा—'यदि दुनियां के विभिन्न भागों में बहुत बड़ी संख्या में लोग गरीबी और दीनता से घिरे रहेंगे तो शान्ति की कोई गारण्टी नहीं हो सकती। और अखिल विश्व के लिए तब तक कोई निश्चित अर्थ व्यवस्था भी नहीं हो सकती जब तक पिछड़े देश इसके संतुलन को बिगाड़ने के लिए बने रहते हैं। इसलिए आर्थिक और राजनैतिक दोनों कारणों से यह आवश्यक हो गया है कि इन पिछड़े देशों की उन्नति की जाय

और वहाँ के निवासियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जाय। इन क्षेत्रों के शिल्प-विकास और उद्योगीकरण से उन देशों को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचेगा जो औद्योगिक दृष्टि से काफी ऊँचे उठे हुए हैं। जितने अधिक देश जितनी अधिक सामग्री पैदा करेंगे, मानव जाति की उतनी ही अधिक सेवा करेंगे, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उतना ही अधिक बढ़ेगा। हमारे उद्योगीकरण का प्रमुख सामाजिक उद्देश्य अपने देश की बहुसंख्यक जनता की आवश्यकता पूरी करना है।

'आज के जिस युग में हम रह रहे हैं उसे आणुविक युग कहा गया है। शक्ति के नये बड़े स्रोतों का पता लगाया जा रहा है, पर मानव जाति की सेवा और उसकी उन्नति की बजाय लोगों के दिमाग ध्वंसात्मक उद्देश्यों की ओर दौड़ते हैं। युद्ध के इन नये और भयावह शस्त्रास्त्रों द्वारा ध्वंस सभी सम्बन्धित लोगों को अतुलनीय बरबादी की ओर ले जायेगा। परन्तु लोग फिर भी युद्ध के बारे में बड़ी सरलता से बातें करते हैं, इसकी तैयारी में अपना मस्तिष्क और शक्ति खपाते हैं। अभी उस दिन एक प्रमुख अमेरिकन ने कहा था—'कुछ कीड़े-मकोड़ों से छुटकारा पाने के लिए घर में आग लगाने के लिए अणुबम के प्रयोग की इच्छा की जा सकती है।

'इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे सिर पर संकट मड़रा रहा है। उससे हमें सचेत रहना चाहिये, और सभी आवश्यक सुरक्षात्मक कार्रवाहियाँ की जानी चाहियें। पर हमें सदैव स्मरण रखना होगा कि मानव प्रगति की सेवा करने या उसकी रक्षा करने का उपाय उसके मकान या सामग्री को नष्ट-भ्रष्ट करना नहीं है।

'इस तरह विश्व शान्ति को बनाये रखने तथा अपने मस्तिष्क और बुद्धि को उस ओर ले जाने का कार्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हम सबके सब शान्ति की बातें करते हैं, और उसकी इच्छा भी प्रकट करते हैं, पर क्या हम सच्चाई और श्रम के साथ इसके लिये प्रयत्नशील हैं? जब भारत का स्वतन्त्रता का संग्राम चालू था, तब भी हमें गांधी जी ने शान्ति का मार्ग बताया। अखिल विश्व के सम्बन्ध में भी हमें परिस्थिति के अनुसार इस मार्ग

को अपनाना चाहिये। मुझे विश्वास है कि भारत की नाईं कनाडा भी हृदय से शान्ति बनाये रखने के पक्ष में है। दोनों ही देश लोकतन्त्र और लोकतान्त्रिक ढंगों एवं व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में विश्वास रखते हैं। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी हमारे उद्देश्य समान हैं और अब तक इन सहयोगों को पूर्ण करने में हमारे सामने कोई कठिनाई नहीं दिखाई दी है। मैं यहाँ कनाडा की सरकार और जनता को यह विश्वास दिलाने आया हूँ कि अपने सहयोग से उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये काम करने की हमारी हार्दिक इच्छा है। पूर्व और पश्चिम के सम्बन्ध में हमारे मस्तिष्क में जो भेद बने हैं, वे व्यर्थ हैं, उनमें कोई सार नहीं है, और सब एक ही महान उद्योग में समान रूप से साझीदार हैं। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उन खतरों के बावजूद जो आज दुनियाँ को हिला रहे हैं, मानव कल्याण के लिये रचनात्मक एवं सहकारी कोशिशें करने वाली शक्तियाँ सफल होंगी और मनुष्य की आत्मा विजयी होगी।'

हम अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय में कह चुके हैं कि प्रथम और द्वितीय महायुद्धों का पंडित नेहरू के हृदय पर अत्यधिक बुरा प्रभाव पड़ा था। शिकागो विश्व विद्यालय में भाषण करते हुए उन्होंने दूसरे महायुद्ध से पैदा हुए संकट की ओर इशारा करते हुए कहा—

'क्या मैं आपको स्मरण दिला सकता हूं कि बहुत अधिक दिन नहीं हुए, ६ वर्ष पूर्व सन् १९४३ में जब कि युद्ध हो रहा था, बंगाल में भयानक अकाल पड़ा था? आपको सँम्भवतः स्मरण होगा कि उस समय केवल भूख से तड़प-तड़प कर तीस लाख आदमी बंगाल में मर गये थे। अकाल के अनेक कारण थे, लेकिन इस अर्थ में उसका सीधा सम्बन्ध युद्ध से रहा कि जनता पर पड़ने-वाले प्रभाव पर ध्यान दिये बिना भारत के सारे साधन युद्ध में झोंक दिये गये। जीवन निर्वाह की अत्यधिक आवश्यक वस्तुएँ भी छीन ली गईं और इस तरह अचानक लोग कंगाल हो गये। फसल भी अच्छी नहीं हुई थी। और इस तरह जीवित रहने के साधन समाप्त हो गये। लोग मक्खियों की तरह मर गये। लोकतान्त्रिक सरकार इच्छा रहते हुए भी उपर्युक्त परिस्थिति का सामना नहीं कर सकती थी। उस सरकार को पद त्याग करना पड़ता और नई सरकार

पदारूढ़ होगी ।'

अरगुबम के सम्बन्ध में पंडित नेहरू ने अपने इस भाषण में भी स्पष्ट कर दिया—

'आज की दुनियां में लोग अरगुबम की बात करते हैं, और उसके सभी सम्भव उपायों से लोग डरते हैं, जिसका सामना वर्तमान पीढ़ी को भी करना पड़ सकता है । यह बहुत असाधारण स्थिति है, क्योंकि कोई भी कह सकता है कि विज्ञान का व्यवहार इतना विकसित हो गया है कि मानव जाति की न केवल प्रारम्भिक आवश्यकताओं की बल्कि अन्य आवश्यकताओं की भी पूर्ति सारी दुनियां के लिए आसानी से सम्भव होनी चाहिए और बिना किसी प्रकार के संघर्ष के व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में अपना विकास करने का अवसर सबको मिलना चाहिए । मेरा विचार है कि तरीकों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि दुनियां के साधनों का दुरुपयोग युद्ध अथवा युद्ध की तैयारी में करने के बजाय यदि उन्हें मानव जाति की भलाई की दिशा में मोड़ दिया जाय तो सारी दुनियां के लिये फलना-फूलना सम्भव है । इतिहास में पहली बार मनुष्य के हाथ में उसकी अपनी प्रसन्नता की कुंजी आई है । यदि यह समस्या इतिहास में दो या तीन सौ वर्ष पहले उत्पन्न हुई होती तो शायद इसे हल न किया जा सकता, क्योंकि उस समय पूरी मानव जाति एक साथ उन्नति नहीं कर सकती थी ।

'फिर भी ऐसे समय में जब हम उन सारी समस्याओं को हल कर सकते हैं, जिनसे सदियों तक विश्व पीड़ित हुआ है, हम अपनी खुद की सद्‌भावना या दुर्भावना से नयी समस्या पैदा कर लेते हैं । आज तो अणुबम के द्वारा इसका उदाहरण भी उपस्थित किया जा सकता है । और निश्चय ही अणुबम तो अन्य बातों का केवल प्रतीक मात्र है । यह असाधारण बात है कि हम सदैव इससे डरते रहते हैं और नहीं जानते कि कब अचानक बरबादी घहरा उठेगी । मैं इससे बहुत नहीं डरा हूँ, क्योंकि मैं यह नहीं समझता कि निकट भविष्य में बरबादी आने की बड़ी भारी आशा है । यदि आने वाले कुछ वर्षों का उपयोग ठीक ढंग से हुआ तो बरबादी कभी नहीं आयेगी, मगर इसके लिये शर्त यह है कि हम

चैतन्य होकर उसे आने देने से रोके रहें, और खतरनाक ढंग से डरें नहीं। इस समय तो सबसे कड़ा भय डर है। यदि कभी गलत कदम उठा तो वह इस भय के कारण ही उठ सकता है।'

अपने इस लम्बे भाषण के अन्त में उन्होंने विश्व शान्ति के उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा—

'दूसरों के सिर दोष मढ़ना हमारे लिये कोई अच्छी बात नहीं है। यह ठीक है कि दोष दूसरों को दिया जा सकता है, पर सवाल तो यह है नहीं। इससे बचने का मार्ग हमें ढूँढ़ना चाहिये, और दूसरों की सद्भावना या दुर्भावना पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, क्योंकि ऐसी दशा में ही हम युद्ध या शान्ति के सम्बन्ध में दूसरों द्वारा किये जाने वाले कार्यो पर निर्भर हो जाते हैं।

'स्पष्ट है कि इस भ्रम के जाल से निकालने के लिये मेरे पास किसी के लिए जादू का धागा नहीं है। किसी भी राजनीतिज्ञ के लिये यह पहेली अत्यन्त कठिन है, क्योंकि जिम्मेदारी ग्रहण करने वाला कोई भी व्यक्ति अपने देश के सम्बन्ध में खतरा मोल लेना सहन नहीं कर सकता, उसे प्रत्येक स्थिति का सामना करने की तैयारी करनी पड़ती है और उसे किसी सम्भाव्य आक्रमण के विरुद्ध तैयारी करनी पड़ती है। मानव जैसा आज है, उसे देखते हुए वह पूर्णतः शान्ति पूर्ण विरोध का तरीका अख्तियार नहीं कर सकता, और न वह कह सकता है कि हम कुछ न करेंगे और न यह आशा करता है कि कोई दूसरा भी हमें नुकसान नहीं पहुँचायेगा। वह कोई खतरा मोल नहीं ले सकता। उसे प्रत्येक सम्भव स्थिती का सामना करने के लिए तैयार होना पड़ता है।'

उपरोक्त वक्तव्यों से हालांकि अहम की गन्ध अधिक आती है, मगर इसके बावजूद पंडित नेहरू ने शान्ति के लिए जो जद्दोजहद आज छेड़ रखी है, उसकी गन्ध इसमें व्यापक है। जैसा कि एक जगह उन्होंने बंगाल के अकाल के बारे में कहा है। मगर पंडित नेहरू केवल युद्धप्रिय अमेरिका से सौदेबाजी करने गए हों यह बात उस समय भले ही कुछ लोग कह सके हों, पर आज उनके उन्हीं भाषणों को पढ़ने से धारणा बदल जायेगी। पंडित नेहरू के उपर्युक्त भाषण बदल गये हों, या पाठकों की सहज सुलभ बुद्धि बदल गई हो ऐसी बात नहीं

है। वरन् इसका कारण है जो गन्ध हमें अमेरिका में दिए गए भाषणों में तब आती थी, आज वह यौवन के द्वार पर है, अतएव हमें आरम्भ की कुछ साधारण गन्ध को भी नहीं भुला देना चाहिये, क्योंकि यदि अंकुरों की ओर ध्यान नहीं दिया जायेगा तो वृक्ष पनपेगा ही क्योंकर ?

तृतीय अध्याय

कोरिया के युद्ध का ऐतिहासिक महत्त्व

युद्ध का शिकार कोरिया

जब तक हम ये न जान लें कि कोरिया के दो भाग उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरिया कैसे बने, तब तक पूरी बात समझ में नहीं आ सकेगी। क्या कभी कोरिया एक था, यदि हालत आज की सी ही बनी रही तो अगली पीढ़ी के जवान इस प्रश्न को दुहरायेंगे, और तब इतिहास को उलटकर उन्हें देखना पड़ेगा कि कोरिया कभी एक था भी या नहीं, अथवा उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरिया दो छोटे २ एक नाम के राज्य क्यों हैं ? आइए तनिक गम्भीरता से इसके पीछे छिपे रहस्य को देखें जो हमारे उपरोक्त प्रश्न का उत्तर है।

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व कोरिया एक राष्ट्र था, मगर द्वितीय महायुद्ध में जब जापानी फौजों ने चीन पर आक्रमण किया, तो चीन युद्ध में फंस गया और जापान जिसकी सैन्य शक्ति काफी दृढ़ थी, समुद्र के छोटे-छोटे द्वीपों और राज्यों को जीतता हुआ बर्मा तक आ गया, विजित देशों में कोरिया भी सम्मिलित था। अमेरिका उस समय हालांकि इन छोटे-छोटे द्वीपों और चीन से व्यापार करता था, अमेरिका की मंडिया पूरब में ये छोटे-छोटे द्वीप और एशिया के दूसरे देश थे। मगर आज का गर्वीला अमेरिका उस युद्ध से पूर्व भी इतना ही गर्वीला था पर युद्ध के समय उसने सबसे पहले व्यापार के बारे में सोचा। और फल-स्वरूप जापान का विरोध करने के बावजूद इन देशों में फौजी सामग्री से आगे अमेरिका की सहायता नहीं बढ़ी। इस तरह ये छोटे-छोटे अविकसित राष्ट्र जापान के एक ही आक्रमण में घुटने टेक बैठे और जापानी फासिस्टों के हाथ में इनके शासन की बागडोर चली गयी।

मगर जब सोवियत रूस युद्ध में आ गया, और उसने अपने दो मोर्चे एक पूरब में दूसरा पश्चिम में खोल दिया तो जापान के डिक्टेटर तोजो और जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर ने रूस पर आक्रमण करके अपनी गलती को पहिचाना।

लाल फौज के साथ ब्रिटेन और अमेरिकन फौज भी सम्मिलित थी। ब्रिटेन की सेनाएँ तो अपने औपनिवेशिक राज्यों की हिफाजत में लग गईं, मगर चूँकि अमेरिका की फौजें अभी तक युद्ध में नहीं फँसी थी, इसलिये उसका सैन्य बल यूरोप के दक्षिणी मोर्चे और चीन की ओर भेज दिया गया। अर्थात् दो मोर्चों पर सोवियत रूस की सेना थी और दो पर ब्रिटेन और अमेरिका की। मगर सोवियत रूस ने अपने पूर्वी मोर्चे से आगे बढ़कर जापान को पीछे धकेल दिया और फिर चीन होती हुई लाल फौजें अमेरिकन फौजों के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर कोरिया आदि देशों की स्वतन्त्रता के लिये लड़ने लगीं, जब तीन शक्तियोंका संयुक्त मोर्चा स्थापित हो गया तो जापान को मुँह की खानी पड़ी और उसे पीछे हटना पड़ा। इस तरह स्वतन्त्र राज्य कोरिया पर युद्ध में जापानके हारने के पश्चात् दो देशों का एक साथ कब्जा हुआ। अर्थात् अमेरिका और रूस की फौजों ने कोरिया को मुक्ति दिलाई। उत्तरी कोरिया में उस समय लाल फौजें थीं और दक्षिणी कोरिया में अमेरिकन फौजें। दोनों देशों ने एक समझौता किया, जब तक कोरिया अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता तब तक इन दोनों देशों की देखरेख में समूचा कोरिया रहेगा, ताकि प्रतिगामी तत्त्व जो जापान के युद्ध के समय उभर आये थे, फिर सर न उठा सकें। और इस तरह से कोरिया के सीने पर एक लकीर खींच दी, ३८ अक्षांस की। और कोरिया के दो राष्ट्र हो गये।

मगर लाल फौज ने जैसा कि प्रसिद्ध है, कोरिया में तुरत अस्थायी सरकार स्थापित कर दी, जो आगे चलकर स्थायी रूप में बदल गई, मगर अमेरिका ने ऐसा नहीं किया, उसने प्रतिक्रियावादियों को गद्दी पर बिठा दिया, जिससे यदि कोरिया का एकीकरण भी हो जाय तो उसके व्यापारिक हित भी सुरक्षित रहें।

धीरे-धीरे एक समझौते के अनुसार लाल फौजें और अमेरिकन फौजें वहाँ से हटने लगीं, मगर अमेरिकन फौजों के हटने का तो केवल बहाना मात्र था। जब लाल फौजें वहाँ से हट गईं तो दक्षिणी कोरिया ने अपनी सीमा बढ़ाने के लिए गड़बड़ करनी आरम्भ कर दी, क्योंकि अमेरिका को उत्तरी कोरिया के कारण अपने व्यापारिक हित खतरे में दिखाई पड़ने लगे, और फिर उत्तरी कोरिया

जहाँ इस बीच आत्म निर्भर राष्ट्र बन चुका था, वहाँ दक्षिणी कोरिया अमेरिका का आश्रित था। फलस्वरूप दक्षिणी कोरिया में अपने शासकों के प्रति विद्रोह की भावना जागृति हो उठी। और तब जनता की इस भावना को वह युद्ध की ओर मोड़ने के लिए कोशिशें करने लगे।

३८ अक्षाँश पर उन्होंने हलचलें आरम्भ कर दीं। मगर इसके बावजूद दक्षिणी कोरिया की जनता छापेमार गुटों में संगठित होने लगी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से कोरिया के एकीकरण के लिए बनाई गई एक कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा—

'दक्षिणी पूर्वी कोरिया में कुरचान के निकट शिनवुन मिडन गाँव में रहने वाले लोग, छापेमार दस्तों का साथ देने और उनकी सहायता करने के अपराध में फौजी अदालत (कोर्ट मार्शल) द्वारा १९५१ में मौत के घाट उतार दिये गये।'

ए० वाई विशिन्सकी रूसी प्रतिनिधि संयुक्त राष्ट्रसंघ में जब कोरिया के बारे में अपनी रिपोर्ट उपस्थित कर रहे थे, तब उन्होंने ऊपर के गाँव के बारे में कहः—'रिपोर्ट में वर्णित घटनाएँ जून १९५० में शुरू हो गई थीं। जब दक्षिणी कोरिया की पुलिस गाँव को नेस्तनाबूद करने के बार-बार प्रयत्न कर चुकी थी, तब फरवरी १९५१ में दक्षिणी कोरिया की एक फौजी बटालियन और पुलिस दोनों ने गाँव पर हमला बोल दिया। इस पर हथियारों से लैस कई सौ छापेमारों और गाँव वालों ने उनका मुकाबिला किया। पूरे दस घण्टे तक लड़ाई जारी रही। रिपोर्ट के अनुसार गाँव के लोग छापेमारों की सहायता कर रहे थे। उन्होंने अनाज के ढेरों और अपने घरों में छापेमारों के छिपकर लड़ते रहने के स्थान बना रखे थे।'

जिस रिपोर्ट के बारे में श्री विशिंस्की ने ऊपर जिकर किया है, उसका अगला भाग बिल्कुल ही दक्षिणी कोरिया को बेपरदा कर देता है। रिपोर्ट में लिखा है—'गाँव वालों और कम्युनिस्टों के बीच बाकायदा विवाह-सम्बन्ध स्थापित हुए थे। युद्ध के दौरान में पुलिस द्वारा खाना माँगे जाने पर गाँव वालों ने उन्हें खाना देने से इन्कार कर दिया। छापेमारों को भोजन देकर किसानों ने

उनके प्रति अपनी हमदर्दी का सबूत दिया। इन सब बातों से बिल्कुल साफ जाहिर हो जाता है कि कम्युनिस्ट छापेमारों और गाँव वालों के बीच बड़ी घनिष्ठता के सम्बन्ध थे। और रिपोर्ट का कहना है कि फौजी टुकड़ियों की फौजी कार्रवाहियों में ये घनिष्ठता के सम्बन्ध ही बड़ी भारी रुकावट बन गये थे। गाँव के स्थानीय निवासियों के रवैये को देखकर फौज और पुलिस के दस्ते क्रोध से बौखला उठे थे, उन्होंने गाँव पर हमलों पर हमले किये और लगभग २०० कम्युनिस्टों को भून डाला। इनमें गाँव के वह लोग भी शामिल थे जिन्होंने छापेमारों का साथ दिया था।

'पर ऐसे पाशविक हत्याकांडों से भी दक्षिणी कोरिया की ताजोरी बटालियन के कमांडर की भूख नहीं मिटी। कुहचान पुलिस के खुफिया विभाग के प्रमुख अधिकारी को साथ लेकर वह शिनबुक गांव में पहुँचा, और वहाँ के १८७ निवासियों को उसी समय गोली से उड़वा दिया।

'सैकड़ों छापेमारों की हत्या की कोशिशें करने वाली सिंगमनरी की पुलिस और अफसरों के खिलाफ कुहचान के निहत्थे किसानों का यह वीरतापूर्ण संघर्ष था। सिंगमनरी की पुलिस ने खुद कबूल किया है कि छापेमारों और गाँव वालों के बीच बड़े मित्रतापूर्ण और घनिष्ठ सम्बन्ध थे। यह दोनों बातें इस सत्य के जीते-जागते सबूत हैं कि दक्षिणी कोरिया में सिंगमनरी सरकार के खिलाफ चलने वाले संघर्ष की जड़ें आम जनता में गहरी जमी हुई हैं।

'सिंगमनरी सरकार के खिलाफ दक्षिणी कोरिया की आम जनता के व्यापक विरोध के परिणामस्वरूप ही छापेमार आन्दोलन का जन्म हुआ था, यह विरोध इस सरकार का समर्थन करने वाले अमेरिकी फौजी अधिकारियों के भी खिलाफ था।

'अपने शक्तिशाली विदेशी मालिकों की सहायता से सिंगमनरी सरकार ने उन सभी लोगों का बेरहमी से दमन किया जो तनिक भी प्रगतिशील या जनवादी विचारों वाले होते थे।'

युद्ध की आग दर असल लगाई थी दक्षिणी कोरिया के राष्ट्रपति सिंगमनरी ने, जो स्वयं दुनियाँ के सामने काफी बदनाम हो चुका है। ३० दिसम्बर १९४९

को एक प्रस कान्फ्रेंस में स्वयं सिंगमनरी ने ऐलान किया—

'नये वर्ष में हमें एकीकरण हासिल कर ही लेना चाहिए, और हम पूरी आशा है कि हम इसे प्राप्त कर लेंगे—राष्ट्रसंघ से सहयोग की खातिर हम पूरी गम्भीरता से सन्तोष किए बैठे रहे हैं। कोरियाई जनता की आपसी समझ-बूझ के द्वारा एकीकरण हासिल करने की अपनी कोशिशें हम जारी रखेंगे। पर एक बार न टलने वाला समय आने पर, शायद हम खूनखच्चर और घरेलू मारकाट को नहीं रोक सकते और अगर हम दुर्भाग्य से इस साल एका हासिल न कर सके तो अपनी सीमा को एक करने के लिए हमें खुद व खुद मजबूर होना पड़ेगा।'

ठीक इसी प्रकार दक्षिणी कोरिया के रक्षामन्त्री कैप्टन सिंगमुंग यो ने फरवरी १९५० में घोषणा की—

'यदि राष्ट्रसंघ कोरिया से उस 'कटार' को हटा सकने में फिर असफल हुआ, जिसको हटा सकने में अभी तक वह नाकामयाब हुआ है, तो कोरियाई जनता को इसे हटाने की खुद कोशिश करनी पड़ेगी, और ऐसा करने के लिए उसे बल प्रयोग करना पड़ेगा।'

मिस्टर अचेसन के प्रश्न का उत्तर देते हुए सोवियत प्रतिनिधि श्री बिशिंस्की ने आक्रमण किसने किया, इस पर प्रकाश डालते हुए कुछ आंकड़े पेश किये और कहा—

'३८ अक्षांस के आसपास सभी हथियार बन्द घटनाएं दक्षिणी कोरियाइयों की शुरू की हुई थीं। जून १९४९ से पहले उत्तरी कोरिया की सीमा पर गोली बारी होती थी, पर जून के महीने से दक्षिणी कोरियाइयों ने ३८ अक्षांस को भंग करना शुरू कर दिया। उत्तरी कोरिया की लाइनों पर कब्जा करने के मकसद से पूरी की पूरी टुकड़ियों ने ३८ अक्षांस को पार करना शुरू कर दिया। यही कारण था कि हथियार बन्द मुठभेड़ शुरू हो गई।

'जून से अगस्त १९४९ तक दक्षिण कोरियाइयों के हमले के क्षेत्र ओसिन (ओगांडिन) है जो (कैसुंग) ज्योये (ययांग) थे।

'ओसिन के क्षेत्र में दक्षिणी कोरियाई पुलिस ने बार-बार ३८ अक्षांस को भंग किया और उत्तरी कोरिया की सीमा में स्थित पहाड़ियों पर कई बार कब्जा

कर लिया।

'जून १९४९ में दक्षिणी कोरियाई, ट्रेन्च मोटरों से लैस सात पैदल दस्ते और हथियारों से सुसज्जित फौजी टुकड़ी को मोर्चे पर ले आए, और उत्तरी कोरिया में स्थित उपयोगी जगहों पर कब्जा करने के उद्देश्य से, हमला बोल दिया। थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से पूरे दो महीने तक लड़ाई जारी रही।

'२७ जून को दक्षिणी कोरियाइयों की बटालियन ने २८८·० पहाड़ी, १९ जुलाई को दक्षिणी कोरिया की एक फौजी टुकड़ी ने गोलीबारी की भारी तैयारी के बाद ४८८·२ पहाड़ी पर (३८ अक्षांस के उत्तर में) धावा किया और कब्जा कर लिया। २८ जुलाई से १ अगस्त १९४९ तक लड़ाई जारी रही, और अन्त में दक्षिणी कोरिया की फौजी टुकड़ियों को उत्तरी कोरिया से खदेड़ दिया गया।

'फौजों के क्षेत्र में हमले के समय दक्षिणी कोरियाइयों ने बहुत ज्यादा संख्या में गोला बारूद और मोटरों का प्रयोग किया। अकेले २५ जुलाई के दिन दक्षिणी कोरियाइयों ने ३५०० से ज्यादा भारी हौविज़र गोलों और १००० से ज्यादा माइनों (बिस्फोटकों) का इस्तैमाल किया।

'इसके अलावा दक्षिणी कोरियाइयों ने ३८ अक्षांस को और भी कई जगह भंग किया—उदाहरण के लिये ज्योजो क्षेत्र में (पूर्वी समुद्रीतट पर)। इस क्षेत्र में दक्षिणी कोरियाइयों ने २८ जून को ३८ अक्षांस के उस पार १५६ आदमियों की दो तोड़-फोड़ टुकड़ियाँ भेजीं, ताकि वे उत्तरी कोरियाइयों के गेन्ज़ान (वोन्सान) ज्योजो क्षेत्र में वापिसी के रास्ते को काट दें। ५ और ६ जुलाई को दक्षिणी कोरियाइयों की एक पैदल फौजी टुकड़ी ने सितोकुटी और कुऊडैनरी पर कब्जा कर लिया और ३८ अक्षांस के उत्तर में ४·५ किलोमीटर अन्दर धंस गई। दक्षिणी कोरियाइयों की दूसरी फौजी टुकड़ी ने किदोमोनरी क्षेत्र में (३८ अक्षांस से लगभग १ किलोमीटर उत्तर में) पहाड़ियों पर कब्जा कर लिया। यहाँ मैं इस बात की याद दिला दूँ कि जनरल असेम्बली के पाँचवें अधिवेशन में १९५० में ही, हमने कोरिया में हमले का सवाल उठाया था, पर अमरीकी प्रतिनिधि मंडल ने इस बात से इनकार करने की कोशिश की कि कोरिया में सिंगमनरी सरकार के सहयोग से अमरीकी हमला हुआ है।'

बिल्कुल एक ताजी बात का जिकर करते हुए श्री विशिस्की ने कहा—

'२० जून १९५० को, उत्तरी कोरिया पर हमले से ५ दिन पहले डलेस[1] ने सिगमनरी को लिखा था कि अब खेले जाने वाले विराट नाटक में सिगमनरी के देश की जो निर्णयात्मक भूमिका होगी, उसे वह खास महत्व की दृष्टि से देखता है।'

इस प्रकार २५ जून १९५० को कोरिया में युद्ध यों ही आरम्भ नहीं हो गया।

वास्तव में कोरिया के युद्ध के कारण ये थे जो ऊपर दिये जा चुके है, अर्थात् जब दक्षिणी कोरिया ने ३८ अक्षांश पर ही ऊधमबाजी न करके ३८ अक्षांस के पार भी इतनी ऊधमबाजी की कि उत्तरी कोरियाइयों को सिगमनरी की वह बात सत्य जंचने लगी, जिसमें उसने कहा था—'हमको यदि कोरिया के एकीकरण के लिए शस्त्र भी उठाने पड़े तो उठायेंगे।' तो वह अपनी सुरक्षा के हेतु सिगमनरी की सेना से मोर्चे पर जाकर डट गये, और दक्षिणी कोरियाई निवासी जो पहले से ही सिगमनरी सरकार को पसन्द नहीं करते थे और गुरिल्ला युद्ध आरम्भ कर चुके थे, ने भी दक्षिणी कोरिया की सरकार की घमंडी बातों को मिट्टी में मिला दिया, और फिर जब तक युद्ध उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरिया तथा अमेरिका में रहा, वह दक्षिणी कोरियाई सेना को धुर दक्षिण तक पीटते चले गये। इस तरह से एक दिन दक्षिणी कोरियाइयों की कोरिया के एकीकरण की इच्छा उत्तरी कोरिया ने पूर्ण कर दी। पर संयुक्त राष्ट्रसंघ पर अमेरिका का उन दिनों प्रभुत्व था, उसने तुरत उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित करके संयुक्त राष्ट्रसंघ की फौजों को दक्षिणी कोरिया की सहायता के लिए भेज दिया। जिसमें अमेरिका, फ्रांस, इंगलैंड, पाकिस्तान तथा अन्य कुछ राष्ट्रों की फौजें सम्मिलित थीं। भारत के प्रधानमन्त्री ने इस समस्या पर गम्भीरता से सोचा और भारतीय फौजें भेजने मे साफ इन्कार कर दिया। वरन् शान्ति कार्य के नियमों के अनुसार उन्होंने एक चिकित्सादल कोरिया

---

[1] डलेस इस समय अमरीकी सरकार के परराष्ट्र मन्त्री हैं।

भेजा, जिसने घायलों की बड़ी अच्छी तरह से सेवा की ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की फौजें कोरिया में पहुंचने पर पासा तो पलट गया, मगर उसका मूल्य संयुक्त राष्ट्रसंघ को बड़ा महँगा चुकाना पड़ा । एक-एक इंच भूमि के लिये उत्तरी कोरियाइयों ने प्राणों की बाजी लगा दी ।

चीनी जनता इस समय बड़ी बेचैन थी, क्योंकि अमरीकी जनरल और जिम्मेदार लोग बार-बार एक ही बात दुहराते थे कि हम यदि उत्तरी कोरिया की फौजें कोरिया से बाहर किसी दूसरे देश में गईं तो वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ेंगे । इन सब बातों ने चीनी जनता को सचेत कर दिया था, क्योंकि कोरिया चीन की सीमा से मिला हुआ है । और अमरीकी फौज ने इस बीच कोरिया चीन की सीमा पर हवाई जहाजों से बम भी बरसाये, जिसका प्रभाव चीनियों पर बहुत बुरा पड़ा और चीन के स्वयंसेवक अपने पड़ौसी कोरिया की सहायता के लिए निकल पड़े । अब तक केवल कहा ही गया था कि चीनी फौजें कोरिया में लड़ रही हैं, मगर सबूत के लिए वह एक भी उदाहरण उपस्थित न कर सके थे, मगर अब चीनी जनता अपने पड़ौसी देश कोरिया के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़ रही थी ।

इस युद्ध में अमेरिका ने तमाम अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को तोड़ दिया, कीटाणु बम का प्रयोग किया, स्कूल और हस्पतालों पर भी बम गिराये गये । कीटाणु-बम गिराने के बारे में सारे देश एकमत से अमेरिका के विरुद्ध हो गए, और लगभग सभी राष्ट्रों ने एक स्वर से इस बात की निन्दा की कि अमेरिका ने कोरिया में कीटाणु बम छोड़कर और अस्पतालों पर बम गिराकर अन्तर्राष्ट्रीय कानून को तोड़ा है तथा महान् पाप किया है । क्योंकि कीटाणु बम के फट जाने के पश्चात् उससे बीमारियों के फैलाने वाले कीटाणु हवा के साथ ही जहाँ-जहाँ पहुँचते हैं, वहीं-वहीं बीमारी फैल जाती है । इस प्रकार उत्तरी कोरिया में चेचक और हैजा की बीमारी भी फैल गई ।

युद्ध के मोर्चे से आई हुई खबरों में यह भी कहा गया कि बच्चों के खिलौनों के भीतर भी गैस या इसी प्रकार के कीटाणु बन्द करके हवाई जहाजों से शहरों पर फेंके गए, और इस तरह छोटे-छोटे बच्चों को भी अमरीका ने नहीं बख्शा ।

इस तरह दुनियां में कोरिया के इस युद्ध ने शान्ति के आन्दोलन को जन्म दिया।

दूसरी विश्व शान्ति कांग्रेस की ओर से दुनियां की जनता के नाम निम्न घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ, जो अब शान्ति के इतिहास की एकनिध बन गया है।

'युद्ध का खतरा मानव जाति के—बच्चों, स्त्रियों और मर्दों के—सिर पर मँडरा रहा है। शान्ति और निश्चिन्तता को बनाये रखने को लोगों ने संयुक्त-राष्ट्रसंघ से जो आशायें की थीं उन पर वह पूरा नहीं उतरा। मानव जाति और मानव संस्कृति की उपलब्धियाँ खतरे में हैं।

'सभी लोग यह आशा करना चाहते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ निश्चित रूप से *उन सिद्धान्तों की ओर फिर से रुख करेगा जिनके आधार पर, द्वितीय विश्व-*युद्ध के बाद, उसकी नींव रखी गई थी, जब कि यह मान लिया गया था कि आजादी, शान्ति और जातियों (राष्ट्रों) के बीच परस्पर आदर की भावना को सुरक्षित रखा जायेगा।

'लेकिन जातियां इससे भी ज्यादा खुद अपने में, खुद अपनी इच्छा-शक्ति और नेक इरादों में—आशा रखती हैं। हर समझदार आदमी के सामने यह साफ है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति जो 'युद्ध की अनिवार्यता' पर जोर देता है, वह मानव जाति को लांछित करता है।

'जब तुम इस सन्देश को पढ़ो, जिसे अस्सी देशों की जनता के नाम पर वारसा में हुई द्वितीय विश्व शान्ति कांग्रेस में स्वीकार किया गया है, तो याद रखो कि शान्ति के लिए संघर्ष के साथ तुम्हारे जीवन का गहरा लगाव है। अवगत रहे कि लाखों करोड़ों शान्ति के सैनिक, जो एक जुट हो गये हैं, अपने हाथ तुम्हारी ओर बढ़ा रहे हैं। अपने भविष्य में दृढ़ विश्वास के साथ मानव-जाति पहली बार जिस अत्यन्त शुभ संघर्ष को चला रही है, उसमें शामिल होने के लिए वे तुम्हारा आवाहन कर रहे हैं।

'शान्ति के आगमन के लिये प्रतीक्षा नहीं की जाती—उसे जीतने के लिए संघर्ष करना होता है। आओ, हम अपने प्रयासों को संयुक्त बनायें और युद्ध को

बन्द करने की माँग करें जो आज कोरिया को नष्ट-भ्रष्ट और कल समूची दुनियाँ को अपनी लपटों में लेने का खतरा उत्पन्न कर रहा है।

'जर्मनी और जापान में नये सिरे से युद्ध की भट्ठियाँ धधकाने की कोशिशों के विरुद्ध हमें उठ खड़े होना है।

'आओ स्टाकहोम अपील पर हस्ताक्षर करने वाले ५००,०००,००० लोगों के साथ मिलकर एटम हथियार पर रोक लगाने की, आम निशस्त्रीकरण की और इन उपायों को असली रूप देने के लिए उन पर कन्ट्रोल कायम करने की हम माँग करें। आम निशस्त्रीकरण और एटम हथियार को बरबाद करने पर कड़ा कन्ट्रोल कायम करना, टेकनीक की रू से सम्भव है। हमें इसके लिए केवल इच्छा की दरकार है।

'युद्ध प्रचार को दंडनीय करार देने वाले कानूनों को पास करना हमें अनिवार्य बना देता है। अपनी पार्लियामेंट के सदस्यों के सामने, द्वितीय विश्व-शान्ति कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत शान्ति को ऊँचा उठाये रखने वाले अपने सुझावों को हमें रखना है।

'शान्ति की ताकतें प्रत्येक देश में इतनी बड़ी हैं और शान्ति के लोगों की आवाजों में इतना जोर है कि हम सब मिलकर, संयुक्त रूप में, पाँच बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की मीटिंग को अवश्यम्भावी बना सकते हैं।

'द्वितीय विश्व शान्ति कांग्रेस ने बेजोड़ शक्ति के साथ यह दिखा दिया है कि वे लोग जो दुनियां के पांच भागों से यहां आकर इसमें शामिल हुए, बावजूद भिन्न-भिन्न मत रखने के, नये युद्ध की विभीषिका को रोकने तथा शान्ति को बनाये रखने के लिए एक मत हो सकते हैं। सरकारों को भी इसी प्रकार अमल करना है। तब शान्ति का लक्ष्य सुरक्षित हो जायेगा।'

कुछ देशों में शान्ति के लिए आवाज उठाने वाले लोगों पर अत्याचार किये गये, क्योंकि शान्ति की आवाज प्रबल हो जाने के डर से उन्हें खतरा होता था, अपनी युद्ध की योजना के विरुद्ध जनता के चले जाने का, अतएव वारसा की दूसरी विश्व शान्ति कांग्रेस ने इस सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया—

'कतिपय देशों में आज शान्ति के सैनिकों को पुलिस दमन का शिकार

बनाया जा रहा है ।

'लेटिन अमरीका, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, इटली और अफ्रीका के कितने ही देशों और निकट पूर्व में शान्ति के हजारों सैनिकों को जेलों में डाल दिया गया है ।

'कितने ही लोग, जो इस कांग्रेस के डेलीगेट चुने गये थे, कांग्रेस में शामिल नहीं हो सके ।

'शान्ति की रक्षा के लिये सभाओं पर पाबन्दी लगा दी है । पुलिस शान्ति के सैनिकों पर गोली चलाती है । उन्हें मारती पीटती है ।

'यहां तक कि वैज्ञानिक भी दमन से नहीं बच सके हैं ।

'द्वितीय विश्व शान्ति कांग्रेस शान्ति के उन सैनिकों का अभिनन्दन करती है जो पुलिस के आतंक का शिकार बनाये गये हैं, और उनके दमन के विरुद्ध अपना तीव्र विरोध प्रकट करती है ।

'कांग्रेस मांग करती है कि पुलिस आतंक के शिकार तमाम लोगों को मुक्त किया जाय ।

'कांग्रेस समूची दुनियां के लोगों का आवाहन करती है कि वह शान्ति के शुभ सैनिकों के प्रति अपनी एकजुटता को अभिव्यक्त करें, उन्हें मुक्त करायें, और उन तमाम लोगों की मदद तथा रक्षा करें जो विश्व शान्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं ।'

पर इस कान्फ्रेंस के पहले ही यानी जौलाय में ही पंडित नेहरू ने कोरिया के युद्ध के बारे में गम्भीरता से काफी दिन सोचने के बाद एक स्थायी कदम उठाया, उन्होंने स्वर्गीय जे० वी० स्तालिन प्रधानमन्त्री सोवियत रूस से पत्र-व्यवहार किया ।

पंडित नेहरू का पत्र

१३-७-५०

हमारे राजदूत ने मास्को में वैदेशिक वार्ता विभाग से जो बातें की हैं, उनमें उन्होंने बता दिया था कि कोरिया की लड़ाई के सम्बन्ध में भारत का क्या रुख है ।

भारत का उद्देश्य युद्ध का एक क्षेत्र तक ही सीमित रखना और सुरक्षा-परिषद् के वर्तमान गतिरोध को दूर करके उसके शान्तिपूर्ण हल को शीघ्र निकालने में सहायता देना है जिससे कि चीन की लोकशाही का प्रतिनिधि सुरक्षा-परिषद् में अपना स्थान ग्रहण कर सके, सोवियत संघ उसमें वापस आ सके और परिषद के भीतर अथवा उसके बाहर गैर सरकारी सम्पर्क के द्वारा सोवियत संघ, अमरीका और चीन दूसरे शान्तिप्रिय राज्यों की सहायता और सहयोग से लड़ाई बन्द करने और कोरिया की समस्या के आखिरी हल के लिए कोई आधार निकाल सके।

हमें पूर्ण विश्वास है कि आप शान्ति स्थापित रखने तथा उसके द्वारा संयुक्त-राष्ट्रसंघ की एक जूटता बनाये रखने का दृढ़ निश्चय रखते हैं, इसीलिए मैं आपके पास यह व्यक्तिगत अपील भेजने की हिम्मत करता हूँ कि आप इस सम्मिलित उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपना उच्च अधिकार और प्रभाव काम में लायें जिसके ऊपर मनुष्य मात्र की सुख समृद्धि निर्भर करती है।

आप मेरा गम्भीर आदर स्वीकार करें।

जे० वी० स्तालिन का उत्तर

भारत जनतन्त्र के प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू

मैं आपके शान्ति के लिए उठाये गये कदम का स्वागत करता हूँ। मैं आपके इस दृष्टिकोण से पूर्णतः सहमत हूँ कि कोरिया के प्रश्न का सुरक्षा परिषद के द्वारा शान्तिपूर्वक हल निकाला जाय, जिससे पांच बड़े देशों के प्रतिनिधि, जिनमें चीनी लोकशाही सरकार का प्रतिनिधि भी शामिल हो, उसमें भाग ले सकें। मेरा विश्वास है कि कोरिया के प्रश्न को जल्दी हल करने के लिए सुरक्षा परिषद में कोरिया के लोगों के प्रतिनिधियों का विचार सुनना ठीक होगा।

आदर के साथ
जे० वी० स्तालिन
(सोवियत संघ के प्रधानमन्त्री)
१५–७–१९५० ई०

पंडित नेहरू का उत्तर

ता० १६-७-१९५०

मै श्रीमान के तत्काल उत्साह वर्धक उत्तर के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मैं फौरन दूसरी संबन्धित सरकारों से सम्पर्क कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि मैं जल्दी ही श्रीमान् को दूसरा पत्र लिख सकूँगा।

आदर के साथ
जवाहरलाल नेहरू
(भारत के प्रधानमन्त्री)

दो मार्ग

दो मार्ग, एक शान्ति का दूसरा युद्ध का नामक शीर्षक से एक लेख २४ जौलाई १९५० के प्रावदा में प्रकाशित हुआ, जिसमें कहा गया है—

'जे० वी० स्तालिन का, पंडित नेहरू के सन्देश का जवाब अठारह जुलाई को प्रकाशित हुआ था। इस जवाब ने दुनियां के सभी देशों में बहुत बड़े पैमाने पर टीका टिप्पणी को जन्म दिया है। तमाम आजादी पसन्द लोगों ने, समूची प्रगतिशील मानव जाति ने सोवियत संघ की कभी इधर-उधर न होने वाली शान्ति की नीति के, सभी लोगों के हकों की रक्षा करने वाली नीति के, एक नये और बहुत साफ उदाहरण के रूप में, इस जवाब का स्वागत किया है।

अपने जवाब में जे० वी० स्तालिन ने लिखा है—'मैं शान्ति की दिशा के उठाये गये आपके कदम का स्वागत करता हूँ। मैं आपके दृष्टिकोण से, सुरक्षा-परिषद् के जरिये जिसमें पाँचों बड़ी शक्तियां मय चीनी जनता की लोकशाही के लाजिमी तौर से शामिल हों, कोरिया के सवाल को सम्भालने और साधने के बारे में जो आपने पेश किया है, पूरी तरह सहमत हूँ।

'पंडित नेहरू के शान्ति प्रस्ताव का समर्थन करते हुए जे० वी० स्तालिन ने उस युद्ध को समाप्त करने का एकमात्र सही रास्ता बताया है जिसे संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के शासकों ने कोरिया की जनता के सिर पर लाद दिया है। इतना ही नहीं, बल्कि यही वह रास्ता है जिसे अपनाकर संयुक्त राष्ट्र संघ

अपने निर्दिष्ट उद्दश्यों और कार्यों को पूरा कर सकता है ।

पंडित नेहरू को अपने जवाब में जे० वी० स्तालिन ने बताया है—'मेरा विश्वास है कि कोरिया के सवाल को जल्दी से जल्दी निपटाने के लिये सुरक्षा-परिषद मे कोरिया की जनता के प्रतिनिधि की बात सुनना लाजमी होगा ।' यह सभी जानते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में इस बात को मुख्य तौर से उभारकर रखा गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का लक्ष्य 'जातियों की समानता और आत्म निर्णय के सिद्धान्तों का मान रखने के आधार पर राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का विकास करना है ।

'जे० वी० स्तालिन के पं० नेहरू को दिये गये इस जवाब ने शान्ति के समर्थकों के लिये, साम्राज्यवादी जंगबाजों के विरुद्ध और सुरक्षा के लिये उनके संघर्ष में एक जूटता कायम करने की दिशा में, एक शक्तिशाली प्रेरणा श्रोत का काम किया है । संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के अनुसार, चार्टर की शर्तों और नियमों के अनुसार बनी और कानूनी कसौटी पर सही उतरने वाली सुरक्षा परिषद के द्वारा—ऐसी सुरक्षा परिषद के द्वारा जिसमें सोवियत संघ और चीनी जनता के जनतन्त्र के प्रतिनिधि सम्मिलित हों—कोरिया के प्रश्न को शान्ति-पूर्ण ढंग से निबटाने के पंडित नेहरू के प्रस्ताव ने अमरीका के शासकों की उन तमाम कोशिशों को एकदम बेकार कर दिया है जो कि वे कोरिया पर अपने जनघाती आक्रमण को संयुक्त राष्ट्रसंघ के झंडे के नीचे छिपाने के लिये कर रहे हैं ।

'अमरीकी दबाव में आकर, उसकी आज्ञा के अनुसार, सुरक्षा परिषद के एक दल द्वारा किये गये गैर कानूनी और तोड़े मरोड़े हुए फैसले किसी की आँखों में धूल नहीं झोंक सके । सारी दुनियाँ देख सकती है कि अमरीकी साम्राज्यवाद आक्रमण की कार्रवाही कर रहा है, शान्ति को पैरों तले रौंदकर दूसरे देशों के हथियाने के लिए युद्ध कर रहा है ।

'भारत के प्रधानमन्त्री के सन्देश और जे० वी० स्तालिन के उत्तर ने संयुक्त राष्ट्र अमरीका के शासक वर्ग में घबराहट पैदा कर दी है और उन्हें गड़बड़ा दिया है । पं० नेहरू के शान्ति प्रस्ताव का समर्थन करने या एक बार

फिर अपने जनघाती और आक्रमणकारी रूप का पर्दाफाश करने के सिवा और कोई चारा उनके सामने नहीं रह गया था।

'संयुक्त राष्ट्र अमरीका के शासक वर्ग के लिए यह काफी परेशान करनेवाली स्थिति थी। अमेरिका के पत्रों ने बिना कारण ही यह नहीं लिखा कि श्री अचेसन के सामने नाजुक मसला पेश है। वैदेशिक विभाग नेहरू के जवाब का मसौदा तैयार करने में लगा था। पत्रों में छपी सूचना के अनुसार नेहरू के जवाब के मसौदे को एक बार तैयार करने के पश्चात् दोबारा तैयार किया गया। अब वह जनता के सामने आ गया है। अमरीका ने भारत के प्रधान-मन्त्री के शान्ति प्रयास को ठुकराकर दिखा दिया है कि अमरीका का शासक-वर्ग कोरिया की जनता के विरुद्ध अपने घातक और आक्रमणात्मक युद्ध को जारी रखना चाहता है।

'सुरक्षा परिषद के द्वारा—उस सुरक्षा परिषद के द्वारा जिसकी रचना वैध, न्याय की कसौटी पर खरी उतरने वाली हो—कोरिया के प्रश्न को शान्ति-पूर्ण ढंग से तय करने के नेहरू के सुझाव का अचेसन द्वारा ठुकराया जाना इस बात का स्पष्ट सबूत है कि अमरीका नहीं चाहता कि सुरक्षा परिषद, संयुक्त-राष्ट्रसंघ के चार्टर के आधार पर, फिर से अपना काम करने लगे।

'अचेसन का उत्तर पत्रों में २० जुलाई को प्रकाशित हुआ था। संयोग की बात कि इसके साथ-साथ अमरीकी कांग्रेस के नाम ट्रूमैन का लम्बा सन्देश भी प्रकाशित हुआ। इस सन्देश की मूल बातों से पता चलता है कि अमरीका के वैदेशिक मन्त्री नेहरू के प्रस्ताव को पाँव तले रौंदने के अपने कृत्य को चिकने-चुपड़े शब्दों से ढकने के लिए बेकार इतनी दिमागी कसरत कर रहे हैं। ट्रूमैन ने अपने सन्देश में सब-कुछ साफ-साफ और भोंडे ढंग से खोलकर रख दिया है। इतना ही नहीं, प्रेसीडेंट ट्रूमैन के सन्देश से यह भी पता चलता है कि कोरिया में आक्रमण की कार्रवाई अमरीकी साम्राज्यवाद की एक बड़ी आक्रमणात्मक योजना का ही एक अंग मात्र है।

'ट्रूमैन ने फौजी तैयारियों के लिए दस खरब डालर की और माँग की है। पर यह सबको प्रतीत है कि अमरीका का कुल बजट ४२ खरब डालर का है।

ट्रूमैन ने यह भी माँग की है कि अमरीका की फौजों की मात्रा और संख्या बढ़ाने के मार्ग में जो वर्तमान रुकावटें हैं उन्हें हटा दिया जाय और आवश्यकता के अनुसार अधिक से अधिक नेशनल गार्ड और रिजर्व भर्ती करने की छूट दे दी जाय।

'प्रेसीडेंट के इस सन्देश से पता चलता है कि ट्रूमैन का इरादा दस खरब की वर्तमान माँग तक अपने को सीमित रखने का नहीं है।' उत्तरी अतलान्तक गुट के भागीदारों को हथियार बन्द करने के लिए अभी काफी खर्चे की आवश्यकता और होगी। ट्रूमैन ने पहले ही से चेतावनी दे दी है कि करों में नई बढ़ती, सामाजिक भलाई और शान्तिपूर्ण निर्माण के खर्च में कटौती की जायगी। दूसरे शब्दों में ये कि नई फौजी तैयारियों का भयानक बोझ श्रमजीवी जनता के सिर पर लदने वाला है। जहाँ तक वाल स्ट्रीट के मालिकों का सम्बन्ध है, नये मुनाफों की खुशी में वे अपनी हथेलियों को खुजला रहे हैं।

'अपने सन्देश में ट्रूमैन ने कहा है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ अमरीका की सरकार कोरिया में अपने आक्रमणात्मक युद्ध को जारी रखेगी। इतना ही नहीं, दूसरे एशियाई देशों में अपने आक्रमण की नीति को वह और आगे बढ़ायेगी। अपने सन्देश में ट्रूमैन ने ऐलान किया है कि वह फिलीपीन को सहायता देने वाली अमरीकी फौजों को और अधिक शक्तिशाली बनाने के आदेश जारी कर चुके हैं। साथ ही हिन्द चीन की सरकार और वहाँ पर स्थिति फ्रांस की हथियार बन्द फौजों को सैनिक सहायता भेजने में जल्दी करने के आदेश भी उन्होंने दे दिये हैं। उन्होंने अपने सन्देश में इस बात की पुष्टि की कि फारमूसा पर कब्जा करने के लिये वह सातवें अमरीकी बेड़े को वास्तव में आर्डर दे चुके हैं।

'ट्रूमैन ने जो कुछ कहा है उसका अर्थ स्पष्ट है। वह यह कि कोरिया में आक्रमणात्मक युद्ध जारी रखा जायेगा और फिलीपीन, हिन्दचीन और फारमूसा में आक्रमण की कार्रवाई को बढ़ाया जायेगा। अमरीकी साम्राज्यवाद का, निकट भविष्य में, यह सुदूरपूर्वी कार्यक्रम है।

'ट्रूमैन ने अपने सन्देश में हथियारबन्दी की दौड़ में नई सरगर्मी दिखाने का आवाहन किया है। इससे अमरीकी नीति का आक्रमणकारी रूप और भी

अधिक प्रकट होता जा रहा है। इससे उन कोशिशों का भी पता चलता है जो अमरीकी अर्थतन्त्र को संकट से बचाने के लिए हथियारबन्दी को और बाल-स्ट्रीट के मालिकों के बेहद और बेढंगे मुनाफों पर आंच न आने देने के लिए मेहनतकश वर्ग के जीवन स्तर के विरुद्ध आक्रमण को तेज करने के सिलसिले में की जा रही है। और जहाँ तक शेखी का सम्बन्ध है जो ट्रूमैन ने अपनी फौजी ताकत को लेकर बघारी है—प्रेसीडेन्ट का संदेश इस शेखी से भरा पड़ा है—उसका उद्देश्य अमरीका के आक्रमण की कार्रवाई की विफलता पर—उसके मुँह के खाने पर पर्दा डालना है।

'ट्रूमैन के सन्देश से यह स्पष्ट हो जाता है कि अमरीका के शासक वर्ग का इरादा अमरीका के हथियारों की बढ़ती तक ही अपने को सीमित रखने का नहीं है। ट्रूमैन ने यह खोलकर कह दिया है कि मारशलाई देशों पर, आक्रमणात्मक उत्तरी अतलांतक गुट के सभी भागीदारों पर, सख्ती के साथ दबाव डालना होगा ताकि वे हथियार बन्दी और युद्ध की तैयारियों में सक्रिय भाग ले सकें।

'पंडित नेहरू के शान्ति के सुझाव का अमरीका की सरकार द्वारा ठुकराया जाना, और भी अधिक बड़े पैमाने पर हथियार बन्दी को बढ़ाने का कार्यक्रम—ट्रूमैन के सन्देश में जिसकी रूपरेखा खोलकर रखी गई है—ये इस बात का ताजा उदाहरण हैं कि अमरीकी जंगबाज अपने आक्रमण की कार्रवाई को फैलाकर उसका क्षेत्र बढ़ाने का इरादा रखते हैं। इसलिये शान्ति के सैनिकों का अब ये काम है कि वे आक्रमण की कार्रवाई के विरुद्ध, पागलों की तरह टूट पड़ने और आगे बढ़ने वाले साम्राज्यवादी युद्धखोरों के जनघाती मंसूबों के विरुद्ध शान्ति के अपने संघर्ष को आगे बढ़ावें।'

(२४ जुलाई प्रावदा)

शान्ति आन्दोलन

विश्वशांति परिषद ने अपने प्रथम अधिवेशन में हस्ताक्षर आन्दोलन चलाया जिसमें अपील की थी—

'युद्ध के खतरे के कारणों के बारे में मतामत के बावजूद समूची दुनियां के लाखों लाख लोगों के हृदय में बसी आशाओं को पूरा करने के लिए—

'शांति को मजबूत बनाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का बचाव करने के लिए'—

'हम मांग करते हैं कि पाँच बड़े राष्ट्र—संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, चीनी जनता का जनतंत्र, ग्रेटब्रिटेन और फ्रांस शान्ति के समझौते पर हस्ताक्षर करें।

'शान्ति के समझौते पर हस्ताक्षर करने के उद्देश्य से मिलने से किसी भी बड़े राष्ट्र की सरकार द्वारा इनकार से हम उक्त सरकार की आक्रमणात्मक नीयत का प्रमाण मानेंगे।

'हम तमाम शान्ति प्रिय राष्ट्रों का आवाहन करते हैं कि वे इस मांग का समर्थन करें, शान्ति से समझौता करने की माँग का जो कि सभी देशों के लिए एक खुली माँग है।

'इस अपील के साथ हम अपने नाम जोड़ रहे है और हम नेक इरादे के समस्त पुरुष, और महिलाओं को, शान्ति को मजबूत बनाने के लिए प्रयत्नशील संघटनों को, इस पर हस्ताक्षर करने के लिए आवाहन करते हैं।"

हस्ताक्षर करने वालों में लगभग सभी देशों के प्रतिनिध मौजूद थे। भारत की ओर से डाक्टर मोहनलाल अटल ने इस अपील पर हस्ताक्षर किये थे।

और कोरिया के प्रश्न को हल करने के बारे में १३ देशों को बने डेपुटेशन ने संयुक्त राष्ट्र संघ से माँग की कि—

'कोरियाई सवाल का शांतिपूर्ण ढंग से हल प्राप्त करने के लिए विश्वशांति परिषद माँग करती है, इस सवाल से लगाव रखने वाले तमाम देशों की एक कान्फ्रेंस बुलाई जाय।

'हम सभी देशों के शान्ति प्रिय लोगों का अपनी ओर से आवाहन करते हैं कि वे अपनी सरकारों से उपर्युक्त कान्फ्रेंस तुरन्त आयोजन करने की मांग करें।

'विश्वशान्ति परिषद दृढ़ता के साथ इस दृष्टिकोण को मानती है कि कोरिया से विदेशी सैनिकों को तुरन्त हटा लिया जाय और ऐसा करके खुद कोरिया के लोगों को अपने घरेलू मामलों को सुलझाने का मौका दिया जाय।'

इस डेपुटेशन में भी भारत की ओर से डाक्टर अटल ही सम्मलित थे।

और इसके साथ ही साथ सोवियत संघ में शान्ति का विधान बनाया गया जिसमें कहा गया —

'सोवियत समाजवादी जनतन्त्र की संघ की सुप्रीम सोवियत सभी राष्ट्रों के बीच शान्ति एवं मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बढ़ाने वाली सोवियत संघ की शान्तिप्रिय नीति के उच्च सिद्धान्त के निर्देशन में इस बात को मान्यता देती है कि एक पीढ़ी ही के अन्दर दो विश्व महासमर की विपदाओं का अनुभव करने वाले लोगों का विवेक और न्याय बुद्धि इस चीज को समझने में सर्वथा असमर्थ है कि कुछ राज्यों के आक्रमण वर्ग अन्धाधुन्ध युद्ध का प्रचार कर रहे है और उन्हें कुछ भी दण्ड नहीं दिया जा रहा है। साथ ही वे द्वितीय विश्वशान्ति कांग्रेस की अपील के साथ अपनी एक जूटता घोषित करती है, जिसमें युद्ध के घातक प्रचार को रोकने और उसकी निन्दा करने के सम्बन्ध में समस्त प्रगतिशील मानव-जाति का इरादा प्रकट किया गया है।

(१) सोवियत समाजवादी जनतन्त्र की सुप्रीम सोवियत निम्नलिखित प्रस्ताव पास करती है—

(१) कि किसी भी शक्ल में युद्ध का प्रचार शांति को नुकसान पहुँचाता है, नये युद्ध का खतरा पैदा करता है, अतएव वह मानवता के खिलाफ संगीन जुर्म है।

(२) कि जो कोई भी युद्ध प्रचार के अपराधी होंगे, उन्हें अव्वल नम्बर का मुजरिम करार दिया जायेगा और उन पर मुकदमा चलाया जायेगा।"

इस प्रकार शान्ति का आन्दोलन तेजी से चलने लगा, पंडित नेहरू जिसका गम्भीरता से अध्ययन कर रहे थे।

ठीक इसी बीच अमेरिका ने चीनी जनतन्त्र को भी एक प्रस्ताव द्वारा आक्रमणकारी घोषित करा दिया। संयुक्त राष्ट्र संघ में इस प्रस्ताव पर वोट लेते समय भारत तटस्थ रहा।

जे. वी. स्तालिन ने इस सम्बन्ध में प्रावदा के संवाददाता से एक प्रश्न के उत्तर में कहा—'सच तो ये है कि संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व संगठनसे अधिक एक

अमरीकी संघठन बन गया है जो अमरीकी आक्रान्ताओं की जरूरतों को पूरा करने का काम करता है।"

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भी इस प्रस्ताव की आलोचना में कहा था—'संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारी आस्था आज भी है, मगर जो भी कुछ इस समय हो रहा है, वह विश्व को शान्ति की ओर ले जाने वाला नहीं है।"

सभी देशों की प्रगतिशील जनता ने इस बात का डटकर विरोध किया कि चीन आक्रमणकारी नहीं है, मगर संयुक्तराष्ट्र संघ ने किसी की आवाज न सुनी और अमेरिका का प्रस्ताव कि उत्तरी कोरिया के साथ-साथ चीन भी आक्रमणकारी है पास हो ही गया।

कोरिया में शान्ति स्थापना का द्वार खोलने के लिये श्री कृष्णमेनन ने संयुक्त राष्ट्र संघ में एक प्रस्ताव रखा, जो स्वीकार हो गया। पंडित नेहरू की पहल का ही यह सबूत था, हालांकि रूस ने भारतीय प्रस्ताव की आलोचना की और उसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, मगर श्री विशंस्की ने कहा—'मैं मानता हूँ कि भारतीय प्रतिनिधि श्री मेनन ने जो प्रस्ताव रखा है, वह शान्ति का द्वार खोल देने वाला है।'

हालांकि इस प्रस्ताव को सोवियत रूस ने स्वीकार नहीं किया था पर पूरे ढाई महीने बाद प्रस्ताव के संबन्ध में पंडित नेहरू ने पार्लियामेन्ट में राष्ट्रपति के भाषण पर हुई बहस के समय कहा—

"सुदूरपूर्व की समस्याओं पर विचार सँयुक्तराष्ट्र संघ के कार्यक्रम में सम्मलित है। राष्ट्रसंघ के अगले अधिवेशन में इन पर विचार होगा, अभी से यह नहीं कहा जा सकता, कि उस समय हमारा प्रतिनिधि क्या कहेगा, क्योंकि आगामी दो सप्ताह के अन्दर घटनेवाली घटनाओं पर ही सब कुछ निर्भर होगा। फिलहाल इतना ही कहा जा सकता है कि मोटे तौर पर वह उसी नीति का अनुसरण करेंगे जो नीति हमारी है। मैं संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव के सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ कहना चाहता हूँ। जब से कोरियाई युद्ध आरम्भ हुआ है, तब से इसकी समस्या के साथ भारत का गहरा सम्बन्ध रहा है। यह इसलिये नहीं कि हम दूसरों के मामले में हस्तक्षेप करना

चाहते हैं या किसी को धमकी देना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि समस्या को सुलझाने में सहायता करने की दृष्टि से अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा हमारी स्थिति अधिक अच्छी है। वहाँ संघर्ष-रत राष्ट्रों से हमारा सम्बन्ध मित्रतापूर्ण है। हमने कोरिया की विपत्ति ग्रस्त जनता के प्रति अपनी जिम्मेवारी महसूस की और यह प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि कोरिया का सर्वनाश और ध्वंस किसी भी मूल्य पर रोका जाना चाहिये।

'मै पिछला इतिहास नहीं दुहराना चाहता। हमने अनेक कदम उठाये जिनका फल तत्काल नहीं मिला, लेकिन बाद में जिन्हें सही मान लिया गया। सुदूरपूर्व की स्थिति के संबंध में सबसे पहले हमारा ध्यान जिस बात पर जाता है, वह है आजकी अस्वाभाविक स्थिति। जब तक महान् देश चीन से वार्ता नहीं की जाती, तब तक कोई प्रभावकारी-कार्य पूरा नहीं हो सकता। यही कारण है कि हमने प्रारम्भ में ही चीन को मान्यता प्रदान की और संयुक्त राष्ट्र संघ एवं उसके बाहर अन्य देशों से भी इस नीति को बिना इस बात का ध्यान दिए अपनाने का अनुरोध किया कि वह चीन की नीति पसन्द करते हैं या नहीं चीन सम्बन्धी तथ्य बिल्कुल साफ हैं और मैं समझता हूं कि उसे मान्यता न प्रदान करना बुनियादी रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र और उसकी भावनाओं का उलंघन करना है। कोई भी यह नहीं कह सकता कि संयुक्त राष्ट्र संघ से एक ही नीति का अनुसरण करने वाले राष्ट्रों के प्रतिनिधित्व की आशा की जाती है। दुर्भाग्यवश संयुक्त राष्ट्रसंघ में यह धारणा घर करती जा रही है। परिणामतः चीन ऐसे विशाल राष्ट्र से इस प्रकार का व्यवहार किया गया मानो उसका अस्तित्व ही नहीं है और चीन से दूर स्थित दीप को चीन का प्रतिनिधि मान लिया गया है। यह असाधारण बात है। मेरी समझ में यह तथ्य ही सुदूरपूर्व की समस्या का मूल है। वास्तविकताओं की उपेक्षा स्वाभाविक रूप में अस्वाभाविक नीति और कार्यक्रम की ओर ले जाती है। यही हो रहा है।

"कुछ मास पूर्व संयुक्तराष्ट्र संघ में कोरिया सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने से पूर्व हम लगातार चीन, युनाइटेड किंगडम, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा अन्य राष्ट्रों को कुछ परेशानी महसूस होती, क्योंकि इससे सहयोग की हमारी

आकांक्षाओं के मार्ग में ही कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जातीं । कभी-कभी हम एक राष्ट्र को दूसरे के दृष्टिकोण से भी अवगत करा देते । इसके फलस्वरूप हम काफी हद तक चीन की दृष्टि के अनुकूल प्रस्ताव बना सकने में सफल हुए । मैं यह नहीं कहता कि इसमें शतप्रतिशत चीन की दृष्टि का उल्लेख है, लेकिन निश्चय ही इस में उसके विचारों का प्रतिनिधित्व करने की कोशिश की गयी है इसकी मुख्य बात यह है कि बन्दियों की अदलाबदली के मामले पर जैनेवा कनवेंशन पर अमल करना चाहिये ।

'दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि यह प्रस्ताव केवल वन्दियों की ही अदला बदली के सम्बन्ध में था । जो यह जानना चाहते हैं कि युद्धबन्दी का उल्लेख इसमें क्यों नहीं हैं, वह विवाद के तथ्य को भूल जाते हैं । सब जानते हैं कि इससे पूर्व डेढ़ वर्ष से पानमुनजान में सन्धि वार्ता हो रही थी । बड़ी मुश्किल से बन्दियों की अदलाबदली को छोड़कर अन्य मामलों के सम्बन्ध में समझौता हो सका । स्पष्ट है कि विराम सन्धि का पहला लक्ष्य युद्ध विराम ही था । समझौते का प्रथम परिणाम भी यही रहा । इसलिए अब तक के अनिर्णीत प्रश्न को हमने लिया । यह भी उस समझौते के अधीन जिसके सम्बन्ध में करार हो चुका था, प्रस्ताव तैयार करने से पूर्व उन सिद्धान्तों पर जिन पर वह आधारित है, विस्तार से विचार कर लिया गया था । नवम्बर के प्रारम्भ में इन सिद्धान्तों की सूचना चीनी लोकगणतन्त्र को उसकी राय जानने के लिए दे दी गयी थी । याददाश्त के आधार पर मैं कह रहा हूं कि कुछ समय पूर्व हमें सूचित किया गया था कि उन पर सावधानी से विचार किया जा रहा है । मैं यह कह सकता हूं कि अनेक अवसरों पर हम विभिन्न राष्ट्रों द्वारा जिन में चीन भी शामिल है, धैर्य के साथ शांति स्थापना की चेष्टा करते रहने के लिए प्रोत्साहित किये गये । हमारा यह इरादा नहीं रहा कि जहाँ हमारी पूछ न हो, वहाँ भी हम जायँ । यह सत्य है कि चीन सरकार ने हमसे सहयोग करने का वादा नहीं किया, लेकिन यह भी झूठ नहीं है कि उसने हमसे ऐसा करने से इनकार भी नहीं किया । हमने यह महसूस किया कि किसी प्रकार की आपत्ति के बिना हम अपने प्रयास में आगे बढ़ सकते हैं । यह गलत निर्णय

हो सकता है लेकिन फिर भी हमने काफी प्रगति की। जिन सिद्धान्तों को हमने निर्धारित किया उनमें और प्रस्ताव में कोई बड़ा अन्तर न रहा, फिर भी सम्बन्धित देशों के पास हमने उसे भेजा। प्रस्ताव को पेश किये कुछ दिन बीत चुके हैं। सदन को याद होगा, पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इससे असहमति प्रकट की और तत्काल इसे अस्वीकार कर दिया। तब हमें यह ज्ञात न था कि रूस और चीन की प्रतिक्रिया क्या होगी। अन्त में उन्होंने हमें सूचना दी कि हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते। कुछ लोगों की राय में इस पर हमें प्रस्ताव वापिस ले लेना चाहिये था। यह सत्य है कि केवल किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने से कुछ हो नहीं जाता, यदि लक्ष्य समझौता करना न हो। हमने यह महसूस किया। लेकिन दूसरी ओर बहुत से विकल्प भी न थे।

'प्रत्येक बार राष्ट्रसंघ में हमारे द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाने से पूर्व बहुत से दूसरे लोगों का रुख आक्रमणात्मक रहा और निस्सन्देह उन्होंने स्थिती अधिक खराब कर दी होती। यदि ऐसा अवसर आता तो हम उनसे सहमति प्रकट न करते और हमारा मत उनके विरुद्ध होता। रूस या पूर्वी योरोप के किसी अन्य राष्ट्र द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव में तत्काल युद्ध विराम पर जोर दिया गया था। हमने युद्धविराम का स्वागत ही किया होता, लेकिन स्पष्ट था कि यह प्रस्ताव स्वीकार न होगा। अनेक राष्ट्रों ने यह महसूस किया कि पूरे एक वर्ष की बहस के बाद और युद्ध के दबाव के बावजूद बन्दियों-सम्बन्धी मामला तय न हुआ तो युद्ध-विराम के बाद भी यह तय न होगा। इसलिये उन्होंने वार्ता तब तक जारी रखने के कार्य को तरजीह दी जब तक सभी सम्बन्धित देशों के सन्तोष के अनुकूल अन्तिम रूप से निर्णय न हो जाय। जहाँ तक हमारे प्रस्ताव का सम्बन्ध था, वह कठिन कार्य था। इसका व्यापक रूप से समर्थन हुआ, लेकिन दुर्भाग्यवश कुछ प्रमुख सम्बन्धित देश इससे सहमत न हुए।"

जहाँ अन्य देश कोरिया के मसले के लिए अपनी अलग-अलग राय देते थे, वहीं पण्डित नेहरू अपनी एक बात पर जोर देते थे कि यदि कोरिया की समस्या हल करनी है तो चीन को संयुक्तराष्ट्र संघ में स्थान मिलना चाहिए। अपने २४

जनवरी १९५१ के भाषण में आलइण्डिया रेडियो पर आपने कहा—

'आज सबसे अधिक प्रबल समस्या सुदूर पूर्व में शाँति स्थापना की है। कई महीने से कोरिया में पैशाचिक युद्ध हो रहा है, जिसमें हजारों निर्दोष व्यक्ति कुरबान हो चुके हैं। मेरे विचार में यह सत्य है कि उत्तरी कोरिया की ओर से आक्रमण हुआ, लेकिन यह भी सत्य है कि सभी सम्बन्धित देशों में कोई भी पूर्णत: निर्दोष नहीं हैं। पिछले साल से या इससे भी अधिक समय से हम यह अनुरोध करते रहे हैं कि लैक सक्सैस की विश्व परिषद में चीनी गणतन्त्र को भी स्थान दिया जाना चाहिये, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और अब अधिकतर लोग यह महसूस करने हैं कि चीन से सम्बन्धित स्पष्टत: नजर आने वाला तथ्य यदि स्वीकार कर लिया जाता तो विश्व की स्थिती आज की स्थिति से भिन्न होती।'

पानमुन जौन वार्ता

युद्ध विराम वार्ता के सम्बन्ध में भारत की अपील पर १३ राष्ट्रों ने उस समय संयुक्तराष्ट्रीय फौजों से अपील की जब वह ३८ अक्षांस से नीचे दक्षिणी कोरिया से उत्तरी कोरिया की फौजों को पीछे हटा रहे थे कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनायें ३८ अक्षांस से आगे न बढ़ें, मगर संयुक्तराष्ट्र संघ की सेनाओं ने इस पर ध्यान न दिया और उसकी सैनाएँ ३८ अक्षांस को पार कर गयीं, और कहीं कहीं तो चीन की सीमा पर भी बम बारी हुई। तब मजबूरन चीन को भी युद्ध में सम्मलित होना पड़ा।

पण्डित जवारलाल नेहरू ने ७ दिसम्बर १९५० को लोकसभा में अपने एक भाषण में कहा था—

'लेकसक्सेस स्थित हमारे प्रतिनिध ने काफी ऐशियाई देशों के प्रतिनिधियों से परामर्श करने के बाद संयुक्तराष्ट्र संघ में यह प्रस्ताव रखा कि चीन की सरकार से विराम संधि करने के लिए राजी होने और यह आश्वासन देने को कहा जाय कि चीनी सेनायें ३८ अक्षांस पार न करेंगी।…हमारे प्रतिनिध श्री बी० एन० राव ने यह प्रस्ताव रखा और प्राय: सभी एशियाई देशों ने इसका समर्थन किया। मालूम नहीं कि चीन सरकार की प्रतिक्रिया क्या होगी लेकिन

हम अपने प्रतिनिध द्वारा उठाए गए कदम का स्वागत करते हैं ।"

पर भारत की बात चीन ने न मानी, शायद यह उसका बदला था, जब संयुक्तराष्ट्र संघ की फौजों ने भारत की बात नहीं मानी थी । पर सोवियत रूस के प्रतिनिध श्री जैकब मलिक ने २३ जून १९५१ को न्यूयार्क रेडियो पर युद्ध विराम के बारे में अपने एक भाषण में कहा—

"सोवियत जनता यह विश्वास करती है कि आज की सर्वाधिक जटिल समस्या, कोरियामें सशस्त्र संघर्ष की समस्या भी सुलझायी जा सकती है । सोवियत जनता का यह विश्वास है कि प्रथम चरण के रूप में युद्धबन्दी की वार्ता युद्ध रत राष्ट्रों के बीच प्रारम्भ होनी चाहिए ।"

श्री जैकब मलिक की घोषणा महत्व पूर्ण थी । इसके तुरन्त बाद ही मास्को स्थिति अमेरिकी राजदूत ने श्री ग्रामिको से भेंट की और श्री मलिक के भाषण का स्पष्टीकरण चाहा, तो उन्होंने बताया कि युद्ध विराम के लिए दोबातें अत्यन्त 'आवश्यक हैं । (१) युद्ध बन्दी और (२) केवल सैनिक प्रश्नों पर विचार ।

इस स्पष्टीकरण के बाद कोरिया में संयुक्तराष्ट्रीय सैनिकों के जनरल श्री रिजवे ने कम्युनिस्ट कमान से सम्बन्ध स्थापित किया और पानमुज जौन में विराम सन्धि की बातचीत के लिए तैयारी आरम्भ कर दी । काफी दिन तो यों ही आपस की चखचख में निकल गये । बड़ी मुश्किल से चौदह दिन बाद युद्ध-विराम संधि के लिए दो बातें तय हो पायीं (१) कोरिया में युद्ध बन्द करने की मूलशर्त के रूप में असैनिक क्षेत्र के लिए सैनिक सीमा की सेवा तय करना और (२) युद्ध बन्दी और विराम संधि की शर्तें पूरी करने के लिए व्यवस्था करना जिसमें इसका निरीक्षण करने वाली संस्था के संघटन, उसके अधिकार और कार्य का निर्देशन सम्मिलित होगा ।

केवल सैनिक हद बन्दी की रेखा निश्चित करने में चार महीने का लम्बा समय निकल गया, और इस प्रकार २७ नवम्बर १९५१ को यह समस्या हल हो सकी । दूसरी बात फिर उलझन में पड़ गयी । कितने ही राजनैतिक प्रश्न सामने आ गये, पर फिर भी किसी न किसी तरह तय हो गया कि सन्धि के लागू होने के तीन माह बाद आपसी बातचीत के द्वारा कोरिया से विदेशी सैनायें हटाने

और शांतिपूर्ण ढंग से कोरिया की समस्या के हल के हेतु उच्चस्तर पर राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किया जाय।

जब १६ अक्तूबर सन् १६५२ को संयुक्तराष्ट्र संघ की साधारण सभा की मीटिंग हुई तो उसमें कोरिया का प्रश्न भी सम्मिलित कर लिया गया, बहस में भाग लेने के लिए दक्षिणी कोरिया के प्रतिनिधियों को भी बुलाया गया। इस सभा के अध्यक्ष श्री प्रियर्सन थे। उन्होंने ५ दिसम्बर को एक तार द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के रुख की सूचना उत्तरी कोरिया के विदेश मन्त्री को भेजी।

उत्तरी कोरिया के विदेश मन्त्री ने श्री प्रियर्सन को अपने उत्तर में एक तार भेजा, जिसमें उन्होंने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी और बताया कि कोरिया का शान्तिपूर्ण हल कैसे हो सकता है। तार पूरा इस तरह है—

'५ दिसम्बर १६५२ का भेजा हुआ आपका तार हमें मिला, यह तार राष्ट्र संघ की प्लेनरी बैठक में इसी साल ३ दिसम्बर को स्वीकृत कोरिया के प्रश्न पर यानी कार्यक्रम की १६ वीं बात पर तथा कथित प्रस्ताव के सम्बन्ध में था।

'इस सम्बन्ध में कोरियाई जनता के जनतन्त्र की सरकार ने मुझे यह कहने का आदेश दिया है कि हम समझते हैं कि उपरोक्त प्रस्ताव के पीछे न सिर्फ वह कानूनी ताकत नहीं है, जो कोरियाई प्रश्न के हलसे सम्बन्धित प्रस्ताव के पीछे होनी चाहिये बल्कि कोरिया में अमेरिका के घृणित हमलावर युद्ध को तुरन्त रोकने तथा शान्ति पूर्ण उपायों से कोरिया के प्रश्न को हल करने में भी वह असमर्थ है। कोरिया की जनवादी सरकार यह भी समझती है कि यह एक अन्याय पूर्ण प्रस्ताव है जिसका उद्देश्य अमेरिका की नीचता पूर्ण साजिशों का समर्थन करना है, जो कोरिया में दुष्टतापूर्ण हमलावर युद्ध को जारी रखने और फैलाने की योजना बना रहा है।

'कोरियाई जनता के जनतन्त्रकी सरकार समझती है कि यह 'प्रस्ताव' कोरियाई जनता की तथा विश्व की तमाम जनता की फौरी मांगों और शांतिप्रिय इच्छा अभिलाषाओं से जरा भी मेल नहीं खाता।

'इसी वर्ष १७ अक्तूबर को कोरियाई जनता के जनतन्त्र की सरकार के आदेश पर मैंने मांग की थी कि राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली के अधिवेशन में

जब कोरियाई प्रश्न पर बहस हो, तब कोरियाई जनता के जनतन्त्र के सरकारी प्रतिनिध भी उसमें भाग लें। मैंने घोषित कर दिया था कि हमारे प्रतिनिधियों की अनुपस्थिती में यदि कोई बहस हुई और प्रस्ताव पास हुये, तो कोरियाई जनता के जनतन्त्र की सरकार और समूची जनता उन्हें गैर कानूनी समझेगी। जिस भी राज्य और उसकी जनता का भाग्य अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में निपटाया जा रहा हो उस राज्य और उसकी जनता के सरकारी प्रतिनिधियों को अपने विचार व्यक्त करने का मौका देना न सिर्फ समस्या के न्यायपूर्ण हल के लिए एक जरूरी शर्त है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं के जनवादी और स्वतन्त्र रूप में काम कर सकने की भी जरूरी शर्त और सभ्य समाज का एक मोटा सिद्धान्त है। लेकिन इस सबसे आंखें मूँदकर राष्ट्र संघ के अधिकाँश सदस्यों ने अमेरिकी शासक वर्ग के इशारे पर कोरियाई जनता की केन्द्रीय सरकार की न्यायपूर्ण प्रार्थना को ठुकरा दिया, उन्होंने कोरियाई प्रश्न पर बहस में कोरियाई जनता के अधिकारी प्रतिनिधियों को भाग ले सकने से वंचित रखा और लीसिङंगमन (सिगमनरी गुट के प्रतिनिधियों) को, जिनको कोई कानूनी हक हासिल नहीं और जिसे समूची कोरियाई जनता घृणा की दृष्टि से देखती है—बहस में भाग लेने दिया।

'इसका क्या कारण हो सकता है कि अमेरिका के इशारे पर नाचने वाले राष्ट्रसंघ के अधिकांश सदस्यों ने जनरल असेम्बली के अधिवेशन में कोरियाई जनता के जनतन्त्र को भाग लेने की आज्ञा नहीं दी, हालांकि कोरियाई प्रश्न के न्यायपूर्ण हल के लिये जरूरी था कि दोनों पक्षों के प्रतिनिधि भाग लें। इसका पहला कारण तो यह है कि राष्ट्रसंघ का 'बहुमत' नहीं चाहता कि कोरियाई प्रश्न का न्यायपूर्ण हल हो। दूसरा कारण यह है कि इस दल को डर है कि कोरियाई जनता के जनतन्त्र के प्रतिनिधि उन सभी अत्याचारों का पर्दाफाश कर देंगे जो अमेरीकियों ने कोरिया में राष्ट्रसंघ के झंडे के नीचे किये हैं। इन बातों को देखते हुए राष्ट्रसंघ के पर्दे के पीछे अमरीकी डालरों की मदद से तैयार किए गये, कोरियाई प्रश्न पर इस 'प्रस्ताव के मसौदे' के पीछे, न केवल यह कि कोई कानूनी ताकत नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी धूर्तता से भरा दस्तावेज है, जिसकी कोई मिसाल नहीं है। इसलिए दुनियाँ भर के तमाम ईमानदार लोगों

की आंखों में धूल झोंकने तथा दुनियां के जनमत को धोखा देने की गरज से अमेरिका के इशारे पर गढ़े गये, इस गैर कानूनी 'प्रस्ताव के मसौदे' का मैं विरोध करता हूँ। आपने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है उसे हमारी सरकार नहीं मान सकती—और उसी तरह युद्धबन्दियों की वापिसी के प्रश्न पर प्रस्ताव को भी वह स्वीकार नहीं कर सकती। १२ अगस्त १९४९ के जैनेवा समझौते के एकदम स्पष्ट सिद्धान्तों के मौजूद होते हुए भी आपने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है, वह अमेरीकियों के तथाकथित 'अपने आप स्वेच्छा से वापिसी' के सिद्धान्त पर आधारित है, और अमेरिका उस पर अड़ा हुआ है।

'सारी दुनियां जानती है उसकी इस बे मिसाल मांग का वास्तविक अर्थ है—हमारे पक्ष के वीरों पर अत्याचार करना और उनके मनोबल को तोड़ना। इस मांग का वास्तविक अर्थ है—जबरन 'जांच पड़ताल' और 'पूछ-ताछ' करना। उसके साथ ही पाशविक दबाव डाला जाता है, यहां तक कि निहत्थे लोगों के हत्याकांड रचाये जाते हैं। इस अमानुषिक सिद्धान्त का एकमात्र उद्देश्य है—कोरियाई और चीनी युद्धबन्दियों की एक बहुत बड़ी संख्या को किसी न किसी मूल्य पर रोक रखना। इस तरह का सिद्धान्त तो अमरीका और उसकी कठपुतलियों के हमलावर उद्देश्यों और इच्छाओं के अनुकूल ही हैं। वह कोरियाई युद्ध का अन्त शान्तिपूर्ण उपायों से नहीं, बल्कि युद्ध के द्वारा करना चाहते हैं। कोरियाई जनता को अमरीका की कोई भी धोखा-धड़ी, कोई भी फौजी धमकी डरा नहीं सकती, घुटने नहीं टिका सकती। कोरियाई जनता जानती है कि वह अपने देश की आजादी और स्वाधीनता के लिए लड़ रही है। यह बात अमेरिका के दुस्साहसिकों को बहुत पहले ही मालूम हो जानी चाहिये थी। अगर राष्ट्रसंघ, जैसा कि आपके तार में बताया गया है कोरिया में शीघ्र से शीघ्र युद्ध बन्द करने के लिए वास्तव में प्रत्येक कोशिश करने को तैयार है तो उसे ढोंग का मार्ग त्याग देना चाहिये। उसे कोरियाई प्रश्न को सचमुच न्यायपूर्ण ढंग से हल करना चाहिये और इसके लिए, सबसे पहले और सबसे अधिक, यह करना चाहिए कि वह कोरिया में तुरन्त युद्ध बन्द करे।

'ऊपर कही गई बातों के आधार पर मैं चाहूँगा कि आप जनरल असेम्बली

के अध्यक्ष की हैसियत से आवश्यक कदम उठायें। ताकि—

(१) कोरिया में युद्ध को जारी रखने तथा फैलाने की इच्छा से चलाई जाने वाली अमरीका की आक्रमणात्मक नीति पर पर्दा डालने के उद्देश्य से जनरल असेम्बली ने जो उपरोक्त तथाकथित प्रस्ताव गैर कानूनी ढंग से पास किया है, उसे रद्द किया जाय।

(२) इसी वर्ष १० और २४ नवम्बर को सोवियत संघ द्वारा पेश किये गए प्रस्ताव के आधार पर, जिसे समस्त दुनियां की शान्ति प्रेमी जनता का उत्साहपूर्ण समर्थन और स्वीकृति प्राप्त है, कोरिया के युद्ध को तुरन्त बन्द कर देने के लिए और कोरियाई प्रश्न के शान्ति पूर्ण हल के लिए उपायों पर विचार किया जाय और कदम उठाये जायें।

(३) कोरियाई जनता के जनतन्त्र के प्रतिनिधियों को, जो कोरियाई जनता के सच्चे प्रतिनिधि हैं, राष्ट्रसंघ के संगठनों में कोरियाई प्रश्न पर बहस में भाग लेने का हक दिया जाय।

(४) पानमुनजौन के सन्धि वार्तालाप को भंग करने वालों को कठघरे में खड़ा किया जाय, अर्थात् अमरीकी पक्ष के प्रतिनिधियों को कठघरे में खड़ा किया जाय, जिन्होंने कोरियाई सन्धि वार्ता के अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित होने की घोषणा एकतरफा ढंग से करदी—उस सन्धि वार्ता को स्थगित करने की घोषणा कर दी, जिसमें केवल युद्धबन्दियों के प्रश्न को छोड़कर सभी बुनियादी प्रश्न हल कर लिए गए थे।

(५) राष्ट्रसंघ के झंडे के नीचे अमरीकी आक्रमणकारियों द्वारा उत्तरी कोरिया के नगरों और गांवों की शान्तिपूर्ण जनता पर होने वाली पाशविक बमबारी बन्द की जाय।

(६) हमारे पक्ष के युद्धबन्दियों को जबरन रोक रखने के उद्देश्य से उन पर ढाये जाने वाले जुल्मों को फौरन बन्द किया जाय। हमारे पक्ष के युद्ध-बन्दियों के साथ अमानुषिक वर्ताव तुरन्त बन्द किया जाय। दक्षिणी कोरिया में युद्ध बन्दियों के खेमों में रचाये जाने वाले हत्याकांडों और बर्बर आतंक को तुरत बन्द किया जाय।

(७) अन्तर्राष्ट्रीय कानून के मापदण्डों और मानव चेतना के आधार पर अमरीकी युद्ध अपराधियों को कड़ी सजा दी जाय, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय कानून और मानवीय भावनाओं के मापदण्डों को बेरहमी से रौंदते हुए गैर कानूनी किस्म के हथियारों, कीटाणु युद्ध और रसायनिक हथियारों का प्रयोग करने-वाले, तथा उत्तरी कोरिया की शान्तिपूर्ण जनता को नष्ट-भ्रष्ट करने की इच्छा से कत्लेआम के दूसरे तरीके अपनाने वाले अमरीकी युद्ध-अपराधी अपनी दुष्टता-पूर्ण कार्रवाइयों को न दुहरायें।

'यदि राष्ट्रसंघ के 'बहुमत' ने तमाम कोरिया की तथा समूची शान्तिपूर्ण जनता की आशाओं को व्यक्त करने वाले, इन न्यायपूर्ण सुझावों को ठुकरा दिया, तो कोरिया में युद्ध को जारी रखने की पूरी जिम्मेदारी राष्ट्रसंघ के उन देशों पर होगी जो प्रकट या अप्रकट रूप से कोरिया में अमरीका की हमलावर नीति का समर्थन कर रहे हैं।

'मैं आपसे यह भी कह दूँ कि आप राष्ट्र संघ के सभी सदस्य देशों के समक्ष मेरे इस बयान को वितरित कर दें।

'अध्यक्ष महोदय, अपने प्रति मेरी गहरी सम्मान भावना को स्वीकार कीजिये।'

पानमुनजौन में चलने वाली वार्ता १९५३ के अप्रैल में सफल होती हुई दिखाई दी। बीमार और घायल बन्दियों की अदला-बदली के समझौते पर दोनों पक्षों ने ११ अप्रैल १९५३ को हस्ताक्षर कर दिए और इससे आशा होने लगी कि जल्दी ही दूसरे प्रश्न भी सुलझ जायेंगे और शान्ति से कोरिया की समस्या हल हो जाएगी। परन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से इस सन्धिवार्ता में भाग लेने वाले प्रमुख अधिकारी लेफ्टिनेण्ट जनरल हैरीमन ने यह प्रस्ताव रखा कि विराम-सन्धि समझौते के अन्तरगत अपने देश में लौटने से इनकार करने वाले बन्दियों के निष्पक्ष संरक्षक के रूपमें पाकिस्तान नियुक्त किया जाय। पर दूसरी ओर के प्रतिनिधियों ने निष्पक्ष संरक्षक को न तो स्वीकार ही किया और न अस्वीकार ही किया और फलस्वरूप वार्ता अगले दिन के लिए स्थगित हो गई। इसके वाद कुछ ऐसा दिखाई देने लगा कि रूस और चीन भारत की ओर आकर्षित हो

गए हैं, मगर अमेरिका कुछ रूठ सा गया है।

जनरल हैरीसन के प्रस्ताव के मुकाबिले एक दूसरा प्रस्ताव नामइल ने रखा। इसकी प्रतिक्रिया भी कम दिलचस्प न थी। यह प्रस्ताव अष्टसूत्री प्रस्ताव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रेसट्रस्ट आफ इण्डिया के सम्वाद दाता के समाचार में कहा गया—'अष्ट सूत्रीय कम्युनिस्ट प्रस्ताव के अध्ययन की तत्काल यहाँ पर प्रतिक्रिया हुई कि वह संयुक्तराष्ट्र संघ की साधारण सभा द्वारा ३ दिसम्बर १९५२ को स्वीकृत भारतीय प्रस्ताव के सदृश्य ही है। इस प्रस्ताव के कई भाग वास्तव में भारतीय प्रस्ताव से लिये गये हैं।' और इस तरह से वार्ता चलती रही और ८ जून १९५३ को बंदियों की अदला-बदली के लिये तटस्थ राष्ट्र वापसी आयोग की नियुक्त के सम्बन्ध में समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार भारत को जो दायत्व सौंपा गया, इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भारत पर दोनों ओर के राष्ट्रों को पूर्ण विश्वास हो गया था।

इस स्वीकृत प्रस्ताव में भारत, स्वीडन, स्वीटजरलैण्ड, पौलेण्ड और चेकोस्लोवाकिया का एक-एक प्रतिनिध आयोग में रहेगा। यह भी निश्चय किया गया कि शांति को बनाये रखने के लिये केवल भारत ही अपनी सैना रख सकेगा और कमेटी का अध्यक्ष भी भारत ही होगा।

२७ जुलाई को संयुक्तराष्ट्र संघ की ओर से जनरल विलियम हेरीसन और साम्यवादी देशों की ओर से जेनरल नामइल ने इस विश्व प्रसिद्ध समझौते पर नौ बजकर पैंतीस मिनट पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते में यह निश्चित किया गया कि कोरिया की समस्या को अंतिम रूप से हल करने के लिये सम्बधित देशों का राजनैतिक सम्मेलन बुलाया जाय। जब यह सोचने का समय आया कि सम्बधित देशों में किन-किन देशों को बुलाया जाय, तब भारत पुनः एकवार सामने आया। रूस और चीन की सरकार ने अपनी पूरी कोशिश की कि भारत को भी सम्मलित किया जाय, तब अमेरिका ने इसका डटकर विरोध किया। सबसे पहले संयुक्तराष्ट्र संघ में अमेरिका के प्रतिनिध श्री हेनेरी केवट लाज ने राजनैतिक सम्मेलन में भारत और रूस के सम्मलित करने का विरोध किया। अमेरिका के इस तरह के रुख की आलोचना अमेरीका परस्त अखबारों

तक ने की। जहाँ एक ओर अमेरीका भारत का विरोध कर रहा था, रूस भारत के पक्ष में प्रस्ताव उपस्थित कर रहा था। श्री विशस्की ने अपने प्रस्ताव मेंकहा कि—'कोरियाई सम्मेलन में अमेरीका, ब्रिटेन, फ्रान्स, सोवियत रूस, चीन, भारत, पोलैण्ड, स्वीडन, वर्मा, दक्षिणी और उत्तरी कोरिया भाग लें।' मगर अमेरिका के प्रस्ताव में जिसके भीतर भारत का रहने का विरोध किया गया है, जब पाकिस्तान ने समर्थन किया, तो पड़ौसी देश के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर भारत ने स्वयं उससे हट जाना चाहा।

पर कोरियाई राजनीतिक सम्मेलन के सम्बन्ध में राष्ट्र संघ में कोई निर्णय नहीं हो सका।

युद्धबन्दी

२७ जुलाई १९५३ के समझौते के अनुसार भारत ने कोरिया में अपनी सैना भेजने का उत्तर दायत्व वहन करना स्वीकार कर लिया और पाँच अगस्त को अपना पहला फौजी दस्ता कोरिया भेज दिया। कोरिया में भारतीय फौज ने जो निष्पक्षता से समझौते का पालन किया इतिहास में ऐसा उदाहरण खोजने पर भी नहीं मिलेगा। लगभग सभी देशों ने माना कि तटस्थ राष्ट्र वापिसी आयोग और संरक्षक सैना—दोनों के भारतीय अफसरों और सैनिकों ने निष्पक्षता के साथ अपना कर्तव्य पूर्ण किया। अमेरिका के हथकंडों की कलई खोल दी, जिससे भारतीय सैना के विरुद्ध दक्षिणी कोरिया ने बल प्रयोग तक की धमकी दे डाली। समझौते की शर्तों तक को दक्षिणी कोरिया ने तोड़ दिया, और हजारों उत्तरी कोरिया तथा चीन के सैनिकों को जबरन कैम्पों से छोड़कर ताइवान भेज दिया। जहाँ च्यांगकाई शेक की सरकार है। मगर भारत अन्तिम समय तक न्याय पर डटा रहा, वह दक्षिणी कोरिया की धमकी से डर कर अपने कर्तव्य से अलग न हुआ।

२४ सितम्बर १९५४ तक भारतीय फौज ने समस्त युद्ध बंदियों को अपनी देख-रेख में ले लिया। हिन्द नगर (आयोग का दफ्तर) और नई दिल्ली के बीच बेतार के तार का सम्बन्ध जोड़ लिया गया।

तटस्थ राष्ट्र वापसी आयोग ने बड़ी शीघ्रता से अपने कार्य करने के कुछ नियम बना लिये और युद्ध बंदियों के नाम एक सँदेश में एलान कर दिया कि वह निर्भय होकर अपने देश वापिस जाने न जाने की बात आयोग से कह सकते हैं। उन्हें यह भी बता दिया गया कि २६ दिसम्बर को बंदियों के देशों के प्रतिनिध उन्हें उनके अधिकारों के बारे में समझा देंगे। और जो बन्दी ६० दिन तक अपने निर्णय के बारे में नहीं बतायेंगे वे उसके बाद ३० दिन और संरक्षित सैना के अण्डर में रहेंगे, और इस बीच राजनैतिक सम्मेलन जो भी फैसला करेगा, वह मान लिया जायेगा।

पहले ही दिन एक अघटित घटना घट गयी—

"जिस दिन बन्दियों को समझाने का काम आरम्भ होने वाला था, उसके एक दिन पहले ही संरक्षक सेना के अफसरों और जवानों के धैर्य तथा चतुरता की परीक्षा का समय आ गया। चीनी युद्ध बन्दी मेजर एम० एस० ग्रेवाल को जबरन घसीट कर अपने अहाते में ले गये और कहने लगे जब तक वापस भेजे गये उनके साथियों को वापस न बुलाया जायेगा तब तक मेजर ग्रेवाल न छोड़े जायेंगे। जब बन्दी मेजर ग्रेवाल को घसीट कर ले जा रहे थे, उस समय लांस नायक ठाकुरसिंह उनकी सहायता के लिये अपनी जान को खतरे में डाल कर दौड़े हुये शिविर में गये। कुछ बन्दियों ने मेजर ग्रेवाल को भीतर ही रोक लिया था और शेष बड़ी धमकी भरे और हिंसात्मक ढंग से बाहर प्रदर्शन कर रहे थे। संरक्षक सैना के सैना पति मेजर जनरल थौराट ने इस समय बड़ी चतुराई से काम लिया, स्थिती पर काबू पाकर मेजर ग्रेवाल को बन्दियों के बीच से निकाला गया।" (हिन्दुस्तान)

बड़ी कोशिश दक्षिणी कोरिया की ओर से की गयी किसी प्रकार बड़े पैमाने पर बंदियों द्वारा उपद्रव करा दिये जायँ। बंदियों से सम्बन्ध बनाने के लिये दक्षिणी कोरिया ने उनके पास वायरलैस तक भेज दिये। हथियारों की तो गिनती ही न थी। मगर भारतीय फौज के आगे उसकी एक भी न चली। दंगे कराने में तो दक्षिणी कोरिया सफल हो गया, मगर दंगों के द्वारा दक्षिणी कोरिया जो नतीजा निकालना चाहता था, वैसा नतीजा भारतीय फौजों ने न

निकलने दिया और न उतने बड़े पैमाने पर उपद्रव ही होने दिये जितने बड़े पैमाने के उपद्रव की दक्षिणी कोरिया ने तैयारी की थी।

इस प्रकार भारत ने कोरिया के सम्बन्ध में जो नीति ग्रहण की उससे दुनियां को पता चल गया कि भारत की नीति, पंडित नेहरू की नीति शान्ति और विश्व के अन्य राष्ट्रों से भाई चारे की नीति है।

चतुर्थ अध्याय

चीन और भारत की मित्रता
शान्ति का नया दौर

पहली बात

चीन और भारत विश्व में दो ऐसे देश हैं, जिन्होंने कभी भी आपस में युद्ध नहीं किया, और सदैव एक-दूसरे के मित्र बने रहे। यदि हम मौर्य-काल के इतिहास के पन्ने पलटें तो हमें वहाँ पढ़ने को मिलता है कि उस समय चीन और भारत में गहरी मित्रता थी, चीन का राजदूत हमारे देश में रहता था। कई चीनी विद्वानों ने अशोक समय के भारत की बड़ी प्रशंसा लिखी है।

धर्म के अनुसार भी आज का चीनी धर्म, बौद्ध धर्म हमारे देश की ही देन है। अशोक काल में ही हमारे देश से बौद्ध धर्मावलम्बी चीन, जापान सुमित्रा की यात्रा को गये थे, और उन्होंने पूरी स्वतन्त्रता के साथ अपने धर्म का प्रचार वहाँ किया था, जिसका उदाहरण वहाँ आज भी बौद्ध धर्मावलम्बियों की असंख्य संख्या है, जबकि भारत में बौद्ध धर्म के अवशेष नाम मात्र को शेष रह गये हैं।

पौराणिक भारत से लेकर परतंत्र भारत तक चीन और भारत में गहरी मित्रता बनी रही। पंडित नेहरू परतन्त्र भारत में भी चीन गये थे। च्यांगकाई शेक पंडित नेहरू का गहरा मित्र था, मगर इसका अर्थ पंडित नेहरू और च्यांगकाई शेक की मित्रता नहीं, वरन् भारत और चीन की गहरी मित्रता थी, क्योंकि च्यांग के पतन के पश्चात् चीन की नयी समाजवादी सरकार से यदि किसी देश का सबसे पहले दौत्य सम्बन्ध हुआ तो वह भारत ही है। पंडित नेहरू की मित्रता चीनी जनता से थी, न कि वहाँ के व्यक्ति विशेष च्यांगकाई से। बल्कि पंडित नेहरू ने कई बार च्यांगकाई शेक की खुले शब्दों में भर्तसना की है, और फारमोसा के प्रश्न पर अमरीकी दखलन्दाजी को बुरा बताया है।

जब चीन में नये परिवर्तन हो रहे थे, तो हमारे देश के नेता उन्हें बड़े ध्यान के साथ देख रहे थे। और ज्योंही चीन में जनवादी सरकार की स्थापना हुई, हमारे देश से सम्मानित व्यक्ति चीन जाने लगे। चीन सरकार ने बहुत सों को निमन्त्रण भी दिया।

इस सबका एक कारण है, और उसके लिये हमें वर्तमान या पुरातन काल की सभ्यता और संस्कृति को देखना पड़ेगा।

चीन और भारत को यदि एशिया से अलग कर दिया जाय तो शेष एशिया में बच ही क्या रहता है। दोनों देशों की आबादी में यदि रूस की आबादी और जोड़ दी जाय तो इन तीनों देशों की आबादी सारी दुनियां की आबादी की आधी आबादी हो जाती है। इसी तरह से हमारे देश और चीन का दर्शन लगभग मिलता-जुलता है, सांस्कृतिक सम्बन्धों में भी विशेष भेद नहीं हैं। यदि हम चीनी नामों में बिना हेर-फेर के केवल कुछ मात्राएँ बदलें तो पूर्ण रूपेण वहाँ के निवासियों के नाम भारतीय नाम बन जाते हैं, इस तरह हमें सोचना पड़ता है कि चीन और भारत में अन्तर कुछ भी नहीं है, और जो है वह नाम मात्र का है।

भौगोलिक दृष्टि से भी हिन्दुस्तान की उत्तरी पूर्वी सीमा चीन की सीमा से मिली हुई है, अर्थात् तिव्वत चीन का प्रदेश है, और लगभग तिव्वत की सारी दक्षिणी सीमा भारत की सीमा से मिली हुई है। इस पुरानी मित्रता को बनाये रखने के लिये दोनों देशों की जनता ने एक-दूसरे की ओर एक ही साथ हाथ बढ़ाया और फिर दोनों आजाद और स्वतन्त्र देश आपस में गले मिले। शिकवा शिकायत की तो कोई बात ही नहीं थी। कुछ सर फिरों ने तिव्वत के नाम पर पंडित नेहरू का मित्रता पूर्ण रुख चीन की ओर से फेरना चाहा, मगर पंडित नेहरू ने उन सबको धता बतायी, उन्होंने खुले शब्दों में कहा तिव्वत चीन का अंग है और रहेगा, हमें इसके बारे में कुछ नहीं कहना चाहिये।

झगड़ा यों खड़ा हुआ—

तिव्बत सदियों से चीन का अंग रहा है, १५७५ और १९१८ के बीच कितनी ही बार इस बात को दुहराया गया कि तिव्बत चीन का अंग है, मगर ब्रिटेन ने तिब्बत के दलाईलामा को पट्टी पढ़ाई कि वह अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दे। केवल स्वशासन का जहाँ तक प्रश्न था, चीन ही उन्हें स्वशासन दे सकता था, मगर साम्राज्यवादियों ने दलाईलामा की आड़ में तिब्बत के भीतर रहकर चीन के विरुद्ध नाकेबन्दी आरम्भ कर दी और विश्व भर के पैमाने पर

प्रचार किया गया कि तिब्बत सदैव स्वतन्त्र रहा है, उस पर चीन का कोई आधिपत्य नहीं । दलाईलामा ने भी इस सम्बन्ध में घोषणा कर दी । नतीजा हुआ कि चीन ने अपनी मुक्ति फौजें तिब्बत में भेज दीं । यह एक पुलिस कार्रवाई जैसी चीज थी । जहाँ बिना खून बहाये मुक्ति सेना ने तिब्बत को वास्तव में मुक्त कराया उन तत्त्वों से जो तिब्बत निवासियों की रोजना की जिन्दगी को बरबाद किये दे रहे थे, जो चीन के विरुद्ध तिब्बत के सीधे-सादे निवासियों को भड़का रहे थे । १९०६ में ब्रिटेन और चीन के बीच एक समझौता हुआ था उसमें भी ब्रिटेन ने तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की थी और इतिहास इस बात का साक्षी है कि लार्ड कर्जन के समय तक ब्रिटेन ने तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की थी। सीमा के बारे में भी १८९० में एक समझौता हुआ था उसमें भी तिब्बत पर चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार की थी । सन् १९१४ के महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन ने एक बार फिर तिब्बत पर कब्जा की चेष्टा की थी, मगर उसे मुँह की खानी पड़ी । तिब्बत और ब्रिटेन ने उस समय जो सन्धि की थी, उसके विरुद्ध भी चीन ने तिब्बत में अपनी सेनाएँ भेजी थीं, पर भीतरी गड़बड़ के कारण उन्हें सफलता नहीं मिल सकी थी ।

कुछ सिर फिरे भारतीयों ने जब इसका समर्थन किया कि तिब्बत में चीन अत्याचार कर रहा है तो पंडित नेहरू ने खुले शब्दों में घोषणा की—'तिब्बत का मामला बहुत साधारण है, जब चीनी लोक गणतन्त्र की सरकार ने तिब्बत की मुक्ति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये थे, तभी से भारत की ओर से चीन स्थिति उसके राजदूत ने चीन सरकार को भारत की सम्मति से अवगत करा दिया था । और हमने ये हार्दिक इच्छा जाहिर की थी कि चीन और तिब्बत शांति पूर्वक समस्या हल कर लेंगे हमने यह भी स्पष्ट कह दिया कि तिब्बत के बारे में हमारी कोई क्षेत्रीय या राजनैतिक अभिलाषा नहीं है । उससे हमारा व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध है । हमने चीन को बताया कि इन सम्बन्धों को कायम रखने की हमारी इच्छा स्वाभाविक है; क्योंकि इससे न तो चीन के मार्ग में कोई अड़चन पड़ती है, न तिब्बत के । हमने उससे अपनी ये इच्छा भी नहीं छिपायी कि तिब्बत का स्वायत्त-शासन का अधिकार जिसका उप-

भोग वह कम-से-कम पिछले चालीस वर्षों से कर रहा है, हम चाहते हैं वह कायम रहे। हमने ये सभी बातें मैत्री भाव से कहीं। सदैव अपने उत्तर में चीन सरकार ने यही कहा कि हम शान्ति पूर्वक ढंग से समस्या का हल करेंगे, पर उसने यह भी नहीं छिपाया कि प्रत्येक दशा में चीनी सैना का 'मुक्ति-अभियान' शुरू होगा।"

जब उन सिर फिरे भारतीयों को इसमें भी सफलता न मिली तो उन्होंने भारतीय सीमा को अपने प्रचार का लक्ष्य बनाया, उन्होंने कोशिश की कि किसी प्रकार चीन के विरुद्ध भारत सरकार हो जाय, मगर इसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली। २५ मार्च १९५४ को लोक सभा में पंडित नेहरू ने इस स्थिती को भी स्पष्ट कर दिया—

"शायद कल हमारे मित्रों ने हमारी सीमा का जिकर किया था, खास कर उस सीमा का जो तिब्बत की ओर है, और जो मैक मोहन लाइन कहलाती है। मुझे नहीं मालुम कि उनके दिल में क्यों शक पैदा हुआ, क्योंकि मैक मोहन लाइन तो एक माकूल चीज है।"

इसी बीच भारत और चीन के बीच तिब्बत के सम्बन्ध में एक व्यापारिक संधि हुई जिस पर भारत के राजदूत श्री राघवन और चीन के उपविदेश मंत्री श्री चाँग हान फू ने पीकिंग में हस्ताक्षर किये—जिसमें निम्न सिद्धान्तों के आधार पर समझौता हुआ।

(१) एक-दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुता का आदर करना।
(२) एक-दूसरे पर कभी आक्रमण न करना।
(३) एक-दूसरे के अन्दरूनी मामलों में दखल न देना।
(४) समता और परस्पर हित की नीति अपनाना।
(५) शांति से साथ-साथ रहना।

और इस संधि के पश्चात् तिब्बत और भारत के बीच और भी गहरी मित्रता स्थापित हो गई। तिब्बत से व्यापार पहले से अधिक बढ़ गया। इस समझौते के पश्चात् दोनों देशों के प्रति निधियों ने एक-दूसरे के नाम जो एक-सा पत्र लिखा था उससे भी यही प्रकट होता है।

इस पत्र का ऐतिहासिक महत्त्व है, और इसका मुख्य भाग इस प्रकार है—

(१) भारत सरकार खुशी से इस पत्र व्यवहार की तिथि से ६ महीने के भीतर उन फौजी रक्षा दलों को पूर्णतः हटा लेगी जो इस समय चीन के तिब्बत प्रदेश में यातुंग और ग्यांत्से में है। चीन की सरकार इस काम में सुविधायें और सहायता देगी।

(२) भारत सरकार ने, चीन के तिब्बत प्रदेश में डाक, तार और पब्लिक टेलीफोन की जो व्यवस्थाएँ की हैं, उनको वह सामान सहित उचित मूल्य लेकर चीन सरकार के हवाले कर देगी। इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाही चीन में भारत के दूतावास और चीन सरकार के विदेश विभाग के बीच मजीद बात-चीत से तय की जायेगी और यह बात-चीत इस पत्र-व्यवहार के पश्चात् तुरन्त शुरू हो जायेगी।

(३) भारत सरकार खुशी से चीन के तिब्बत प्रदेश में अपने बारह आराम घर उचित मूल्य लेकर चीन सरकार के हवाले कर देगी। इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई चीन में भारत के दूतावास और चीन सरकार के विदेश विभाग के बीच मजीद बात-चीत से तय की जायेगी।...चीन की सरकार इस बात को स्वीकार करती है कि ये घर आराम घरों के रूप में ही रखे जायेंगे।

(४) चीन की सरकार स्वीकार करती है कि चीन के तिब्बत प्रदेश में यातुंग और ग्यांत्से में भारत सरकार की व्यापारिक एजेन्सियों के अहाते या चहार दीवारी के अन्दर जितने मकान हैं, वे सब भारत सरकार अपने ही पास रखेगी। भारत सरकार अपनी एजेंसियों के अहाते या चहार दीवारी के अन्दर की सब जमीन को चीन की ओर से पट्टे पर रख सकती है। भारत सरकार स्वीकार करती है कि चीन सरकार की व्यापारिक एजेन्सियाँ कालिमपोंग और कलकत्ते में अपने इस्तैमाल के लिये भारत सरकार की तरफ से जमीन पट्टे पर ले सकेंगी और उस पर मकान बना सकेंगी। चीन सरकार, गर्तोक में भारतीय व्यापारी एजेंसी को मकान दिलाने में सब सम्भव सहायता देगी। भारत सरकार भी नई दिल्ली में चीनी व्यापारी एजेंसी को मकान दिलाने में सब सम्भव सहायता देगी।

(५) भारत सरकार खुशी से चीन सरकार को वह सब जमीन लौटा देगी

जो यातुंग में भारत सरकार के इस्तैमाल या कब्जे में है, सिवाय उस जमीन के जो यातुंग में व्यापारी एजेंसी के अहाते या चहार दीवारी के अन्दर है।

ऊपर वर्णित जमीनों पर जो भारत सरकार के इस्तैमाल या कब्जे में है और जिनको भारत सरकार लौटाने वाली हो, यदि भारत सरकार के गोदाम या भारतीय व्यापारियों की दूकानें, गोदाम या मकान हैं और इसलिये इन जमीनों को पट्टे पर लेते रहने की जरूरत है, तो चीन सरकार स्वीकार करती है कि वह भारत सरकार या भारतीय व्यापारियों के साथ यथोचित इन जमीनों के उन हिस्सों को यहाँ पर उठाने के लिये इकरार नामे पर दस्तखत करेगी, जिन हिस्सों पर ऊपर वर्णित गोदाम, मकान या दूकानें हों या जो जमीन के हिस्से इन इमारतों से सम्बन्ध रखते हों।

(६) दोनों ओर के व्यापारिक एजेंट स्थानीय सरकार के कानूनों और उपनियमों के अनुसार दीवानी या फौजदारी मामलों में ग्रस्त अपने देश वासियों से मिल सकेंगे।

(७) दोनों ओर के व्यापारिक एजेंट और व्यापारा पास-पड़ौस के लोगों को नौकर रख सकेंगे।

(८) ग्यांत्से और यातुंग में भारतीय व्यापारी एजेंसियों के अस्पताल एजेंसी के लोगों की सेवा बदस्तूर करते रहेंगे।

(९) प्रत्येक सरकार दूसरे देश के व्यापारियों और तीर्थ यात्रियों की जान और सम्पत्ति की रक्षा करेगी।

(१०) चीन सरकार स्वीकार करती है कि वह यथा सम्भव, प्रलन खुंग (तकलाकोट) से कांगरियो चे (कैलाश) और मवंत्सो (मानसरोवर) तक के रास्ते पर तीर्थ यात्रियों के लिये आराम घर बनायेगी। भारत सरकार तीर्थ-यात्रियों को सभी सम्भव सुविधाएँ भारत में देना स्वीकार करती है।

(११) दोनों तरफ के व्यापारियों और तीर्थ यात्रियों को साधारण और उचित दर पर यातायात के साधन किराये पर लेने की सुबिधा दी जायेगी।

(१२) प्रत्येक पक्ष की तीनों व्यापारिक एजेन्सियाँ बारहों महीने काम कर सकती हैं।

(१३) दोनों देशों के व्यापारी स्थानीय उपनियमों के अनुसार उन स्थानों में जो दूसरे देश के अधिकार में हों, मकान या गोदाम किराये पर ले सकते हैं।

(१४) इकरार नामे के अनुच्छेद नं० २ में जो स्थान निर्दिष्ट किए गये हैं, उन पर दोनों देशों के व्यापारी स्थानीय उपनियमों के अनुसार यथाक्रम व्यापार कर सकते हैं। और—

(१५) दोनों देशों के व्यापारियों के बीच कर्ज या मुतालबे के झगड़ों को स्थानीय कानूनों और उपनियमों के अनुसार हाथ में लिया जायेगा।[1]

इस समझौते से यह स्पष्ट हो गया कि चीन और भारत के बीच कभी भी कोई खाई पैदा नहीं हो सकती। और यदि हुई तो वह तुरन्त पाट दी जायेगी।

चाओ एन लाई भारत में

गत पृष्ठों के अध्ययन से यह तो स्पष्ट हो गया कि पंडित नेहरू विश्व में शान्ति स्थापना के लिये प्रयत्नशील रहे हैं, मगर उनका अपना एक सिद्धान्त है, बहुत दिन हुए एक आम सभा में उन्होंने कहा था—'यदि कोई आदमी स्वयं को सुधार लेता है, तो वह अपने देश के एक भाग को सुधार लेता है, पश्चात् उसे अपने परिवार, गाँव, जिला और प्रान्त तथा देश की सेवा करनी चाहिये।'

पंडित नेहरू के इस सिद्धान्त से मेरा विचार है सभी सहमत होंगे, क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं को नहीं सुधार सकता वह पड़ौस या गाँव को कैसे सुधार सकता है? ठीक इसी प्रकार जहाँ पंडित नेहरू विश्व में शान्ति स्थापना की चेष्टा करते रहे, वहीं उन्होंने एशिया में शान्ति को सुदृढ़ बनाया, और एशिया में शान्ति की जड़ों का उन्होंने प्रत्येक क्षण ध्यान रखा। जब कोरिया में युद्ध हो रहा था, और संयुक्त राज्य अमेरिका युद्ध की लपटों को शान्त न होने देने की चेष्टा कर रहा था, तब पंडित नेहरू ने अमेरिका के लिये डाटा तो था ही, साथ ही वह लगातार इस बात की चेष्टा भी करते रहे थे कि किसी प्रकार चीन को

---

[1] भारत सरकार और चीन दूतावास की समय-समय पर निकलने वाली विज्ञप्तियों से।

उसका वास्तविक स्थान संयुक्त राष्ट्रसंघ में मिल जाय। कितनी ही बार उन्होंने अपने भाषणों में कहा 'चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ' में स्थान न देना उसके साथ ज्यादती है।' भारतीय प्रतिनिधि जब भी चीन का सवाल संयुक्त राष्ट्रसंघ में आया बार-बार इस बात पर जोर देते कि चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ में उसका उपयुक्त स्थान दिलाना चाहिये।

चीन की मैत्री का एक मुख्य कारण यह भी रहा कि पंडित नेहरू समझते रहे हैं कि एशिया में शान्ति उस समय तक स्थापित नहीं हो सकती जब तक कि चीन और भारत की मैत्री दृढ़ और स्थायी न हो जाय। क्योंकि इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि एशिया में शान्ति के लिए और एशियाई देशों के विकास के लिए हिन्द चीन मैत्री आवश्यक सिद्ध हुई, जिसे पंडित नेहरू की दूरदर्शी दृष्टि ने पहले ही भाँप लिया था। और यही कारण था कि उन्होंने भारत चीन मैत्री की दो हजार वर्ष पुरानी परम्परा बनाये रखने की पूरी कोशिश की। चीन के प्रधानमन्त्री श्री चाओएनलाई का भारत आगमन उसकी एक सुदृढ़ कड़ी थी। श्री चाओएनलाई पंडित नेहरू के निमन्त्रण पर ही भारत आये थे। भारतीय जनता ने २५ जून १९५४ को जब वह नई दिल्ली के हवाई अड्डे पर पहुँचे थे तो जिस प्रकार उनका स्वागत किया वह ऐतिहासिक स्वागत बन गया है। इस समय तक किसी भी विदेशी प्रतिनिधि का भारतीय जनता ने इतने उत्साह से स्वागत भारतीय इतिहास में कभी नहीं किया। इसमें भी रंचमात्र सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं कि श्री चाओ की इस यात्रा से भारत-चीन मैत्री पहले से और भी अधिक दृढ़ हुई, और इस ऐतिहासिक यात्रा से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में एक हलचल सी मच गई।

श्री चाओ एन लाई

पंडित जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण पर जनवादी चीन के प्रधानमन्त्री श्री चाओएन लाई तीन दिन के लिए भारत पधारे। उनका वायुयान २५ जून १९५४ को जिस समय नई दिल्ली के पालम हवाई अड्डे पर उतरा, उस समय उनके स्वागतार्थ जनता का समूह उमड़ा पड़ता था। हवाई अड्डे पर तमाम देशों के भारत स्थित कूटनीतिज्ञ, केन्द्रीय सरकार के समस्त मन्त्री और स्वयं

पंडित जवाहरलाल नेहरू उपस्थित थे। आगे बढ़कर पंडित नेहरू ने उनसे हाथ मिलाया।

हवाई अड्डे से लेकर शहर तक का सारा मार्ग चीन और भारत के झंडों से सजाया गया था।

पंडित नेहरू ने केन्द्रीय सरकार के मन्त्रियों और कूटनीतिज्ञों से परिचय कराया। पश्चात् श्री चाओएन लाई ने संक्षिप्त सा भाषण दिया। जिसमें उन्होंने अपने भारत आगमन को भारत चीन मित्रता की कड़ी को और भी मजबूत होना बतलाया। उन्होंने कहा—

'प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण पर, मुझे आज अपने इस महान् पड़ौसी देश में आने का अवसर प्राप्त हुआ है जिसके कारण मैं अत्यन्त गौरव अनुभव कर रहा हूँ। केन्द्रीय लोक सरकार और चीनी लोक गणतन्त्र की जनता की ओर से मैं भारतीय सरकार और जनता का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

'चीनी लोक गणतन्त्र की केन्द्रीय सरकार और जनता, भारतीय सरकार और जनता की मित्रता को बहुमूल्य समझती है। चीन और भारत के ९६ करोड़ लोगों की मित्रता और पारस्परिक शान्ति, एशिया और संसार की शान्ति की सुरक्षा में महत्त्वपूर्ण योग दे रही है।

'मेरी कामना है कि—

चीन और भारत की मित्रता दिन-प्रतिदिन और उन्नति करे!

एशियाई लोगों की एकता दिन-प्रतिदिन और मजबूत हो!

विश्व-शान्ति दिन-प्रतिदिन और पुष्ट हो!

सारा पालम का हवाई अड्डा 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' के नारों से गूँज उठा।

अगले दिन २६ जून को प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनके स्वागत सम्मान में एक बृहद भोज का आयोजन किया। जिसमें केन्द्रीय सरकार के मन्त्री, पार्लियामेंट के सदस्य, कुछ उच्च सरकारी अफसर और देहली के ख्याति प्राप्त लोग सम्मिलित थे। इस भोज के अवसर पर श्री चाओ एनलाई ने एक भाषण दिया जो दोनों देशों की मित्रता को और भी मजबूत करने वाला

तथा एशिया की शान्ति को सुदृढ़ करने वाला सिद्ध हुआ। पूरा भाषण इस प्रकार है—

'भारतीय प्रधानमन्त्री जी, देवियो और सज्जनों !

'महामहिम प्रधानमन्त्री श्री नेहरू के निमन्त्रण पर भारत आकर मुझे भारत सरकार और भारतीय जनता का हार्दिक स्वागत और उत्साहपूर्ण आथित्य-सत्कार प्राप्त हुआ है। प्रधानमन्त्री नेहरू ने इस भोज का आयोजन कर मुझे अपने प्रतिष्ठित मित्रों से मिलने का अवसर प्रदान किया है, जिसके कारण मैं अत्यन्त गौरव और आनन्द अनुभव कर रहा हूँ। माननीय प्रधानमन्त्री जी, मैं आपके प्रति और आपके द्वारा भारत की सरकार और जनता के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

'चीन और भारत में दो हजार वर्षों से परम्परागत मित्रता चली आ रही है। भारतीयगण राज्य और चीनी लोक गणतन्त्र के बीच, समानता, परस्पर लाभ और एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता के सम्मान के आधार पर कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने से, हमारे दोनों देशों के लोगों की इस मित्रता में, पिछले कुछ वर्षों में, नई प्रगति हुई है।

'चीनी सरकार और जनता भारतीय सरकार और जनता की मित्रता को बहुत ही मित्रतापूर्ण समझती है। हमारे दोनों देशों के सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन और मजबूत हो रहे हैं, और सांस्कृतिक व आर्थिक नाते बराबर बढ़ रहे हैं। खासकर, इस वर्ष अप्रैल में चीन और भारत के बीच, चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के पारस्परिक व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में, जो समझौता हुआ है, उसने न केवल चीन-भारत मित्रता में सुधार किया है, बल्कि हमारे दोनों देशों के सम्बन्धों के निम्नलिखित सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डाला है। एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना, एक दूसरे के विरुद्ध आक्रमक कार्रवाही न करना, एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर लाभ की नीति का और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का पालन करना। इस प्रकार, इस समझौते ने राष्ट्रों की पारस्परिक समस्याओं को बातचीत द्वारा सुलझाने का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

'चीन भारत दोनों शान्तिप्रिय देश हैं। चीनी जनता को इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि उसका पड़ौसी भारत जैसा देश है जो शान्ति के उद्देश्य में संलग्न है। कोरिया विराम संधि सम्पन्न कराने के लिए जो प्रयत्न किये गये हैं, उनमें भारत का अमूल्य योग रहा है। हिन्द चीन की लड़ाई को बन्द कराने की कोशिशों में भारत बराबर दिलचस्पी लेता रहा है। और जैनेवा सम्मेलन में, हिन्द चीन में फिर से शान्ति स्थापित करने के लिये जो प्रयत्न किये गये हैं, उनका सबने दृढ़ता से समर्थन किया है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भारत की ये नीति एशिया की शान्ति की सुरक्षा के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

'एशिया के तमाम लोग शान्ति की इच्छा रखते हैं। एशिया की शान्ति को जो इस समय खतरा है वह बाहर से है। लेकिन आज का एशिया कल का एशिया नहीं है। वह युग, जब बाहरी शक्तियाँ अपनी इच्छानुसार एशिया के भाग्य का निर्णय कर सकती थीं, सदा के लिए बीत चुका है। हमें विश्वास है कि एशिया के तमाम शान्तिप्रिय राष्ट्रों और लोगों की एकता, जंगबाजों की साजिश को परास्त कर देगी। मुझे आशा है कि चीन और भारत, एशिया की शान्ति की सुरक्षा के उच्च उद्देश्य के लिये परस्पर और भी घनिष्ठ सहयोग स्थापित करेंगे।

'माननीय प्रधानमन्त्री जी, मैं चीन और भारत के मैत्रीपूर्ण सहयोग के लिये, भारत की राष्ट्रीय समृद्धि के लिये और भारतीय जनता के कल्याण के लिये, आपकी सेहत का जाम पेश करता हूँ।'

प्रैस कान्फ्रेंस में

२७ जून १९५४ को श्री चाओ एन लाई ने सम्वाददाताओं के प्रश्नों के उत्तर दिए।

कुछ सम्वाददाताओं ने प्रश्न किया कि 'क्या आपके पास अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने के लिए कुछ ठोस सुझाव हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री चाओ-एन-लाई ने कहा—

'मेरे विचार में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने का मुख्य उपाय युद्ध का

विरोध करना और शान्ति की रक्षा करना है। कोरियन विराम सन्धि से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कुछ कम हुआ है। यदि हिन्द चीन की लड़ाई बन्द कर दी जाए और वहाँ फिर से शान्ति स्थापित कर दी जाए तो अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और भी कम हो जाएगा। फिर भी, हमें इस तथ्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये कि अभी तक ऐसे लोग मौजूद हैं जो हिन्द चीन के दोनों युद्धरत पक्षों की सम्मानजनक विराम सन्धि में बाधा डाल रहे हैं। इसलिए शान्ति से प्रेम करने वाले राष्ट्रों और लोगों को अपने प्रयत्न जारी रखने चाहिएं और इस प्रकार की बाधाजनक कार्रवाहियों को सफल नहीं होने देना चाहिए।

प्रश्न—क्या आपके पास एशियाई राष्ट्रों के आपसी सहयोग को बढ़ाने के लिए ठोस सुझाव हैं ?

उत्तर—मेरे विचार में प्रधानमन्त्री पंडित नेहरू का ये कथन ठीक है कि इस साल अप्रैल में चीन और भारत का, चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के परस्पर व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में, जो समझौता हुआ है, उसकी प्रस्तावना के पाँच सिद्धान्तों को चीन और भारत के सम्बन्धों का निर्देशन करना चाहिए। ये सिद्धान्त ये हैं—एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना, एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक कार्रवाही न करना, एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर लाभ की नीति का और शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति का पालन करना। ये सिद्धान्त केवल हमारे दोनों देशों के लिए ही नहीं, बल्कि एशिया के अन्य देशों और संसार में तमाम देशों के लिए भी अच्छे हैं। यदि इन सिद्धान्तों को एशिया में विस्तृत रूप से लागू किया जाए तो युद्ध का खतरा कम हो जायेगा और एशियाई राष्ट्रों के आपसी सहयोग की सम्भावना बढ़ जायेगी।

प्रश्न—संसार में कुछ राष्ट्र बड़े और कुछ छोटे हैं, कुछ शक्तिशाली हैं, कुछ निर्बल हैं, फिर वे शान्तिपूर्वक साथ-साथ कैसे रह सकते हैं ?

उत्तर—हमारी राय यह है कि अभी-अभी दूसरे प्रश्न के उत्तर में मैंने जिन पाँच सिद्धान्तों का उल्लेख किया है, उसके आधार पर संसार के सभी राष्ट्र—चाहे वे बड़े हों या छोटे, शक्तिशाली हों या निर्बल और चाहे उनमें से प्रत्येक

की सामाजिक व्यवस्था किसी प्रकार की क्यों न हो---शान्तिपूर्वक साथ-साथ रह सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की जनता के राष्ट्रीय स्वाधीनता और आत्म निर्णय के अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिये। प्रत्येक राष्ट्र के लोगों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे अपने लिए, दूसरे देश के हस्तक्षेप के बिना जैसी भी राज्य व्यवस्था और जीवन प्रणाली चाहें, चुन सकते हैं। क्रान्ति विदेशों से नहीं मँगाई जा सकती। साथ ही, किसी देश के लोगों की, सम्मिलित रूप से व्यक्त की गई इच्छा में बाहरी हस्तक्षेप भी नहीं होने देना चाहिए। यदि संसार के सभी राष्ट्र इन सिद्धान्तों को अपने आपसी सम्बन्धों का आधार बना लें तो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को न तो धमकी देगा और न उसके विरुद्ध आक्रामक कार्यवाही करेगा और विश्व के सभी राष्ट्रों का शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व सम्भावना नहीं बल्कि एक वास्तविकता बन जायेगी।

प्रश्न---क्या यह उचित होगा कि एशिया के प्रमुख देशों के प्रधानमन्त्री, एशिया की शान्ति और सुरक्षा को बनाए रखने के सामान्य उपाय ढूंढ़ने के लिए, समय समय पर आपस में मिलते रहें ?

उत्तर---मेरी राय में एशिया की शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखने के सामान्य उपाय ढूंढ़ने के लिए, यह उचित होगा कि प्रमुख एशियाई देशों के उचित जिम्मेदार व्यक्ति समय-समय पर आपस में मिलते रहें और एक दूसरे से परामर्श करते रहें।

प्रश्न---चीन और भारत के सम्बन्ध किस प्रकार मजबूत किये जा सकते हैं?

उत्तर---मेरे विचार से चीन और भारत के सम्बन्धों को मजबूत करने और बढ़ाने के लिये हमें विभिन्न दिशाओं में प्रयत्न करना होगा। चीन और भारत में दो हजार वर्ष से परम्परागत मित्रता चली आ रही है, हाल ही में दोनों देशों के बीच चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के पारस्परिक व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में, एक समझौता हुआ है, जो पंचशील के ऊपर आधारित है। इससे हमारे दोनों देशों के सम्बंधों को मजबूत करने का आधार मिल गया है। इस नूतन आधार पर दोनों देशों की सरकारों और व्यक्तियों के बीच, विश्व-शान्ति के लिये घनिष्ठ सहयोग और स्थिर सम्पर्क स्थापित होने से और दोनों देशों के

आर्थिक सम्बन्धों के विकास और सांस्कृतिक आदान प्रदानों से हमारे दोनों देशों के सम्बन्धों को बराबर सुदृढ़ और विकसित किया जा सकेगा। यह कहा गया है कि हमारे दोनों देशों में इस समय अपेक्षाकृत कम व्यापार हो रहा है। मेरे विचार में एक-दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करने और सहायता करने की भावना से तथा समानता और परस्पर लाभ के आधार पर, ऐसे उपाय ढूँढ़े जा सकते हैं, जिनसे यह व्यापार बढ़ सके।

ऐतिहासिक लालकिला

दिल्ली के नागरिकों की ओर से प्रधान मंत्री चाओ एन लाई का एक स्वागत समारोह लालकिले में किया गया जिसमें उन्होंने अपने भाषण में कहा—'हम यहाँ भारतीय जनता के लिये चीनी जनता की मित्रता लेकर आये हैं। और हम यहाँ भारतीय जनता में भी चीनी जनता के लिये वैसी ही गहरी मित्रता देख रहे हैं।

'हम यहाँ चीन के लोगों की शांति को बचाने की प्रबल इच्छा लेकर आये हैं। और हम यहाँ भारत के लोगों में भी शान्ति को बचाने की उतनी ही प्रबल इच्छा अनुभव कर रहे हैं।

'दिल्ली के लोगों और उनके नेताओं में हमने समूचे भारत के लोगों की, हिन्द-चीन मैत्री को बढ़ाने और विश्व-शान्ति की रक्षा करने की सामान्य भावना और आकांक्षा का अनुभव किया है।

'हमारे दोनों देशों के लोगों की युगों से चली आती स्फूर्तिदायनी मित्रता का हम सबने बड़े उत्साह से उल्लेख किया है। आज, जब हम एक जगह उपस्थित हैं, हम यह बात सन्तोष के साथ कह सकते हैं कि हमारी यह परम्परागत मित्रता दिन प्रति दिन बढ़ रही है।

'हम सबने कहा है कि हमारे दोनों देशों के लोग स्थायी शान्ति की सामान्य इच्छा रखते हैं। निःसन्देह भारत और चीन के ९६ करोड़ लोग जब यह माँग कर रहे हैं कि हमें संगठित होना चाहिए और कंधे से कंधा मिलाकर काम करना चाहिए, तो इससे यह स्पष्ट है कि शांति की सुरक्षा के लिये एक विराट शक्ति

का निर्माण हो रहा है।

'इन सब बातों से मुझे यह विश्वास हो गया है कि निःसन्देह भारत की हमारी इस यात्रा के मूल्यवान परिणाम निकलेंगे।

'आपकी यह कामना कि जैनेवा सम्मेलन में हमें सफलता मिले, मुझे विश्वास है कि शान्ति के लिए चीन और भारत की—एशिया के दो प्रमुख राष्ट्रों की—एकता के और मजबूत होने से जैनेवा सम्मेलन की सफलता की सम्भावनाएँ निःसन्देह और बढ़ जायेंगी।'

रेडियो पर

चीन के प्रधान मंत्री श्री चाओ एन लाई द्वारा २७ जून १९५४ को रेडियो पर दिया गया भाषण ऐतिहासिक भाषण के नाम से पुकारा जाता है, हम उसे नीचे ज्यों का त्यों दे रहे हैं—

'प्रिय भारतीय मित्रो !

'भारत के लोगों के लिये भाषण देने का मुझे जो अवसर मिला है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता अनुभव हो रही है। सबसे पहले मैं भारत की महान जनता का चीन की महान जनता की ओर से अभिनन्दन करता हूँ।

'चीन और भारत की जनता में बहुत ही प्राचीन काल से गहरी मित्रता रही है। लगभग तीन हजार किलोमीटर लम्बी एक सीमान्त रेखा इन दो राष्ट्रों को एक-दूसरे से जोड़ रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे दोनों देशों के बीच, शताब्दियों तक सांस्कृतिक और आर्थिक आदान-प्रदान होते रहे हैं, लेकिन कभी भी लड़ाई या शत्रुता नहीं हुई है।

''निकट अतीत में चीन और भारत दोनों को विदेशी उपनिवेशवाद के आक्रमण और दमन का शिकार होना पड़ा था। लेकिन चीनी जनता और भारतीय जनता अपनी स्वाधीनता और स्वतन्त्रता के लिये बराबर संघर्ष करती रही। एक-सी विपत्ति का शिकार होने और एक-से उद्देश्य के लिये संघर्ष करने के कारण चीन और भारत के लोग एक-दूसरे से गहरी सहानुभूति रखने लगे और एक-दूसरे को गहराई से समझने लगे।

'चीनी लोक गणतन्त्र और भारतीय गणराज्य की स्थापना के बाद, चीनी और भारतीय जनता की इस इतिहास-पोषित परम्परागत मित्रता का नवीन विकास हुआ।

'हमने अपने निजी राज्यों की स्थापना की है। हमारी सामान्य इच्छा है कि हम शान्तिपूर्ण वातावरण में अपनी महान् मातृभूमियों का निर्माण करें। इस सामान्य इच्छा के आधार पर, हमारे दोनों देशों के लोगों की मित्रता में और उन्नति होगी।''

'हम इस मित्रता को बहुत ही महत्वपूर्ण समझते हैं—क्योंकि मित्रता शान्ति प्रदान करती है। आज, जब कि एशिया की शान्ति को बाहर से खतरा है, चीन और भारत के ९६ करोड़ लोगों की मित्रता एशिया और संसार की शान्ति की सुरक्षा के लिए एक महान् शक्ति बन जाती है।''

''हाल ही में हमारे दोनों देशों में, चीनी तिब्बत प्रदेश और भारत के पारस्परिक व्यापार और आवागमन के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ है। इस समझौते में दोनों देशों की सरकारों ने यह घोषणा की है कि एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना; एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक कार्रवाही न करना, एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर लाभ की नीति का और शान्ति पूर्ण सह अस्तित्व की नीति का पालन करना। इन सिद्धान्तों के आधार पर सम्पन्न हुआ यह समझौता, इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि राष्ट्रों की आपसी समस्याएँ बातचीत द्वारा हल हो सकती हैं। प्रधानमन्त्री नेहरू ने कल कहा था—यदि ये सिद्धान्त विस्तृत क्षेत्रों में स्वीकार कर लिए जाते हैं तो इससे युद्ध का भय दूर हो जायेगा और राष्ट्रों के बीच सहयोग की भावना विकसित होने लगेगी। प्रधानमन्त्री नेहरू से अब मेरी जो बातचीत हुई है, उससे हम दोनों की यह राय रही है कि उपरोक्त सिद्धान्त एशिया और संसार के वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में लागू किये जाने चाहिएँ।

'मुझे दृढ़ विश्वास है कि चीन और भारत का सम्मिलित प्रयास एशिया और संसार की शान्ति में निश्चित रूप से महान् योग देगा।

'चीन और भारत के लोगों की मित्रता चिरजीवी हो !'

'एशियाई शान्ति चिरजीवी हो !'

'विश्वशान्ति चिरजीवी हो !'

बिदाई और संयुक्त वक्तव्य

बिदा होने से पूर्व पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्री चाओ एन लाई ने एक संयुक्त वक्तव्य तैयार किया, जो न केवल भारतीय और चीन के इतिहास में अमर रहेगा बरन् विश्व इतिहास में जिसका प्रमुख स्थान बन गया है। यह एक अपनी तरह का पहला संयुक्त वक्तव्य है जो विश्व शान्ति के मार्ग को सरल और सुगम बनाता है।

पूर्ण वक्तव्य इस तरह है—

१—चीनी लोक गणतन्त्र के प्रधानमन्त्री और विदेशमन्त्री महामहिम चाओ एन लाई, भारतीय गणराज्य के प्रधानमन्त्री और विदेशमन्त्री महामहिम जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण पर, दिल्ली पधारे। वह यहाँ तीन दिन ठहरे। इस बीच दोनों प्रधानमन्त्रियों ने चीन और भारत के सम्मिलित हितों से सम्बन्ध रखने वाले बहुत से मामलों पर विचार विमर्श किया। विशेष रूप से उन्होंने दक्षिणी पूर्वी एशिया की शान्ति की सम्भावनाओं पर और जिनेवा सम्मेलन में हिन्द चीन के सम्बन्ध में हुई प्रगति पर विचार किया। हिन्द चीन की स्थिति का एशिया और संसार की शान्ति के लिए बहुत ही महत्त्व है। और दोनों प्रधानमन्त्री इस बात के इच्छुक हैं कि जैनेवा में जो प्रयत्न किये जा रहे हैं वे सफल हों। उन्हें इस बात से सन्तोष है कि जैनेवा में विराम-सन्धि सम्बन्धी बातचीत में कुछ प्रगति हुई है। उनकी हार्दिक कामना है कि ये प्रयत्न निकट भविष्य में ही, सफल हो और इनके फलस्वरूप उस क्षेत्र की राजनीतिक समस्याएँ सुलझ जाएँ।

२—प्रधानमन्त्रियो की बातचीत का उद्देश्य यह है कि जैनेवा में तथा

भारत में चीन के सूचना विभाग की विज्ञप्ति से

अन्यत्र शान्तिपूर्ण समझौते के जो प्रयत्न हो रहे हैं उन सम्भव उपायों में, सभी द्वारा, सहायता पहुँचाई जाए। उनका मुख्य उद्देश्य एक दूसरे के दृष्टिकोण को और भी अच्छी तरह समझना है जिससे कि पारस्परिक सहयोग और अन्य देशों के सहयोग द्वारा, शान्ति बनाए रखने में सहायता पहुँचाई जा सके।

३—हाल ही में चीन और भारत का एक समझौता हुआ है जिसमें उन्होंने दोनों देशों के आपसी सम्बन्ध किस प्रकार के हों, इसके लिए कुछ सिद्धान्त स्थिर किये हैं। ये सिद्धान्त हैं—

(१) एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना;
(२) एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक कार्रवाई न करना,
(३) एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना,
(४) समानता और परस्पर लाभ की नीति का पालन करना, और
(५) शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति का पालन करना।

प्रधान मन्त्रियों ने इन सिद्धान्तों की फिर से पुष्टि की है और यह अनुभव किया है कि उन्हें, एशिया और संसार के अन्य भागों के दूसरे देशों के साथ भी अपने सम्बन्ध इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित करने चाहिएँ। यदि इन सिद्धान्तों को न केवल विभिन्न देशों के आपसी सम्बन्धों में, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी सामान्य रूप से लागू कर दिया जाय, तो ये शान्ति और सुरक्षा का ठोस आधार बन जाएँगे और आज जो भय और आशंकाएँ हैं उनके स्थान पर विश्वास की भावना उत्पन्न हो जाएगी।

४—प्रधानमन्त्रियों ने यह चीज स्वीकार की है कि एशिया और संसार के विभिन्न भागों में आज भिन्न-भिन्न प्रकार की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ हैं। परन्तु यदि उपरोक्त सिद्धान्त स्वीकार कर लिए जाएं और उन पर अमल किया जाए और एक देश द्वारा दूसरे देश के मामलों में हस्तक्षेप न किया जाए, तो इन विभिन्नताओं से न तो शान्ति में बाधा पड़ सकती है और न झगड़े ही पैदा हो सकते हैं। यदि प्रत्येक देश को यह भरोसा हो कि उसकी प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता सुरक्षित है और उसके विरुद्ध कोई आक्रामक कार्यवाही नहीं की जाएगी, तो सम्बन्धित देश शान्तिपूर्वक साथ-साथ रह सकते

हैं और परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रख सकते हैं। इससे संसार में आज जो तनाव हैं, वे कम हो जाएँगे और शान्ति का वातावरण तैयार होने में मदद मिलेगी।

५—प्रधानमन्त्रियों को आशा है कि हिन्द चीन की समस्याओं को सुलझाते समय इन सिद्धान्तों को विशेष रूप से लागू किया जाएगा। हिन्द चीन के राजनीतिक समझौते का उद्देश्य, स्वाधीन, लोकतन्त्रात्मक, संयुक्त और स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना होनी चाहिए—ऐसे राज्यों की स्थापना, जो आक्रामक उद्देश्यों के लिए प्रयोग में न लाए जा सकें और जिनमें विदेशी शक्तियाँ हस्तक्षेप न कर सकें। इससे इन देशों में आत्म विश्वास पैदा होगा और इनके आपस में और पड़ौसी देशों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित होंगे। उपरोक्त सिद्धान्तों को मान लेने से एक शान्ति क्षेत्र की स्थापना में भी सहायता मिलेगी इस शान्ति क्षेत्र को परिस्थितियों के अनुसार विस्तृत किया जा सकेगा। और इस तरह, संसार भर में युद्ध की सम्भावनाओं को कम किया जा सकेगा, और शान्ति के पक्ष को मजबूत किया जा सकेगा।

६—प्रधानमन्त्रियों ने चीन और भारत की मित्रता में अपना विश्वास प्रकट किया है। इस मित्रता से विश्व शान्ति के उद्देश्य में तथा दोनों देशों और एशिया के अन्य देशों के शान्तिपूर्ण विकास में मदद मिलेगी।

७—इस बातचीत का उद्देश्य यह रहा है कि एशिया की समस्याओं को और भी अच्छी तरह समझा जाए और इनको तथा इन जैसी अन्य समस्याओं को सुलझाने के लिए, संसार के दूसरे देशों के साथ मिलकर, शान्ति और सहयोग की भावना से प्रयत्न किया जाए।

८—दोनों प्रधानमन्त्री इस बात पर सहमत हैं कि उनके अपने देशों को आपस में घनिष्ठ सम्पर्क रखना चाहिए ताकि वे एक दूसरे को पूरी तरह समझ सकें। उन्हें एक दूसरे से मिलने का और खुलकर विचार विनिमय करने का जो यह अवसर मिला है, इसे वे बहुत ही मूल्यवान समझते हैं। इससे वे एक-दूसरे को और भी अच्छी तरह समझ सकेंगे और शान्ति के उद्देश्य के लिए मिल-जुलकर प्रयत्न कर सकेंगे।

चीन में नेहरू

श्री चाओ एन लाई के भारत आने का जितना प्रभाव चीन भारत एकता से एशिया में शांति स्थापना के लिये उत्पन्न हुआ, उतना ही पंडित नेहरू के चीन जाने से। बहुत पहले से चीन की लोक तंत्रीय सरकार ने उन्हें निमंत्रण दे रखा था, मगर अन्तर राष्ट्रीय परिस्थितियाँ ऐसी पैदा हो रही थीं कि नेहरू जी चीन जाने की बात को या तो टालते रहे थे, अथवा अवसर ही न निकलता था, मगर श्री चाओ की भारत यात्रा ने उन्हें चीन बुला ही लिया।

अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में पंडित नेहरू चीन के लिये गये तो राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद सारे राष्ट्रीय बन्धनों को तोड़कर उन्हें विदा करने हवाई अड्डे पर पहुँचे। इतिहास की यह पहली घटना थी कि एक राष्ट्र का राष्ट्रपति प्रधान-मंत्रीको हवाई अड्डे पर बिदा देने गये ; और शुभ कार्य जिस शुभ ढंग से आरम्भ हुआ उसी तरह समाप्त भी। यानी पडित नेहरू के चीन पहुँचने पर उनका जो शानदार स्वागत हुआ, वैसा स्वागत चीन में तो क्या दुनियां के किसी भी राष्ट्र में किसी विदेशी अतिथि का न हुआ था।

पीकिंग की एक सार्व जनिक सभा में उन्होंने घोषणा की—

'मैं यहाँ शान्ति और सदभावना का दूत बनकर आया हूँ और मैंने देखा कि यहाँ भी शांति और सदभावना व्याप्त है।'

चीन में बीते गत चार दिनों के बारे में वह बोले—'पिछले चार दिनों में, मेरे चारों ओर अपार दोस्ती, आथित्य और प्रेम उमड़ पड़ा है। इस सबने जिस हद तक मेरा मर्म छुआ है, इसका मैं बयान नहीं कर सकता।'

दोनों देशों के प्राचीनतम सम्बन्धों की याद दिलाते हुये उन्होंने कहा—'चीन एक गौरव शाली देश है, जिसकी सदियों पुरानी संस्कृति है। अपनी नयी हासिल की हुई स्वतंत्रता और शक्ति से वह आनन्द से भर उठा है और बड़ी आशा तथा विश्वास के साथ आगे अपना भविष्य देख रहा है।'

उनके इस प्रसिद्ध भाषण के श्रेष्ठतम भाग निम्न हैं—

'एशिया में आधिपत्य की स्थिती से जो पुराने शक्ति सम्बन्ध थे, वह समाप्त

हो गये हैं और उथल-पुथल के साथ एक नया शक्ति सन्तुलन पैदा हो रहा है।'

'दो सौ वर्ष पहले जो उद्योग क्रान्ति पैदा हुई थी, उससे जिस प्रकार दुनियां की तस्वीर बदल गयी, इस बार हमारी पीढ़ी उससे भी बड़े परिवर्तन देखेगी।'

'ये महान शक्तियाँ संसार को नष्ट भी कर सकती हैं और मानवता की इतनी भलाई भी कर सकती है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती···

'दुनियां को आज बड़ा महत्वपूर्ण फैसला करना है। उसके सामने एक तरफ शान्ति पूर्ण प्रगति है, दूसरी ओर युद्ध और महानाश। इनमें से क्या चुना जाय, इसका एक ही उत्तर हो सकता है।

'किन्तु युद्ध होने से बच लेना ही काफी नहीं है। हमें उन कारणों को भी समाप्त करना है, जिनसे युद्ध होते हैं और सक्रिय रूप से शांति और सद्भावना का वातावरण पैदा करना है।'

पंडित नेहरू ने जैनेवा समझौते में चीन की भूमिका की प्रशंसा की और कहा कि इस समझौते ने—

'दिखा दिया है कि कठिन समस्याओं को वार्ता के जरिये शान्ति पूर्वक हल किया जा सकता है। कोई कारण नहीं कि हम अन्य समस्याओं पर भी इसे लागू न करें। हमारे सामने यही रास्ता है।'

उन्होंने भाषण के अन्त में अपनी निम्न बात पर विशेष जोर दिया—

'भारत और चीन की तरफ से जो पाँच सिद्धान्त उद्घोषित किये गये हैं, उनसे एक नया दृष्टिकोण पैदा हो गया है। मैं हृदय से विश्वास करता हूँ कि ये सिद्धान्त न केवल एशियाई देशों और उनकी जनता द्वारा मान्य होंगे, बल्कि दूसरे देश भी इन्हें स्वीकार करेंगे और इन पर अमल करेंगे। इस प्रकार हम शान्ति का क्षेत्र विस्तृत करेंगे, युद्ध का भय दूर करेंगे, आज का तनाव खतम कर सकेंगे।'

माओ से भेंट

पंडित नेहरू के पीकिंग पहुँचने के थोड़े ही समय पश्चात् उनकी भेंट राष्ट्रपति माओ त्से तुंग से पहली भेंट १९ अक्तूबर को हुई। यह बात-चीत डेढ़ घन्टे तक चली।

राष्ट्रपति माओ त्से तुंग ने उनका जनरल जू-देह, श्री चाऊ एन लाई, श्री ल्यू शाओ ची और मेडम सनयात सैन आदि प्रमुख नेताओं से परिचय कराया।

इसी दिन संध्या को श्री चाओ एन लाई ने पंडित नेहरू के सम्मान में स्वागत समारोह किया, जिसमें चीन के ६०० प्रमुख जन नेताओं ने भाग लिया। यहीं पर पंडित नेहरू ने तिब्बत के अध्यक्ष दलाई लामा और पंचम लामा से भेंट की।

पश्चात् दलाई लामा ने सम्वाददाताओं को बताया कि उन्हें आश्चर्य हुआ कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ६५ वर्ष की आयु में भी जवान दिखाई देते हैं। उन्होंने बताया कि ल्हासा से पीकिंग आने में उन्हें ६ सप्ताह लगे थे, पर इतनी शीघ्रता से निर्माण कार्य हो रहा है कि लौटने में उन्हें बहुत ही कम समय लगेगा। और यात्रा पहले से अधिक सुविधाजनक तथा आराम देह होगी।

अल्पमतों का विद्यालय

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अल्पमत जातियों के विद्यालय को भी देखा। यहाँ अपनी-अपनी जातीय वेष-भूषा से सज्जित विभिन्न जातियों के १३०० विद्यार्थियों ने नेहरू जी का स्वागत किया।

पंडित नेहरू ने यहाँ बौद्ध विद्यार्थियों के बौद्ध मन्दिर तथा मुस्लिम विद्यार्थियों की मस्जिद भी देखी।

यहाँ पंडित नेहरू ने देखा कि विभिन्न जातियों के विद्यार्थियों के लिये उनके अपने राष्ट्रीय भोजन की सुविधा के लिये अलग-अलग भोजनालय हैं।

नेहरू जी ने एक चार मंजिल के क्षात्रावास का निर्माण होते हुये भी देखा, जिसमें ७०० विद्यार्थी और रह सकेंगे। अभी यहाँ बारह विशाल इमारतें हैं, जिनका निर्माण पिछले ढाई साल में ही हुआ है।

नेहरू जी ने विद्यार्थियों के विनोद ग्रह, उनकी पोशाकों, वाद्ययंत्रों, बर्तनों आदि को भी दिलचस्पी से देखा।

नया चीन छोटी-छोटी जातियों के राजनीतिक और सांस्कृतिक उत्थान में किस प्रकार दिलचस्पी ले रहा है, पंडित नेहरू को इसके साक्षात् दर्शन हुये।

ग्रीष्म महल

२० अक्तूबर को पंडित जवाहरलाल नेहरू का सारा दिन ग्रीष्म महल देखने में ही व्यतीत हो गया। यह मंचूवंश के सम्राटों का महल था, किन्तु नये चीन में यह चीन के विराट सांस्कृतिक वैभव का प्रदर्शन भवन बन गया है। जहाँ चीन की उच्चकोटि की कला देखी जा सकती है।

संध्या को श्री चाओ एन लाई ने पंडित नेहरू को प्रीति भोज दिया। जिसमें लगभग एक हजार अतिथि सम्मलित हुये। यहाँ जो भाषण पंडित नेहरू ने दिया वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उनका पूरा भाषण इस प्रकार है—

'दिल्ली से जब मैं पीकिंग आ रहा था, तो वर्तमान और भूतकाल के इतिहास की समस्त दृश्यावली मेरे सामने घूम गयी। दो हजार वर्ष पहले से ही चीन और भारत ने एक-दूसरे को जानना और पहिचानना आरम्भ कर दिया था। उसके पश्चात् अनेकों धार्मिक तथा अन्य यात्री एक देश से दूसरे देश पहुँचे जो अपने साथ अपने देश का सदभावना का सन्देश लाये और जिनके द्वारा संस्कृति और विचारों के आदान-प्रदान का आज भी उल्लेख मिलता है, मगर संघर्ष का नहीं। यह इन दो महान पड़ौसी देशों की गौरव पूर्ण विरासत है।

पश्चात् एक ऐसा युग आया जब दोनों देश बाहरी शक्तियों के कारण बिल्कुल प्रथक-प्रथक हो गये। स्वाधीनता और आजादी हासिल कर लेने के पश्चात् हमने फिर एक-दूसरे की ओर देखा और उन पुराने सम्पर्कों को, आज के नये युग के अनुसार फिर से जीवित करने का विचार किया।

'प्रधानमन्त्री महोदय, कुछ दिन पहले जब आप अल्पकाल के लिये भारत पधारे थे, तो आपके आगमन का हमने न केवल स्वागत किया था, बल्कि उसका एक ऐतिहासिक महत्व भी माना था। भारत की हमारी जनता ने उसके महत्व का अनुभव किया था, और आपका उत्साहपूर्वक स्वागत किया था। इसी प्रकार जब उसे पता चला कि मैं इस महान् प्राचीन देश को जा रहा हूँ तो उन्होंने मेरी इस यात्रा को बड़ा महत्व दिया। और इसे भारत तथा चीन दोनों देशों के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना समझा। पीकिंग के निवासियों ने कल जो मेरा

शानदार स्वागत किया है, उसके लिए मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगा, वह भी इस बात का संकेत है कि इस महान् देश की जनता ने यह समझ लिया है कि यह यात्रा केवल एक व्यक्ति का आगमन नहीं है, वरन् उससे कुछ अधिक है। वह स्वागत मेरा नहीं था, बल्कि उस देश का था जिसका प्रतिनिधि होने का सौभाग्य और गौरव मुझे प्राप्त है। जनता की यह चेतना इतिहास का निर्माण करने वाली शक्तियों और धाराओं की, राजनैतिक नेताओं और राजनीतिज्ञों की इच्छाओं से भी अधिक सच्ची कसौटी है।

'मेरे भीतर कोई गुण हो या न हो, पर हालात ये हो गई है कि मेरी इस यात्रा ने हमारे इन दो महान् देशों के आपसी सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर लिया है। भारत और चीन का आपसी सम्बन्ध इस समय बहुत महत्व रखेगा। आज के इस भ्रान्त और विषम संसार में तो इसका महत्व इससे भी अधिक हो सकता है। भला मनुष्य किसी भी अन्य वस्तु से अधिक महत्व रखते हैं, और चीन और भारत में बसने वाले लगभग एक अरब व्यक्तियों का महत्व बहुत है।

गत इतिहास के बारे में हमारे अलग-अलग अनुभव रहे हैं, और हमने मार्ग भी अलग-अलग चुने हैं। इस समय भी हो सकता है हम कुछ बातों पर एक राय न हों, मगर इससे एक सैद्धान्तिक सचाई को छिपाया नहीं जा सकता कि हमारे बहुत से अनुभव लगभग एक जैसे ही रहे हैं। हममें बहुत कुछ समानता है, और हमारे इन दो देशों और उनके नागरिकों में निश्चित रूप से परस्पर सद्भावना और मित्रता है। इस कलहपूर्ण संसार में यह एक बहुत बड़ा लाभ है। **आज संसार की सबसे बड़ी आवश्यकता शान्ति है, और मुझे पूरा विश्वास है चीन की जनता, भारत की जनता की तरह शान्ति के ध्येय में ही लगी हुई है।**

श्रीमान् प्रधानमन्त्री जी! आप जब भारत पधारे थे तो हमने एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिनमें हमारे आपसी सम्बन्ध को शासित करने-वाले पाँच सिद्धान्त सम्मिलित थे। उन सिद्धान्तों में यह महान नियम प्रति-पादित किया गया था कि प्रत्येक देश स्वतन्त्र रहे; अपनी इच्छानुसार जीवन

व्यतीत करे, दूसरों के साथ मित्रता रखे और अन्य कोई देश किसी प्रकार का उसमें हस्तक्षेप न करे। यदि उन पाँच सिद्धान्तों पर विश्व में आज प्रयोग किया जाय, तो बहुत से झगड़े जो राष्ट्रों को कष्ट दे रहे हैं, स्वयं ही समाप्त हो जायें। चीन एक महान और विशाल देश है, जिसमें बहुत प्रकार के लोग बसते हैं। भारत में जहाँ हम अपनी बुनियादी एकता को दृढ़ करते हैं वहाँ साथ ही इस विभिन्नता को भी जो हमारे राष्ट्रीय जीवन को समृद्ध करती है, मान्यता देते हैं। हम उन लोगों पर, जो किसी एक प्रकार के जीवन के अभ्यस्त हैं किसी दूसरे प्रकार के जीवन को थोपना नहीं चाहते। इस तरह हम अपने राष्ट्रीय जीवन के क्षेत्र में भी इस विभिन्नता को मान्यता देते है और स्थिर रखते हैं, क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि केवल इसी प्रकार राष्ट्र और जनता का पूर्ण विकास होगा।

'यदि एक राष्ट्र में ये दशा है, तो विभिन्न राष्ट्रों में ये चीज कितनी अधिक होगी ? एक राष्ट्र की रक्षा को अन्य राष्ट्रों पर या एक देश की जीवन-प्रणाली को अन्य देशों पर लादने की जो लत है, वह झगड़ा अवश्य पैदा करेगी और शान्ति को संकट में डालेगी और इसीलिये हम एक देश पर दूसरे देश के शासन का विरोध करते आये हैं।

'इस तरह जिस प्रकार दलों के लिए उसी तरह राष्ट्रों के लिए भी एक-मात्र सही और व्यवहारिक मार्ग यही है कि वे अपने दृष्टिकोण और जीवन-प्रणाली से भिन्नता रखते हुए भी, परस्पर सह अस्तित्व को मान्यता दें। किसी अन्य मार्ग या इसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप का अर्थ है—कलह।

'हम संसार में हद से अधिक कलह, द्वेष और बरबादी देख चुके हैं, जबकि प्रत्येक देश की जनता शांति और विकास के लिए बेचैन है। द्वेष और हिंसा से जो कि अपने साथ केवल लड़ाई, झगड़ा या हिंसा ही नहीं लाते, बल्कि मानव विकास को भी रोकते हैं। इनसे किसी भी व्यक्ति या राष्ट्र की उन्नति हो ही नहीं सकती।

'इस गम्भीर विश्वास के साथ, जिसकी हमारे महान नेता महात्मा गांधी ने हमें शिक्षा दी है, हमने, जितनी भी योग्यता हममें है, उसके अनुसार शान्ति के

लिये चेष्टा की है; पर युद्ध का अभाव ही तो शान्ति नहीं है। यह एक वस्तु है जो ठोस है; यह जीवन का एक मार्ग है और सोचने तथा आचरण की एक प्रणाली है, और इसी प्रकार हम शान्ति का वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं जो राष्ट्रों के आपसी सहयोग की ओर हमें ले जायेगा।

'मुझे पूर्ण विश्वास है कि चीन और भारत के लोग इस महान उद्देश्य में, जिसके बिना संसार के लिये कोई आशा नहीं है, स्वयं को लगा देंगे और इसके लिये चेष्टाएँ करते रहेंगे।

'जिस उमंग और प्रेम के साथ इस देश के नागरिकों ने मेरा स्वागत किया है, मैं उसके लिये पूरी तरह कृतज्ञता प्रकट करने के हितार्थ शब्द नहीं पा रहा हूँ। हालांकि मेरी यात्रा अभी आरम्भ हुई है, फिर भी उनके प्रति उदार स्वागत ने मुझे गद्-गद् कर दिया है। श्रीमान प्रधान मंत्री महोदय, मैं चीन के महान नेता राष्ट्रपति माओ त्से तुंग के प्रति, आपके प्रति और आपकी सरकार के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।' (हिन्दुस्तान टाइम्स)

इसी भोज में श्री चाओ एन लाई ने अपने भाषण में पंडित जवाहरलाल नेहरू की यात्रा, भारत का शान्ति के लिये प्रयत्न और दोनों देशों की गहरी मित्रता से उत्पन्न हुई नई परिस्थिती के बारे में कहा—

'दुनियां के लोग शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की कामना करते हैं, पर कुछ शक्तियाँ हैं, जो इसका स्वागत नहीं करतीं। सीटो नामक गठबन्धन इसका उदाहरण है।

सीटो के सम्बन्ध में पंडित नेहरू द्वारा भारतीय पार्लियामेंट में दिये गये भाषण का उद्धरण देते हुये श्री चाओ ने कहा—'कि यह गलत और खतरनाक रवैया अभी भी नहीं छोड़ा जा रहा है और खतरा यह भी है कि इस (फौजी गुटबन्दी) के खतरे को एशिया के बाहर के क्षेत्रों में भी फैलाया जायगा।'

उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू के शान्ति क्षेत्र के फैलाने की बात का उदाहरण देते हुये कहा—

'स्पष्ट है कि शांति क्षेत्र स्थापित करने और उसको विस्तृत करने की नीति जितनी ही भारतीय जनता के हित में है उतनी ही एशियाई जनता के हित में

है। हम पंडित नेहरू के इस प्रस्ताव का स्वागत करते हैं और इस कार्य में कठिनाइयाँ दूर करने तथा शान्ति क्षेत्र स्थापित करने और विस्तृत करने के प्रयत्नों में परस्पर सहयोग करने के लिये तैयार हैं।'

महान भोज

भारतीय राजदूत की ओर से प्रधान मंत्री नेहरू के सम्मान में आयोजित स्वागत-भोज एक ऐतिहासिक भोज बन गया है, क्योंकि इस भोज में अब तक की इतिहास की सारी परम्पराओं को तोड़कर चीन के राष्ट्रपति श्री माओ त्से-तुंग भी सम्मिलित हुये थे। यह भोज दुनियाँ में अपनी तरह का पहला भोज रहा है जिसमें किसी देश के राजदूत द्वारा दिये गये निमन्त्रण पर उस देश का राष्ट्रपति भी सम्मलित रहा हो, पंडित जवाहरलाल के देश भारत को ही ऐसा गौरव मिला है।

यह भोज २१ अक्तूवर की संध्या को दिया गया था, भारत की ओर से वहाँ भारत के प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, उनकी पुत्री श्रीमती इन्दरा-गांधी, भारतीय परराष्ट्र मंत्रालय के प्रधान सचिव श्री एन० आर० पिल्ले और उप सचिव बहादुरसिंह, एम० एल० गेंद, के० एफ० रुस्तम, एन० के० सेशन तथा पंडित नेहरू के दल के तीन और सदस्य उपस्थित थे।

चीन की ओर से उपराष्ट्र पति श्री चुतेह, राष्ट्रीय लोक कांग्रेस की स्थायी समिति के अध्यक्ष ल्यु शाओ-चि और राज्य परिषद् के प्रधान मंत्री श्री चाओ एन लाई। उस समय सभी ने बड़ी जोर से करतल ध्वनि की जब चीन के राष्ट्र-पति माओ त्से तुंग ने भी पदार्पण किया।

इस भोज में विभिन्न देशों के राजदूत तो उपस्थित थे ही, साथ ही भारत चीन मैत्री संघ तथा अन्य जनवादी संगठनों के प्रमुख सदस्यों ने भी भाग लिया।

भारतीय राजदूत श्री राघवन ने भोज में पहला जाम पेश करते हुये कहा—'मैं चीन की महान जनता के प्रिय नेता, भारत के महान मित्र विश्वशान्ति के प्रबल समर्थक, महामहिम राष्ट्रपति माओ त्से तुंग के स्वास्थ्य की कामना के हेतु जाम पेश करता हूँ।'

भोज में चीनी लोक गणतन्त्र का राष्ट्रीय गान बजाया गया।

चीन के राष्ट्रपति श्री माओ त्से तुंग ने अपनी ओर से जाम उपस्थित करते हुये कहा—

'चीनी और भारतीय जनता दृढ़ता पूर्वक शान्ति के पक्ष में है, हमारे इन दोनों देशों के लोग, पूरे संसार की नाईं, शान्ति के लिये दृढ़ संकल्प होकर कार्य कर रहे है।

'आइये, हम चीन और भारत की जनता के सहयोग के लिये और दोनों देशों की जनता की समृद्धि के लिये,

'विश्वशान्ति के लिये,

'भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति श्री प्रसाद के स्वास्थ्य के लिये,

'प्रधान मंत्री श्री नेहरू की इस यात्रा और उनके स्वास्थ्य के लिये,

आज के इस भोज के मेजवान राजदूत श्री राघवन के स्वास्थ्य के लिये मधुपान करें।'

इस भोज में श्री चाओ एन लाई ने एक भाषण देते हुये कहा—'भारत चीन दोनों महान एशियाई शक्तियाँ हैं। दो हजार वर्ष से भी अधिक समय से भारत और चीन के बीच घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। इतिहास में कोई ऐसी घटना नहीं हुई कि दोनों देशों में कभी युद्ध हुआ हो।

'वर्तमान समय में हमारे दोनों देशों की जनता उपनिवेशी दमन की शिकार हुई है और दोनों ने उपनिवेश विरोधी संघर्ष किये हैं। आज हमारे दोनों देशों की जनता की यह कामना है कि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण शान्तिपूर्ण रहे, जिसमें हम अपने देशों का निर्माण कर सकें।

'और साथ ही हमारे दोनों देशों की जनता साम्राजी दखलन्दाजी के विरुद्ध तथा आर्थिक पिछड़ा पन दूर करने और पूरी राष्ट्रीय स्वाधीनता हासिल करने के लिये संघर्ष कर रही है।

'इस सबसे केवल इसी बात का आधार नहीं मिलता कि हमारे दोनों देशों की जनता के बीच मित्रतापूर्ण सहयोग हो बल्कि इससे सदियों पूर्व मजबूत हुई हमारी घनिष्ठ मित्रता और भी मजबूत होती है। हमारे महान पड़ौसी देश के

प्रतिनिध के रूप में पंडित नेहरू का चीनी जनता ने जो हृदय खोलकर स्वागत किया है, वह इसका सबूत है।

'यह गहरी मित्रता इस बात को प्रकट करती है कि हमारे दोनों देशों में मित्रतापूर्ण सहयोग की व्यापक सम्भावनाएँ हैं।

'मेरी नयी दिल्ली की यात्रा के समय ५ सिद्धान्तों का जो संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, वह ऐतिहासिक निधि है। चूंकि भारत और चीन शान्ति के साथ-साथ रहने के इन पाँच सिद्धान्तों के प्रणेता हैं, इसलिये हम पर यह जिम्मेदारी है कि अपने आपसी सम्बन्धों में हम इन सिद्धान्तों को आगे बढ़ायें और अमल में यह दिखायें कि ये सिद्धान्त दोनों पक्षों के लिये हितकर है, किसी के लिये हानिकारक नहीं।

'हमारा विश्वास है कि शान्ति के साथ-साथ रहने और मित्रतापूर्ण सहयोग से निश्चय ही धीरे-धीरे दूसरे एशियाई देशों तथा सारी दुनियाँ के देशों के साथ शान्ति से साथ-साथ रह सकना आसान हो जायेगा।

'दुनियाँ की जनता का बहुमत शान्ति के साथ-साथ रहने के सिद्धान्तों का स्वागत करता है। शान्ति से साथ-साथ रहने के पाँच सिद्धान्तों को अमल में लाने के लिये वे तैयार हैं। पर अब भी कुछ ऐसे अल्प संख्यक लोग हैं जो इसका स्वागत नहीं करते और इसके विपरीत काम कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में सबसे मुख्य उदाहरण 'सीटो गुट' का है।

'यह गलत और खतरनाक रवैया अभी छोड़ा नहीं गया है, और खतरा इस बात का है कि इसे एशिया के बाहर भी फैलाया जायगा। हमारा कहना है कि यह एशिया में असन्तोष का कारण है।

'शान्ति का क्षेत्र बनाने और उसे बढ़ाने को भारत की नीति, भारत की जनता के हितों के और साथ ही एशिया के दूसरे देशों की जनता के हितों के अनुकूल है। प्रधान मंत्री नेहरू के इस प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। हम भारत के साथ मिलकर कठिनाइयों को दूर करने और एशिया में एक शान्ति का क्षेत्र बनाने और उसका विस्तार करने के लिये एक साथ काम करने के लिये तैयार हैं।

'अभी हाल ही में भारत और चीन में जो व्यापारिक समझौता हुआ है, हम उसका स्वागत करते हैं। उससे हमारे दोनों देशों में आर्थिक सहयोग को बल मिलेगा।

'९६ करोड़ भारतीय और चीनी जनता का मित्रतापूर्ण सहयोग एशिया और दुनियाँ की शान्ति की रक्षा करने का एक महत्वपूर्ण साधन होगा।

'हम आशा करते हैं कि भारत और चीन की सुदृढ़ मित्रता और भी मजबूत होगी तथा विकसित होगी, जिसमें भारत और चीन के ये सम्बन्ध सारी दुनियाँ के सामने इस बात की मिसाल बन जायँ कि विभिन्न सामाजिक रिवाजों और विचारधाराओं के देश किस प्रकार शान्ति से साथ-साथ रह सकते हैं।'

(जनयुग से)

संगीत और बन्देमातरम

पंडित नेहरू के सम्मान में २१ अक्तूबर की रात में चीनी नृत्य और संगीत का जो समारोह हुआ, उसमें बंकिम बाबू का लिखा हुआ भारतीय राष्ट्र गीत बन्दे मातरम भी गाया गया। इसके साथ वाद्य यंत्रों (आर्केस्ट्रा) का इतना सुन्दर सामंजस्य था कि पंडित नेहरू ने इस गीत का रिकार्ड बनाकर देने की प्रार्थना की।

ध्यान देने की बात यह है कि भारत में इस गीत को राष्ट्रगीत इसलिये नहीं बनाया गया कि संगीतकारों को इसके साथ बैण्ड के स्वर मिलाने में कठिनाई अनुभव होती थी, किन्तु चीनी संगीतकारों ने आर्केस्ट्रा का बढ़िया सामंजस्य बैठाया।

चीन के समाचार पत्र

चीन के समस्त समाचार पत्रों में पंडित नेहरू की यात्रा को मुख्य शीर्षक देकर छापा गया। हवाई अड्डे पर पंडित नेहरू ने जो भाषण दिया उसे समस्त समाचार पत्रों ने ज्यों का त्यों प्रकाशित किया। पंडित नेहरू के सम्बन्ध के समस्त समाचार प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित किये गये।

दैनिक क्वांगमिन ने अपने सम्पादकीय में लिखा—

'पंडित नेहरू की यात्रा भारत चीन सम्बन्धों में प्रधान मंत्री चाओ एन लाई की यात्रा के पश्चात् एक और महत्त्वपूर्ण घटना है।

पत्र ने अपने इसी सम्पादकीय में लिखा—'दोनों देशों की मित्रता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है।'

चीन के मजदूरों के अखबार डेली वर्कर ने पंडित नेहरू का स्वागत करते हुए घोषणा की कि—'पंडित नेहरू की इस यात्रा से दोनों देशों के मित्रतापूर्ण सम्बन्ध अवश्य ही और घनिष्ठ होंगे, तथा इससे एशिया तथा दुनियाँ की शान्ति की रक्षा करने में मदद मिलेगी। हमारी हार्दिक कामना है कि एशियाई शान्ति के कार्य में दोनों देश और भी घनिष्ठता से सहयोग करें।'

चीनी युवकों की ओर से प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू के स्वागत में उनके मुख पत्र ने लिखा—

'राजसत्ता प्राप्त कर लेने के पश्चात् हमारे हृदय की सबसे बड़ी इच्छा है कि हम अपने देश को एक ऐसा शक्तिशाली और समृद्ध देश बना लें जिसकी ओर किसी को भी आँख उठाने की हिम्मत न पड़े। भारतीय जनता की भी यही इच्छा है कि शान्तिपूर्ण वातावरण में वे अपने देश का निर्माण करें। भारत और चीन की जनता की मित्रता को और आगे बढ़ाने का यह एक आधार है।'

वियतनाम और इण्डोनेशिया

वियतनाम और इंडोनेशिया दोनों ही बहुत छोटे राष्ट्र है, और दोनों ही अपने स्वाधीनता के संघर्ष में फँसे रहे हैं। पंडित जवाहरलाल ने यदाकदा जब भी दुनियाँ के लिए शान्ति का जिकर किया तब वियतनाम और इण्डोनेशिया का जिकर अवश्य आया। क्योंकि साम्राज्यवादी देशों ने इन देशों की जनता के स्वाधीनता संग्राम को कुचलने के लिये नीच से नीच व्यवहार और बड़े से बड़ा अस्त्र इनके विरुद्ध प्रयोग किया, मगर वियतनाम और इंडोनेशिया की महान् जनता ने कभी साम्राज्यवादियों के क्रूर बल प्रयोग के आगे घुटने नहीं टेके।

पंडित नेहरू पहले वियतनाम गये, पश्चात् इंडोनेशिया में। शान्ति के

पुजारी भारतीय प्रधानमन्त्री का दोनों ही देशों की जनता ने हृदय खोलकर स्वागत किया और शान्ति के लिये कदम से कदम मिलाकर भारत के साथ चलने का दृढ़ संकल्प दुहराया।

वियतनाम

आजाद वियतनाम की राजधानी हनोई की मूक जनता ने प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के स्वागत के लिये सारे शहर को पुष्पों और फूलमालाओं से सजाया था। ऐसा प्रतीत होता था कि शहर में विवाहों की धूम है। चारों ओर उल्लास ही उल्लास फैला हुआ था।

वियतनाम के उपप्रधानमन्त्री श्री फामवांग दौन ने हवाई अड्डे पर पंडित नेहरू का स्वागत किया। वहाँ से नेहरूजी को राष्ट्रपति होचीमिन्ह से मिलने के लिये ले जाया गया।

तीन मील लम्बे मार्ग पर दोनों ओर लाखों हर्षोत्फुल नर-नारी कतार बाँध-कर खड़े हुए थे, जिन्होंने पंडित नेहरू पर फूलों की वर्षा की।

राष्ट्रपति होचीमिन्ह और पंडित नेहरू का मिलन दो देशों की साम्राज्य-विरोधी, शान्तिप्रेमी जनता के गहरे आपसी प्रेम का दृश्य था। राष्ट्रपति होची-मिन्ह ने पंडित नेहरू को भुजाओं में भर लिया और गले से लगा लिया।

राष्ट्रपति होचीमिन्ह और पंडित नेहरू दो व्यक्ति या महान् व्यक्ति गले नहीं मिले, बल्कि दो राष्ट्र गले मिले।

संवाददाताओं से पंडित नेहरू ने कहा—

'डाक्टर होची-मिन्ह साक्षात् शान्ति मूर्ति हैं।'

वियतनामी जनता के गौरवशाली स्वतन्त्रता संग्राम के इस महान् नेता से पंडित नेहरू की यह पहली मुलाकात थी, किन्तु डाक्टर होचीमिन्ह नेहरू जी के पिता पंडित मोतीलाल नेहरू से साम्राज्य विरोधी संघ के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में मिल चुके थे।

डाक्टर होचीमिन्ह और पंडित नेहरू ने अपनी बातचीत के पश्चात् एक संयुक्त विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसमें चाऊ-नेहरू के पाँच सिद्धान्तों का समर्थन

किया गया था । दोनों ने भारत और वियतनाम के प्राचीन सम्बन्धों को पुर्न-स्थापित करने और उन्हें मजबूत करने पर जोर दिया ।

इंडोनेशिया

इंडोनेशिया के दैनिक 'हारियान रैयत' ने पंडित नेहरू की चीन यात्रा पर लिखा है कि—'एशिया के दो महान प्रतिनिधि मिल रहे हैं । यह शान्ति का मिलन है और इससे विश्व शान्ति को सबल बनाने में हमें प्रोत्साहन मिलेगा ।

पंडित नेहरू ने शेनयांग में कुचगाँव, अनशान का विराटलोई का कारखाना और डैरन का बन्दरगाह देखा ।

पत्रकारों के बीच

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पत्र सम्वाददाताओं के सम्मेलन में बताया कि लंदन और न्यूयार्क के कुछ अखबारों में जो भारत तथा चीन के बीच मतभेदों के समाचार छपे हैं, वे सरासर झूठ हैं । उन्होंने कहा—

'हम और चीन दोनों शान्ति की कामना करते हैं, क्योंकि जो उन्नति हम करना चाहते हैं, उसका बुनियादी आधार यही है । हम दोनों के लिए यह पवित्र आकांक्षा मात्र नहीं हैं, हमारे लिए यह महत्वपूर्ण आकांक्षा है ।"

पंडित नेहरू ने कहा—कुछ मामलों में हम दोनों की समस्याएँ एक हैं, और दोनों की परिस्थितियाँ भी एक हैं । हम दोनों एक दूसरे से सीख सकते हैं । चीन और हम दोनों ही चाहते हैं कि हमारे देशों के करोड़ों लोग सुखी और समृद्ध हो सकें ।

'मुझे आशा है कि दोनों देशों के बीच सम्पर्क और अधिक बढ़ेगा, यह आवश्यक है कि हम दोनों एक दूसरे को समझें ।'

फारमोसा के सवाल पर उन्होंने कहा—'हम केवल एक ही सरकार को मानते हैं । और वह है चीन की जनवादी सरकार ।'

अन्तिम भाषण

२७ अक्टूबर को पंडित जवाहरलाल नेहरू का एक भाषण रेडियो से सुनाया गया । जिसे पहले ही रिकार्ड कर लिया गया था—

'एक सप्ताह पूर्व मैं पेकिंग पहुँचा था और कल इस प्रसिद्ध और उदार नगर से बिदा लेने वाला हूँ । तीन दिन पश्चात् मैं चीन से वापस भारत के लिए रवाना हो जाऊंगा ।

'मैं नये चीन के, जिसकी कुछेक झांकियाँ लेने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अगणित प्रभाव अपने साथ ले जाऊँगा । सर्वाधिक, मैं उस भरपूर मित्रता और सत्कार की यादगार अपने साथ ले जाऊंगा जो चीन के उदार हृदय लोगों से मुझे प्राप्त हुई है । वह यादगार बनी रहेगी और मैं चीनी जनता की कृपा और प्रेम को कभी भी नहीं भुला सकूँगा ।

'बीस वर्ष पहले चीन में सुदीर्घ अभियान आरम्भ हुआ था । मुझे स्मरण है मैं उसके समाचारों को रोमांच और प्रशंसा की भावना के साथ पढ़ा करता था । वह अभियान सैनिक इतिहास में योग्यता और जबरदस्त सहनशीलता के एक कारनामे के रूप में स्मरणीय बन गया है । मेरे लिये वह अभियान एक राष्ट्र और उसकी जनता के सुदीर्घ अभियान का प्रतीक बन गया था ।

'चीन और भारत दोनों ही बहुत वर्षों से अपने स्वाधीनता और समृद्धि के अभियान में व्यस्त हैं । हम विभिन्न मार्गों पर चलते हुए आज अपनी यात्रा के एक पड़ाव पर आ पहुँचे हैं, एक महत्वपूर्ण पड़ाव है जहाँ हम स्वतन्त्र और प्रभुसत्ता सम्पन्न देशों की तरह काम कर सकते हैं, पर फिर भी वह एक पड़ाव ही है और इससे पूर्व की हमारी अगणित जनता सुख और समृद्धि के उस स्तर पर पहुँचे, जिस पर कि उसे पहुँचना चाहिये, हमें अभी बहुत आगे बढ़ना है ।

'इस तरह ये दोनों देश इस महान् प्रयत्न में लगे हैं, और मुझे लगता है कि दोनों ही एक दूसरे से कुछ सीख सकते हैं । भले ही उनकी कुछ समस्याएँ अलग-अलग हों, और उनका ढंग भी एक जैसा न हो, फिर भी दोनों आपस में अनेक प्रकार का सहयोग कर सकते हैं । दो राष्ट्रों और उनके नागरिकों में जो महत्वपूर्ण वस्तु है, वह सहिष्णुता और मित्रता की भावना है । यदि ये हैं तो अन्य चीजें स्वयमेव आजाती हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि चीन और भारत में ये दोनों वस्तुएँ मौजूद हैं।

'मैं भारत में अपने कार्य पर जो काफी भारी है, लौट जाऊँगा, पर इस

महान् चीन देश के अपने थोड़े से प्रवास की और इसकी महान जनता की मधुर स्मृतियाँ मेरे साथ रहेंगी। ये मधुर स्मृतियाँ मुझे साहस और बल प्रदान करेंगी। मुझे पूर्ण आशा है कि उन महान् चेष्टाओं में जिनमें हम लगे हैं, और विश्व में शान्ति की सुदृढ़ स्थापना के महानतम प्रयास में हमारे ये दोनों देश परस्पर सहयोग करेंगे और सहायता पहुँचायेंगे।

'मैं पीकिंग के लोगों के प्रान्त और चीन की जनवादी सरकार और जनता के प्रति उनकी मित्रता और सरकार के लिए एक बार फिर अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।'

धन्यवाद सन्देश

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने चीन से भारत के लिए चलते समय राष्ट्रपति माओ-से-तुंग को एक धन्यवाद सन्देश भेजा। जिसमें कहा—

'इस छोटी सी पर कभी न भुलाई जा सकने वाली यात्रा के पश्चात् चीन से बिदा होते समय मैं एक बार फिर आपको इस उदार सत्कार और मित्रता के लिए जो मुझे प्राप्त हुआ है धन्यवाद और कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ। मैं इसे अपने दोनों देशों और उनके नागरिकों की मित्रता का प्रतीक मानता हूँ। मुझे आशा है कि दोनों देश एक दूसरे के हितों के लिए, विश्व शान्ति के लिए आपस में इससे भी अधिक सहयोग करेंगे।'

चाओ एन लाई को

'इस महान देश की मेरी यह छोटी सी यात्रा समाप्त हो गई है, और अब हम यहाँ से घर के लिए बिदा हो रहे हैं। मुझे यहाँ आकर, यहाँ जो महान कार्य चल रहा है, उसकी कुछ झलक देखकर तथा चीनी जनता के नेताओं से मिलकर अपार प्रसन्नता हुई है। मैंने एक महान राष्ट्र को, जो न केवल विस्तार में वरन् गुणों में भी महान् है, देखा है। मैं इस मित्रता और आदर सत्कार के लिए भी, जो इस पूरे प्रवास में मेरे चारों ओर रहा है, आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।'[२]

---

[२] भारत में चीन के राजदूत के कार्यालय की विज्ञप्ति से।

पंचम अध्याय

पाक-अमरीकी गठ जोड़
एशिया की शान्ति को खतरा

फौजी समझौता

पाकिस्तान और भारत एक देश के दो भाग है, अतएव दोनों को मिलकर रहना चाहिये, यह बात प्रत्येक मनुष्य के दिमाग में आसानी से उतर सकती है, क्योंकि पाकिस्तान के समस्त उच्च और छोटे शासनाधिकारी और भारत के समस्त शासनाधिकारी एक ही माँ की गोदी में पले और बड़े हुये और इस तरह एक देश के पश्चात् दो देश बन जाने के बाद भी सबसे पहले भारत और पाकिस्तान के शासनाधिकारी भाई-भाई हैं। जनता तो सदैव थी और रहेगी भी।

मगर बात इससे बिल्कुल उल्टी है, भारत यदि दिन कहता है तो पाकिस्तान रात, भारत यदि शान्ति के लिये प्रयत्न करता है तो पाकिस्तान युद्ध के लिये। और ऐसी ही कुराफातों के कारण पाकिस्तान की जनता परेशान है। और यही कारण है कि आज भी पाकिस्तान अर्ध गुलाम देश है, क्योंकि अभी हाल ही में जब पाकिस्तान के गवर्नर जनरल इलाज के लिये योरोप गये तो उन्हें इंगलैण्ड की महारानी से आज्ञा लेनी पड़ी स्थानापन्न गवर्नर जनरल के लिये नामजद करने की[1] (भले ही-चाहे यह बात औपचारिक ढंग से हो) इस बात को जिसने भी अखबारों में पढ़ा लज्जा से सर झुक गया कि हमारा पड़ौसी देश जो कभी हमारा ही देश था आज भी साम्राज्यवादियों की गुलामी में जकड़ा हुआ है।

गत प्रधान मंत्री श्री मुहम्मद अली पहले पाकिस्तान की ओर से अमेरिका में राजदूत थे, उनके बारे में प्रसिद्ध है कि वह अमेरिका की चाटुकारिता करने के लिये बड़े चतुर हैं। यही कारण था, कि एक दम उन्हें बिना किसी चुनाव आदि के ही राजदूत पद से हटाकर पाकिस्तान का प्रधान मंत्री बना दिया गया था। इसमें भी एक भेद छिपा था।

अमरीका वास्तव में पाकिस्तान के भीतर रहकर भारत और रूस तथा चीन के विरुद्ध अपनी फौजी नाके-बन्दी करना चाहता था। और इसमें उसे तत्काल

[1] अब पाकिस्तान भी गणराज्य घोषित हो गया है।

कुछ लाभ भी पहुँचा था।

पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री मुहम्मद अली ने जो पहले अमरीका में राजदूत थे अमरीका के साथ एक फौजी समझौता किया, जिसके अनुसार अमरीका की फौजें पाकिस्तान में रहेंगी निश्चय हुआ।

श्री मुहम्मद अली किस प्रकार प्रधान मंत्री बने थे, यह भी इसी सम्बन्ध की एक कड़ी है अतएव इस पर बिना प्रकाश डाले बात अधूरी ही रह जायेगी ?

जिन दिनों श्री मुहम्मद अली अमेरिका में राजदूत नियुक्त थे, उन दिनों पाकिस्तान में ख्वाजा नाजिमुद्दीन प्रधान मंत्री थे। उन दिनों पाकिस्तान की भीतरी दशा अत्यन्त खराब थी, लगातार मँहगाई बढ़ती जा रही थी, मगर ख्वाजा नाजिमुद्दीन को वहाँ के गवर्नर जनरल ने इसलिये प्रधान मंत्री बनाया था कि वह उनकी हाँ में हाँ मिलाते थे, और अमेरिका तथा इंगलैण्ड के इशारे पर चलने के लिये तैयार थे, क्योंकि दूर के ढोल सुहावने के अनुसार उन्होंने अमेरिकी शासन को पसन्द किया था, मगर 'जब सर पर आई मौत तब अपना वह जो काम आये, एक ओर विद्यार्थियों का आन्दोलन तेजी पर था, ट्रेड यूनियनें आगे बढ़ रही थीं और शान्ति के मोर्चे के लिये पाकिस्तान के जनवादी नेता आगे बढ़ रहे थे, तब यकायक ख्वाजा साहब वह नहीं कर सके जो अमेरिका चाहता था। इसलिये उनका बिस्तर एकदम गोल हो गया और अमेरिका में रहने वाले राजदूत श्री मुहम्मद अली को तुरन्त प्रधान मंत्री बना दिया गया। इससे अमेरिका की पांचों घी में थीं, क्योंकि आखिर उनका पक्का शिष्य मुहम्मद-अली प्रधान मंत्री बन गया था।

पर अमेरिका का ये खेल उस समय खुल गया जब पाकिस्तान की जनता ने वास्तविकता जानी।

प्रधान मंत्री बनने के तुरन्त बाद ही अमेरिका से नये-नये समझौते हुये। उन्हीं में एक फौजी सहायता का समझौता था। पाकिस्तान की जनता को ऐसे समय जब विश्व विस्फोट के मुँह पर था, बदनाम अमेरिका से फौजी समझौता पसन्द न आया औरप्रत्येक देश ने डटकर इसका विरोध किया।

पंडित नेहरू ने कहा—

'अमरीका द्वारा पाकिस्तान को दी जाने वाली यह सहायता शान्ति की ओर नहीं, युद्ध की ओर एक कदम है। वह सिर्फ विश्व युद्ध की ओर ही एक कदम नहीं है, बल्कि ऐसा कदम है, जो युद्ध को हमारे सीमान्तों पर ले आता है। वह एक एशिया विरोधी कदम है···।'

भला ये फौजी सहायता कैसी थी, जिस पर पाकिस्तान के प्रधान मंत्री ने हस्ताक्षर किये थे। उसकी कुछ मुख्य शर्तें इस प्रकार है—

धारा एक की दूसरी उपधारा के अनुसार अमरीकी सरकार से पहले इजाजत लिये बिना पाकिस्तान अमरीका द्वारा दिये गये फौजी सामान का इस्तैमाल नहीं कर सकेगा।

धारा ४ के अनुसार अमरीका को हक होगा कि मदद का कैसे और कहाँ इस्तैमाल किया जा रहा है, इसे देखने के लिए वह अपने अफसरों को तैनात करे। इस काम को वह अच्छी तरह कर सकें, इसके लिए पाकिस्तान को उन्हें पूरी सुविधा और अधिकार देने होंगे।

धारा पाँच के अनुसार पाकिस्तान इस बात के लिए बाध्य होगा कि अमरीकी सरकार को वे सब कच्चे और अर्ध कच्चे माल, जिनकी उसके पास कमी हो या वे माल जिनकी उसके पास भविष्य में कमी हो सकती है, जितनी मात्रा में और जब वह चाहेगा तब तक तै शुदा शर्तों पर उसके पास भेजता रहेगा।

संक्षेप में हम यों कह सकते हैं, कि इस समझौते के अनुसार अमरीकी जंगबाजों ने पाकिस्तान, उसकी जमीन, उसके साधनों और उसकी फ़ौजों को पूरे तौर से अपने शिकंजे में जकड़ लिया है। वह उनका एक फ़ौजी अड्डा बन गया है, जिनका इस्तैमाल वह अपनी फौजी योजनाओं के बढ़ाने और उनमें हिन्दुस्तानको घसीट कर उसकी आजादी और प्रभुसत्ता को समाप्त करने के लिए करेंगे।

२३ नवम्बर को टैंकों और अन्य फौजी सामान से लदा पहला अमरीकी बेड़ा करांची के तट पर आकर लगा तो देश के सारे अखबारों ने इसका विरोध किया। एक प्रसिद्ध अखबार ने लिखा—

'यह वही सामान है, जिसने कुछ वर्ष पहले चीन के महाद्वीप में बरसों तक न बुझने वाली गृहयुद्ध की आग लगा दी थी। करोड़ों चीन वासियों का होम

लेकर ही वह आग शान्त हुई थी। यह वही सामान है जिसने कोरिया की धरती को लहू लुहान करके उसके हृदय के दो टुकड़े कर दिये हैं। यह वही सामान है जो सात वर्षो तक हिन्द चीन में भाई को भाई से लड़ाता और कटाता रहा है, और अब भी उसका पीछा नहीं छोड़ रहा है। यह वही सामान है जो मध्य पूर्व के मुस्लिम देशों में आये दिन खून की नदियाँ बहाता रहा है। यह वही सामान है जो 'नेटो' और 'सीटो' और लन्दन और पैरिस समझौतों के रूप में तमाम योरोप और एशिया के अमनोअमान के लिए इन महाद्वीपों के देशों की आजादी और प्रभुसत्ता के लिए खूनी खतरा बनकर मँडरा रहा है।

'उसके ऊपर करोड़ों मासूम इन्सानों के लहू के दाग हैं। उसकी कर्कश आहनी आवाज के नीचे करोड़ों नेताओं और माताओं की सिसकती आहें हैं। वह जहाँ गया है, उसने मौत की ही खेतियाँ बोई हैं, तबाही की ही आँधियाँ चलाई हैं।'

आगे चलकर इसी अखबार ने लिखा है कि 'आने के पहले ही पाकिस्तान की आजादी को रोंद डाला।'

अखबार ने लिखा है—'खतरे की गम्भीरता को समझ लेना आवश्यक है। मौत का वह सामान उस पाक अमरीकी समझौते के मातहत आ रहा है जो गत मई १९५४ में हुआ था।

'जिन दिनों पाकिस्तान के साथ इस समझौते की अमरीकियों ने बातचीत शुरू की थी उन दिनों कोरिया और काश्मीर में ही उनकी पराजय हुई थी। कोरिया में सैनिक और कश्मीर में कूटनीतिक।

'उसके बाद से उनके पैरों के नीचे से और काफी जमीन निकल गई है। डीन लीन फू की विजय और जैनेवा सम्मेलन की सफलता ने हिन्द चीन में उनकी योजनाओं को असफल कर दिया। चीन को घेरने, अन्तर्राष्ट्रीय दुनियाँ से अलग रखने, उसके विकास को रोकने और भारत चीन के बीच जहर बोने की उनकी कोशिशें भी बेकार गईं। 'सीटो' का सिक्का भी एशियाई देशों में न चल सका। और फिर अन्त में पूर्वी बंगाल के चुनावों में मुस्लिम लीग की हार के बाद स्वयं पाकिस्तान में भी उनके और उनके आदमियों के

लिए गम्भीर संकट पैदा हो गया।

'इन घटनाओं से वे और भी अशान्त और अधीर हो उठे हैं। हिन्दुस्तानी भूखण्ड को यदि वे अपने गिरफ्त में लेना चाहते हैं, तो उनके लिए 'अब या कभी नहीं', का सवाल हो गया है।

इस अखबार की दो टूक राय से अमेरिका के पत्र 'टाइम्स' की भी सांस बन्द सी हो गयी, जिसने इस सहायता के आने से दो सप्ताह के पूर्व लिखा था—

'बिना किसी खून खच्चर के ही पाकिस्तान एक अस्थिर पश्चिम पक्षी जनतन्त्र से एक अधिक ठोस, पश्चिम पक्षी फौजी डिक्टेटरशिप में बदल गया।'

न केवल फौजी गोला बारूद ही अमेररिका से आने के लिये पाकिस्तान ने समझौता किया वरन् अमेरिका के पूँजीपतियों को उनकी ही शर्तों पर पाकिस्तान में पूँजी लगाकर व्यापार के लिए भी निमन्त्रण दे दिया था। दूसरे शब्दों में जब विश्व के समस्त राष्ट्र उपनिवेशवाद के विरुद्ध और पूँजीवादी प्रणाली के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं या विजय पा चुके हैं, तब ऐसे युग में पाकिस्तान स्वयं अपने आप अमेरिका का उपनिवेश बनने की तैयारी कर रहा था।

और जनता के सामने एक नया ढोंग पाकिस्तान का गवर्नर जनरल रच रहा था, सर्वदलीय सरकार का। और इस नई सर्वदलीय सरकार के बनने के बावजूद भी जिसमें डाक्टर खान जैसे व्यक्ति मौजूद थे, वहाँ फौजी शासन लागू कर दिया। केवल कहने भर के लिए पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री मुहम्मदअली थे, वास्तविक सत्ता तो पूर्वी पाकिस्तान के बदनाम भूतपूर्व गवर्नर जनरल सिकन्दर मिर्जा के हाथ में थी। जनरल सिकन्दर मिर्जा अमेरिका के विश्वस्त आदमी हैं, और इन्हें बंगाल का गवर्नर भी इसीलिये बनाया गया था कि ये वहाँ की संयुक्त मोर्चे की सरकार को समाप्त कर दे और उसने समाप्त भी कर दी।

इस्कन्दर मिर्जा से जब बंगाल में गवर्नरी शासन के समाप्ति के बारे में एक संवाददाता ने पूछा तो उसने बेशर्मी से उत्तर दिया—

'क्यों? गवर्नरी शासन का खात्मा क्यों किया जाय? लोग उससे खुश हैं, फिर उसे खत्म करने की क्या जरूरत है।'

पाकिस्तान के इस राजनीतिक नाटक के पीछे मध्यपूर्व के देशों का इतिहास

दुहरा रहा है, जहाँ साम्राज्यवादियों के इशारे पर असन्तुष्ट जनता को भ्रम में डालने के लिए और अपना शोषण और तेज करने के लिए छठे छमाये सरकारें बदलने के नाटक होते रहे हैं।

लियाकतअली की हत्या, नाजिमुद्दीन का गद्दी से उतारा जाना, मुहम्मदअली का एकाएक प्रधानमन्त्री बनाया जाना और फिर संकट काल की घोषणा, संविधान सभा का भंग होना—पाकिस्तान में साम्राज्यवादियों के इस नाटक का अन्त यहीं नहीं है। और अब मुहम्मदअली का भी पत्ता साफ।

पता नहीं पाकिस्तानी जनता को अभी क्या-क्या देखना है, क्योंकि अभी तो अमेरिका ने केवल पैर पसारे हैं पाकिस्तान में और जब वह पूर्ण रूपेण पाकिस्तान में काबिज हो जायेगा तब निश्चय ही पाकिस्तान के नागरिक गुलाम भारत की याद करेंगे।

अतएव पाकिस्तान के नागरिकों का कर्तव्य है कि वह अपने देश में शान्ति बनाये रखने के लिये हर ऐसे कदम का विरोध करें, जिससे युद्ध नजदीक आता दिखाई दे।

षष्ठम अध्याय

पंचशील और बाड़ुंग सम्मेलन

एशियाई कान्फ्रेंस

पंचशील और बाडुंग सम्मेलन से पूर्व यदि हम एशियाई सम्मेलन का जिकर नहीं करेंगे तो बाडुंग सम्मेलन की भूमिका पूरी नहीं होगी।

एशियाई सम्मेलन शान्ति कमेटी की ओर से बुलाया गया था, जिसमें एशिया के लगभग समस्त राज्यों ने भाग लिया था, और उनकी जनता के प्रतिनिधियों ने देहली में आकर एशियाई देशों में मित्रता स्थाई रखने के लिये विचार-विमर्श किया था। यह सम्मेलन ६ से १० अप्रैल तक नई दिल्ली में हुआ।

सम्मेलन में निम्न देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया—

(१) चीन (२) जापान (३) सोवियत संघ (४) बर्मा (५) श्री लंका (५) कोरिया (६) लेबनान (७) मंगोलिया (८) पाकिस्तान (९) सीरिया (१०) जौर्डन (११) वियतनाम (१२) मिश्र और (१३) भारत।

पहली बार देहली में एक सार्वजनिक जलसे में एशिया के समस्त राष्ट्रों के झंडे फहराये गये।

सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुये अपने भाषण में श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में कहा—'पंचशील के पांच सिद्धान्त हमारे सम्मेलन की आधारशिला हैं।'

उन्होंने अपने भाषण में बताया—'हम एक दूसरे के प्रति कोई जिम्मेदारी ले रहे हैं तो वह शान्ति, सामाजिक, न्याय, व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये तथा शोषण के खिलाफ है।'

जापानी प्रतिनिधि मण्डल के नेता ने अपने भाषण में कहा—'पंचशील सारे एशिया की मुक्ति और स्वतन्त्रता के लिए आधारभूत सिद्धान्त है। जापान जापानियों के लिए और एशिया एशियाइयों के लिए है।'

वियतनाम के प्रतिनिधि मंडल के नेता ने भारत के शान्तिपूर्ण प्रयासों की सराहना की और कहा—'वियतनामी जनता अपनी अर्थ व्यवस्था का निर्माण करने के लिये पूर्ण शान्ति चाहती है।'

पाकिस्तान के प्रतिनिधि मौलाना भसानी ने अपने जोरदार शब्दों में कहा—'इस सम्मेलन में भाग लेना मेरे जीवन की गौरवपूर्ण घटना है।' उपनिवेशवाद पर करारी चोट करते हुए वह बोले—'एशिया अब जाग गया है, और गुलामी के बन्धनों से पूरी तरह मुक्त होकर ही रहेगा।'

अरब देश के प्रतिनिधियों की ओर से डा० दवालिवी बोले; उन्होंने कहा—'साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने संघर्ष में अरब देशों को एशिया के अन्य बन्धु-राष्ट्रों से सहायता पाने की बड़ी आशा है।'

और सोवियत प्रतिनिधि मंडल के नेता ने कहा—'दुनियाँ की शान्ति की रक्षा का भार आज एशिया पर पड़ा है।' उन्होंने कहा—'राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम करने के लिए 'नेहरू-चाऊ' घोषणा के सिद्धान्त ठोस आधार प्रदान करते हैं।'

अगले दिन बहस के दौर में जापान के प्रतिनिधिमण्डल की ओर से एक प्रस्ताव आया, जिसमें उन्होंने सात बातें एशिया में शान्ति स्थापना के लिये आवश्यक बतलाईं।

गोआ, मलाया, पश्चिमी हरियान में उपनिवेशी शासन समाप्त किया जाय,

एशिया को घेरने वाली फौजी सन्धियाँ और गुटबन्दियां समाप्त की जायँ,

एटमी हथियारों पर रोक लगाई जाय,

फारमोसा और दूसरे चीनी टापुओं पर से अमरीकी कब्जा समाप्त किया जाय,

एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन करके कोरिया को संयुक्त किया जाय,

वियतनाम को संयुक्त करने के लिए जेनेवा समझौते का पालन किया जाय,

पंचशील सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाय।

मौलाना भसानी ने अपने भाषण में—पाकिस्तान के दक्षिणी पूर्वी एशिया फौजीगुट (सीटो) में सम्मिलित होने का विरोध किया। उन्होंने कहा कि 'यह फौजी गुटबन्दी विदेशियों के नेतृत्व में हो रही है। दो तीन देशों को छोड़कर सारे एशिया ने इसकी निन्दा की है।'

जापानी प्रतिनिधि मंडल के नेता श्री जी चीरो मतनूमोतो ने माँग की कि ऐटमी हथियारों पर एकदम रोक लगाई जाय तथा एशिया में जो विदेशी फौजी अड्डे हैं उन्हें समाप्त कर दिया जाय।

उन्होंने बताया अमेरिका ने अकेले जापान में सात सौ फौजी अड्डे बना रखे हैं और ओकीनावा को स्थायी किला बना दिया है, कोरिया और हिन्दचीन के युद्धों में इन अड्डों को पूरी तरह इस्तैमाल किया गया था।

भारतीय प्रतिनिधि डाक्टर अनूपसिंह ने माँग की कि विदेशी हिन्द चीन के सम्बन्ध में अब दखल देना बन्द कर दें। उन्होंने माँग की कि मौजूदा ऐटमी हथियार बन्द कर दिये जायँ और उनके बनने पर रोक लगा दी जाय। उन्होंने यह भी माँग की कि सारी दुनियाँ में उपनिवेशवाद खतम किया जाय और एशिया से समस्त विदेशी फौजें हटा दी जायँ।

ट्रांस जार्डन के प्रतिनिधि ने कहा कि उनके देश की जनता इराक तुर्की फौजी सन्धि और हर तरह की फौजी गुटबन्दी के विरुद्ध है।

कोरिया की प्रतिनिधि श्रीमती पाक देन आई ने कहा—कि एशिया के समस्त देश कोरिया का बटवारा रुकवाने में सहायता करें और माँग की कि कोरिया से समस्त विदेशी फौजें हटा ली जायँ।

सम्मेलन ने सर्व सम्मति से कुछ प्रस्ताव एशियाई जनता से अपील के रूप में पास किये—

प्रस्ताव

'एशिया के साथियो'

(१) 'नई दिल्ली में हम ऐसे अवसर पर मिले हैं, जब इतिहास का एक नया अध्याय खुल रहा है। प्राचीनकाल में हमारे लम्बे ऐतिहासिक सम्बन्ध रहे हैं। हमने वैभव के वे दिन देखे हैं जो हमारी अमूल्य धरोहर हैं। उन दिनों की यादगार आज भी हमारे दिलों में बसी है। हम सबने एक साथ पतन, शोषण और राष्ट्रीय अपमान के दिन देखे थे। वह अन्धकारमय शोकपूर्ण समय था। अब हम अन्धकार से बाहर निकल आए हैं। हमारी करोड़ों जनता के हृदय

के तार आज नई उमंगों से, नई आशाओं से बज उठे हैं। हम आगे बढ़ते जा रहे हैं। हमने शपथ ले ली है कि जिस आजादी को हमने बड़ी मुश्किल से हासिल किया है, उसकी हम रक्षा करेंगे। उसे हम कभी भी हाथ से जाने न देंगे। हमने शपथ ली है कि हम शान्ति की रक्षा करेंगे, क्योंकि शान्ति ही एशिया की अन्तरात्मा की आवाज है।

'हमें अनेक विकट समस्याओं का मुकाबिला करना होगा। लेकिन महान परिवर्तनों के जमाने में तो यह अनिवार्य होता है। हमें निराश होने की जरूरत नहीं। हम सब मिलकर इन समस्याओं का सामना करेंगे और इन्हें हल करेंगे। हम कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ेंगे और अपनी जनता के लिए महान भविष्य का दरवाजा खोल देंगे। उनकी शक्ति और प्रबल प्रेरणा को हम निर्माण में लगा देंगे।

'हम एशिया की समस्त जनता को आमन्त्रित करते हैं कि पंचशील में निहित ५ सिद्धान्तों को बिना शर्त स्वीकार कर आपस में एकता की भावना को बढ़ावे। हम आशा करते हैं कि एशिया की जनता विभिन्न समस्याओं को एक एशियाई दृष्टिकोण से देखेगी, संकुचित क्षेत्रिय या जातीय दृष्टिकोणों से नहीं, बल्कि व्यापक मानवता के एक अभिन्न अंग के रूप में।

(२) एशियाई देशों का यह सम्मेलन, उन पाँच सिद्धान्तों का पूर्ण समर्थन करता है जिसका भारत और चीन के प्रधान मन्त्रियों ने ऐलान किया है। कई अन्य देश इन सिद्धान्तों का समर्थन पहले ही कर चुके हैं। ये सिद्धान्त ये हैं—

एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना।

एक दूसरे पर आक्रमण न करना।

एक दूसरे के घरेलू मामलों में दखल न देना।

समानता और एक दूसरे के लाभ।

शान्ति के साथ-साथ रहना।

यह सम्मेलन भारत के प्रधानमन्त्री पं० नेहरू के साथ इस बात पर एकमत है कि ये पाँच सिद्धान्त विश्व को एशिया की चुनौती हैं और हर देश को इस चुनौती का साफ-साफ जवाब देना होगा। हम एशिया और विश्व के हर देश

और जनता से अपील करते हैं कि वे इन सिद्धान्तों का समर्थन करें और समझदारी के साथ इनका पक्ष मजबूत करें।

हम एशिया और विश्व की सभी सरकारों से अपील करते हैं कि वे इन सिद्धान्तों को मानकर, इन्हीं के आधार पर अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित करें।

(३) यह सम्मेलन सीटो और तुर्की-इराक समझौते जैसे सभी फौजी समझौतों व फौजी अड्डों का पूरी तरह से विरोध करता है, जिनका एशियाई देशों पर सीधा-सीधा असर पड़ता हो। हम एशिया की भूमि पर से सभी विदेशी फौजों के हटाए जाने की माँग करते हैं।

हम एशियाई देशों पर फौजी समझौता में शरीक होने के लिए सीधे तौर से या अन्य किसी प्रकार से दबाव डाले जाने की निन्दा करते हैं।

सम्मेलन का प्रभाव

दिल्ली में हुए इस सम्मेलन के प्रस्तावों का अभिनन्दन करते हुए पीकिंग से निकलने वाले दैनिक पत्र 'छन मिन जूयाओ' ने अपने सम्पादकीय में लिखा—

'एशियाई देशों के सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव एशिया में शान्ति की सुरक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण आवाहन है। इनसे एशियाई जनता को अपने शान्ति और आजादी के संघर्ष में महान प्रेरणा और उत्साह मिलेगा। एशियाई जनता के बीच एकता और मैत्री सम्बन्धों को दृढ़ करने, सहअस्तित्व के पाँच सिद्धान्तों को लागू करने, विश्व युद्ध को बचाने और सुदूरपूर्व में तनातनी को समाप्त करने में ये प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण भाग लेंगे।'

पत्र ने आगे लिखा—

'प्रस्ताव ने जोर दिया है कि गोआ, पश्चिमी इरयान और ओकीनावा, जो विदेशी अधिकार में हैं, भारत, इन्डोनेशिया और जापान को लौटा दिये जायें, तथा मलाया को पूर्णतया आजाद किया जाय।

'एशिया और विश्व शान्ति को सबसे बड़ा खतरा आज अमरीका की हमलावर नीति से है, जिसने चीन के ताइवान क्षेत्र पर कब्जा जमा रखा है।

'चीनी जनता ताइवान को मुक्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। अपनी मातृ-

भूमि, अपनी प्रभुसत्ता और अपने क्षेत्रीय अधिकारों की रक्षा करना हमारा पुनीत कर्तव्य है। एशियाई सम्मेलन ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि ताइवान चीन का है और चीन को मिलना चहिए। अमरीकी फौजें वहाँ से हट जानी चाहियें।'

सम्पादकीय के अन्त में कहा गया—

'सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रश्नों सम्बन्धी प्रस्ताव एशियाई जनता की व्यापक समझ को प्रकट करते हैं। इन क्षेत्रों में एशियाई जनता के संयुक्त प्रयासों का महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलेगा।'

'चीनी सरकार और जनता शान्तिमय विदेश नीति को प्रश्रय देती है। गत पाँच वर्षों में कूटनीतिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक सम्बन्ध एशियाई और विश्व के अन्य देशों से बराबर बढ़ते गये हैं।'

'एशियाई सम्मेलन के प्रस्तावों में निहित अन्तरराष्ट्रीय तथा विश्वशान्ति की भावना को लगातार बढ़ाने में चीनी जनता एशिया की जनता के साथ-साथ काम करेगी।'

चीन से प्रकाशित होने वाले एक और प्रमुख-पत्र 'ता कुंग पाओ' ने भी १३ अप्रैल को अपने सम्पादकीय में लिखा—

'वर्तमान एशियाई परिस्थिती की जाँच करके एशियाई सम्मेलन ने स्पष्टत: यह नतीजा निकाला है कि एशयाई तनातनी का सबसे बड़ा कारण अमरीकी साम्राज्यवाद की आक्रामक नीतियाँ ही हैं।

'एशिया में नये युद्ध की आग भड़काने के लिये अमरीका जो तरीके इस्तैमाल कर रहा है, उनमें सबसे प्रमुख है एशिया में फौजी गुट-बन्दियाँ कायम करना और इस प्रकार एशिया की एकता को तोड़ना तथा घृणा के बीज बोना।

'एशिया की समस्त जनता तथा विश्व के बाकी शान्ति प्रिय लोग तायवान क्षेत्र में अमरीका की आक्रामक कार्रवाइयों से चिन्तित हैं। सम्मेलन ने माँग की है कि अमरीकी फौजें ताईवान तथा चीन के अन्य द्वीपों से हटा ली जायें।

'चीनी जनता शान्ति से बेहद प्यार करती है। लेकिन वह अपनी स्वतंत्रता और प्रभुसत्ता को बेचकर झूठी शान्ति नहीं चाहेगी। चीनी जनता ने सदैव ही

कहा है कि अन्तरराष्ट्रीय मस्लों को शान्तिमय तरीके से हल किया जाय। लेकिन वह आक्रमण कारियों के 'शान्ति' के झूठे नारे के बहकावे में कभी न आ सकेगी।'

लम्बे सम्पादकीय के अन्तिम भाग में कहा है—

'सम्मेलन ने एशियाई जनता की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई शान्ति की भावनाओं को प्रकट किया है। इसने पूर्णतया प्रदर्शित कर दिया कि शान्ति की रक्षा के लिये होने वाले आन्दोलन में एशियाई जनता में परस्पर सहयोग, मैत्री और एकता में वृद्धि हुई है।'

जकार्ता से प्रकाशित होने वाले 'सुलह इण्डिया' ने अपने सम्पादकीय में कहा—

'एशियाई सम्मेलन में स्वीकृत हुये प्रस्ताव खतरे से पैदा हुई तनातनी को कम करने की अपील करते हैं।'

प्राग (चैकोस्लोवाकिया) रेडियो ने एशियाई सम्मेलन की प्रशंसा करते हुये कहा—'यह असाधारण महत्त्व की घटना है। यद्यपि अमरीकी एशिया वालों को आपस में लड़ाने की कोशिश कर रहे हैं, फिर भी एशियाई राष्ट्रों ने घोषणा की है कि वे पंचशील सिद्धान्तों के अनुसार शान्ति से रहना चाहते हैं।'

कोरिया के अखबार 'रोदोंग शिमून' ने लिखा—

'इस सम्मेलन ने जो यथार्थ प्रस्ताव स्वीकार किये हैं उनमें एक ओर तो शान्ति के प्रति एशिया की जनता का दृढ़ विश्वास प्रकट होता है और दूसरी तरफ एशिया के खिलाफ षड़यन्त्र रचने वाले साम्राजी आक्रमणों पर गहरी चोट पड़ती है।'

इस प्रकार एशियाई सम्मेलन में एक प्रकार से नेहरू जी ने भाग न लेकर भी पूर्ण रूपेण भाग लिया, अर्थात् नेहरू जी और चाओ द्वारा स्वीकार पंचशील सिद्धान्त के आधार पर ही एशिया के समस्त देशों की जनता के प्रतिनिधियों ने युद्ध के विरुद्ध शान्ति के लिये और अपने-अपने राष्ट्र की खुशहाली के लिये तथा नव-निर्माण के लिये युद्ध के विरुद्ध एक स्वर से आवाज उठायी।

यही झलक स्पष्ट तथा पूर्णरूपेण बाडुंग सम्मेलन में भी दिखायी दी। यदि

हम संक्षेप में यह कहें कि बाडुंग सम्मेलन की भूमिका एशियाई सम्मेलन था तो अत्युक्ति न होगी।

बाडुंग सम्मेलन

बाडुंग सम्मेलन के विषय में दिसम्बर १९५३ में भारत, पाकिस्तान इण्डोनेशिया, बर्मा और श्री लंका के प्रधान मंत्रियों की बैठक में सोचा गया था जिसके अनुसार अप्रैल में इण्डोनेशिया के नगर बाडुंग में एशिया और अफ्रीकी महाद्वीपों के ३० राष्ट्रों का ऐतिहासिक सम्मेलन होना निश्चय हुआ।

इस सम्मेलन के बुलाने के मुख्य चार उद्देश्य थे—

(१) एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों के बीच आपसी सहयोग और भाई-चारा स्थापित करना, आपसी हितों को समृद्ध करना और पड़ौसी जैसे सम्बन्ध तथा मैत्री को दृढ़ करना।

(२) उपस्थित देशों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करना।

(३) राष्ट्रीयता, जातिभेद और उपनिवेशवाद के बारे में विशेष दिलचस्पी से समस्याओं पर विचार करना।

(४) आज की दुनियाँ, एशिया, अफ्रीका के देशों और उनकी जनता की स्थिती देखना और विश्व-शान्ति तथा आपसी सहयोग बढ़ाने के लिये उनके कर्त्तव्य समझना।

इस सम्मेलन के समाचार से साम्राजियों में घबराहट फैल गई। ब्रिटेन के साम्राज्यवादी पत्र 'मैन्चेस्टर गार्जियन' ने टिप्पणी करते हुये लिखा—

'गैर गोरी दुनियां के लोग अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करने के अधिकार पर अमल कर रहे हैं। यह केवल उपनिवेशवाद का विरोध करने का ही प्रश्न नहीं है'''इसमें एशिया की समस्याएँ स्वयं एशिया में ही सुलझाने की चेष्टाएँ निहित हैं'''

सबसे अधिक घबराहट अमेरिका में फैली। अमरीका के अर्ध सरकारी पत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' ने लिखा—

'अमरीकी विदेश विभाग बाडुंग की सम्भावनाओं को बुरी दृष्टि से देखता है। बाडुंग में उन राष्ट्रों का सम्मेलन इस धारणा के आधार पर आयोजित किया गया है कि पश्चिमी, गोरे लोगों का उपनिवेशवाद या साम्राज्यवाद ही एशिया अफ्रीका के लिए मुख्य खतरा है।'

और इतने ही से क्यों २३ फरवरी को बैंकाक में सीटो सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए अमरीका के विदेशमन्त्री श्री डलेस ने कहा—

'एशिया में तीन मोर्चे हैं। यह असम्भव है कि कम्युनिस्ट चीन द्वारा युद्ध छेड़े जाने पर वह केवल फारमोसा या दक्षिणी कोरिया तक ही सीमित रहे। इन दो मोर्चों पर जो शक्तियाँ हैं, उन्हें दक्षिणी पूर्वी एशिया में सम्भावित कम्युनिस्ट आक्रमण के भाग के रूप में ही लिया जाना चाहिये।'

अर्थात् एशिया को युद्ध में झोंकने के लिए मि० डलेस ३ मोर्चे खोलना चाहते थे—कोरिया, फारमोसा और हिन्द चीन।

मि० डलेस ने इसी सम्मेलन मे एशिया में अमरीका की फौजी नीति के बारे में स्पष्ट कर दिया कि वह कितनी नंगी है—

'एटम बमों को आखिरी बार के अस्त्रों के रूप में नहीं, साधारण फौजी हथियार के रूप में अमेरिका समझता है।'

(१) जैनेवा समझौते को तोड़ने की अमरीका ने पूरी कोशिश की थी। दक्षिणी वियतनाम में अमरीकी जंगबाज अपने पिट्ठू नियम को मजबूत करने के लिए एक लाख फौजों को हथियार बन्द करने और उसकी फौजी शिक्षा का प्रबन्ध कर रहे थे। अमरीकी फौजी सलाहकार जनरल ओडियन ने २२ मार्च को स्पष्ट कर दिया था कि वह इस सेना की तैयारी जेनेवा समझौते के अनुसार होने वाले चुनाव के लिए कर रहे हैं, ताकि फौज को चुनावों में हस्तक्षेप करने का अवसर मिल जाय। और यही कारण था कि फ्रांस ने वियतनाम के तीन धर्म सम्प्रदायों की सेनाओं को उभाड़ दिया था और इन तीन सेनाओं ने अमरीकी कठपुतली प्रधानमन्त्री के विरुद्ध ग्रह युद्ध छेड़ दिया था।

(२) डलेस के कथनानुसार कोरिया का भी एक मोर्चा था, जहाँ उन्होंने युद्ध-विराम को तोड़कर फिर से युद्ध करने के लिए अपनी हलचलें प्रारम्भ कर दी थीं।

२३ मार्च को दक्षिणी कोरिया की कठपुतली सरकार ने अपनी पार्लियामेंट में एक प्रस्ताव पास करके मांग की कि—'विराम सन्धि रद्द कर दी जाय और तटस्थ राष्ट्र कमीशन में से पोलैंड और चैकोस्लोवाकिया के प्रतिनिधियों को निकाल दिया जाय।

और इसका एक कारण था, क्योंकि तटस्थ राष्ट्र कमीशन की उपस्थिति के कारण युद्ध का सामान कोरिया में जमा करने में अड़चन पड़ती थी। लंदन के संडे टाइम्स ने इस पर टिप्पणी करते हुए माँग की कि—

'कोरिया स्थित अमरीकी फौजों को नये हथियार देने और ऐटमी अस्त्रों से सुसज्जित करने पर रोक हटाई जाय।'

और यह बात तो सर्व विदित हो गई थी कि सिंगमनरी ने कई बार उत्तरी कोरिया पर आक्रमण करने की धमकियाँ दी थीं।

(३) डलेस के कथनानुसार एशिया में युद्ध के लिये तीसरा मोर्चा फारमोसा था। फारमोसा अमरीकियों के लिये स्वर्ग बन गया है, क्योंकि सन् १९५१ से १९५४ तक अमरीकी साम्राजियों ने 'सहायता' की आड़ में यहाँ के उद्योगों में एक अरब से ऊपर पूंजी लगायी थी। बिजली रसायन, अल्यूमिनियम, जहाज निर्माण आदि उद्योग पूरी तरह से हाथों में आ गये थे।

फारमोसा का जिकर यत्र तत्र पहले भी कई स्थानों पर हम कर चुके हैं। मगर फारमोसा की समस्या बड़ी जटिल है। चीन का सही दावा जिसे मानने से दुनियाँ का कोई देश इनकार नहीं कर सकता है कि फारमोसा चीन का अंग है, और रहना चाहिये। अमेरिका इस बात को नहीं मानता और अपनी गन्दी नीति 'एशियाइयों को एशियाइयों से लड़ाओ' की नीति फारमोसा में बर्तना चाहता है।

इन सब परिस्थितियों पर विचार करने के लिये और न केवल एशिया में शान्ति स्थापित करने के लिये अपितु विश्व में शान्ति स्थापना के हेतु बाडुंग सम्मेलन करने का निश्चय किया गया था।

सम्मेलन और षड्यंत्र

बाडुंग सम्मेलन के लिये जहाँ एक ओर विश्व की जनता आँख लगाये बैठी

थी, और गम्भीरता से होने वाली घटनाओं का अध्ययन कर रही थी, वहीं शांति के दुश्मन, साम्राज्यवादी और उपनिवेशवाद के हामी युद्ध खोर वाडुंग सम्मेलन को असफल बनाने की चेष्टा में महीनों पहले से लगे थे।

और षड्यन्त्र न केवल विश्व भर में चल रहे थे छिपे छिपे, वरन् वाडुंग सम्मेलन के राष्ट्र इण्डोनेशिया में भी चल रहे थे, जिसके बारे में इंडोनेशिया के अखबार बराबर लिखते रहे। कई बार वहाँ के अखबार 'श्रीता इण्डोनेशिया' ने छापा कि च्यांग काई शेक के गुप्त एजेन्ट इण्डोनेशिया में अमरीका की सहायता से स्थानीय हथियार बन्द गिरोहों से सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं, ताकि सम्मेलन में उत्पात किया जाय और इण्डोनेशिया की सरकार को पलट दिया जाय।

इस अखबार ने स्पष्ट लिखा कि इन एजेंटों का सम्बन्ध इण्डोनेशिया के 'लौह और खूनी दल' नाम के आतंकवादी गिरोह से है।' अखबार ने लिखा कि इस दल के लोग व्यायाम स्काउट और क्लब नं० ११ के नाम पर फौजी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इसी अखबार ने एक भेद इस दल के बारे में और खोला कि इस दल का एक नेता च्यांग काई शेक की फौज का पुराना सैनापति है।

जाकार्ता के अखबारों में मार्च में खबर छपी कि इस दल के नेता चंगची चुन ने अपनी वर्ष गाँठ और अपने दो बेटों के विवाह के बहाने ६००० लोगों को निमंत्रण दिया। इस बहाने उसने इंडोनेशिया, जापान और फिलिपाइन्स के च्यांग काई शेक के एजेन्टों को वाडुंग में एकत्रित करने की कोशिश की। इस प्रकार उपहारों के रूप में रुपये इकट्ठा कर और निमंत्रणों के बहाने उसने वाडुंग सम्मेलन को ध्वंस करने की योजना बनाई।

इण्डोनेशिया के अखबार 'श्रीता इण्डोनेशिया' ने लिखा—'बहुत से क्वोमिंतांगी एजेंट जापानी और फिलिपाइनी प्रतिनिधियों और पत्रकारों के छिपे वेष में आयेंगे और बड़े-बड़े निमंत्रण भी इन एजेंटों को इण्डोनेशिया में घुसाने का एक बहाना मात्र हैं।'

अखबारों ने खबर छापी कि अमरीकी यात्रियों के साथ मिलकर बहुत-से ध्वंसकारी इंडोनेशिया में आ गये हैं और इन यात्रियों के पास स्वतन्त्रता के साथ इंडोनेशिया में घूम सकने के अधिकार पत्र हैं।

१०० अमरीकी यात्री जो बाली जाने वाले थे, अपना एकदम बाली जाने का कार्यक्रम रद्द करके सीधे जाकार्ता और बाडुंग की ओर चले आये ।

अमरीकी निर्देशन में चलने वाली च्यांग काई शेक के एजेंटों की कार्रवाइयाँ इतनी खुलकर हो रही थीं कि अमरीकी समाचार समितियाँ भी चीनी प्रतिनिध मंडल की सुरक्षा व्यवस्था का जिकर करने लगीं ।

यूनाइटेड प्रेस आफ अमरीका के जकार्ता संवाददाता ने १३ अप्रैल को भेजे अपने सम्वादों में चीनी प्रतिनिध मंडल की सुरक्षा के प्रश्न का जिकर किया। अपने ६ अप्रैल के संवाद में उसने लिखा—'च्यांग काई शेक समर्थित तत्वों ने इंडोनेशिया के अधिकारियों को यह गारंटी देने से इन्कार कर दिया है कि प्रधान मंत्री चाओ एन लाई के नेतृत्व में आने वाले चीनी प्रतिनिध मंडल के खिलाफ वे घृणित हत्या के तरीके न अपनायेंगे । इसी संवाद में उस संवाददाता ने अमरीका और च्यांग समर्थक तत्वों को पहले से हत्या के षड़यन्त्र से दोष मुक्त करने की—कोशिश करते हुये लिखा कि अगर ऐसा हुआ तो यह व्यक्तिगत काम होगा । (जनयुग २४ अप्रैल ५५)

इंडोनेशिया की जनता ने कुछ दिन पहले ही एशिया सम्मेलन में एशिया के समस्त राष्ट्रों से भाईचारा स्थापित करने की कसम खाई थी, तभी वहाँ की जनता के जनवादी संगठनों ने और प्रतिनिध मंडल ने सरकार से मांग की कि वह चीनी नेता और चीनी प्रतिनिध मंडल की सुरक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध करें ।

मगर इसके बाद भी च्यांग के एजेंट और अमरीका के गुलामों ने इस घृणित कार्य को करके बदनामी के कलंकों में एक सबसे बड़ा कलंक का दाग और लगा लिया जो कितने ही पुण्यों के पश्चात् भी धुल नहीं सकेगा । घटना इस प्रकार घटी—

बाडुंग सम्मेलन के लिये चीन की ओर से ११ प्रतिनिधियों और पत्रकारों को लेकर जाने वाला भारतीय वायुयान ११ अप्रैल को उत्तरी बोर्नियो में सारवाद के निकट षड़यंत्र का शिकार हो गया। इस प्रकार बाडुंग में होने वाले एशिया-अफ्रीका सम्मेलन को असफल करने की साम्राज्यवादियों ने पूरी-पूरी चेष्टा की ।

मगर पंडित नेहरू का लगाया गया तमाचा युद्ध खोर कभी नहीं भूल सकते। उन्होंने इतनी बड़ी कुरबानी के बाद भी बाडुंग सम्मेलन को सफल बनाया। एक बहुत बड़े भारतीय नेता ने कहा—

'चीनी प्रतिनिध मंडल की कुर्बानी व्यर्थ नहीं जायेगी, शहीदों का खून एक दिन रंग लायेगा और युद्धखोर उस दिन शान्ति के आगे घुटने टेक देंगे। बाडुंग सम्मेलन होगा, और उसी तरह होगा जिस तरह होना था, हाँ वातावरण उतना अच्छा और प्रसन्नदायक इस घटना के पश्चात् नहीं रहेगा जितना होना था।'

भाग्य से इस प्रतिनिध मंडल के साथ चीन के प्रधान मंत्री चाओ एन लाई नहीं थे।

चीन के अखबार पीपुल्स डेली ने अपने सम्पादकीय में लिखा—

'अमरीकी साम्राजी और च्यांग काई शेक के गुट के एजेंट संगीन अन्तरराष्ट्रीय अपराध कर रहे हैं। अन्तरराष्ट्रीय तनाव को बढ़ाने के और एशिया अफ्रीका सम्मेलन को विफल करने के लिये वे प्रधान मंत्री चाओ एन लाई के नेतृत्व में जाने वाले चीनी प्रतिनिध मंडल की हत्या का प्रयत्न कर रहे हैं।

'हालांकि ब्रिटिश अधिकारियों ने रक्षा का बचन दिया था, फिर यह समझना कठिन है कि अमरीका की आज्ञा पर च्यांग काई शेक के विशेष एजेंट अपनी योजना के अनुसार इस जघन्य कार्रवाई पर किस प्रकार अमल कर सके ···इस घटना से अन्तरराष्ट्रीय कानून और नैतिक सिद्धान्तों पर लात मारी गयी है।'

पत्र ने आगे लिखा है—

'अमरीका और च्यांग काई शेक के एजेंट इंडोनेशिया में एक लम्बे समय से अपनी षड़यंत्रकारी कार्रवाहियां चला रहे हैं। उनका तात्कालिक उद्देश्य है एशिया अफ्रीका सम्मेलन को तोड़ना, चाओ एन लाई के नेतृत्व में आने वाले प्रतिनिध मंडल की हत्या करना, एशिया अफ्रीका सम्मेलन का समर्थन करने वाले देशों को धमकाना, और हो सके तो इण्डोनेशिया की सरकार को पलट देना।

'इंडोनेशिया समाचार पत्रों में बराबर रिपोर्ट निकल रही है कि अमरीका

और च्यांग के एजेंट इंडोनेशिया के अन्दर तोड़-फोड़ और गड़बड़ी फैलाने की बराबर कोशिशें कर रहे हैं।

'एशिया अफ्रीका सम्मेलन २९ देशों की एक अरब ४४ करोड़ जनता का प्रतिनिधित्व करता है। वह उन पीड़ित राष्ट्रों की आवाज बुलन्द करता है, जिन्हें साम्राज्यवादियों के आक्रमणों से बराबर नुकसान उठाना पड़ा है। अमरीकी साम्राजियों और च्यांग के एजेंटों के किसी षड़यंत्र से इस महान सम्मेलन को होने से नहीं रोका जा सकता। एशियाई अफ्रीकी जनता को और अधिक सतर्क होना चाहिये और अमरीका तथा च्यांग गुट के षड़यन्त्रों को विफल करने के लिये दृढ़तापूर्वक चोट करनी चाहिये।

'प्रधानमन्त्री चाओ एनलाई के नेतृत्व में चीनी प्रतिनिधि मंडल एशिया-अफ्रीका सम्मेलन को सफल बनाने के लिए कोशिशें जारी रखेगा। एशिया और विश्व की शान्ति के लिए वह बराबर संघर्ष करता रहेगा।'

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने दुर्घटना पर खेद प्रकट किया और दुर्घटना के संबन्ध में कहा कि—

'जहाज के समुद्र में गिरने से दस मिनट पहले तक हमें उससे साधारण सन्देश मिलते रहे थे। उसके बाद कोई चीज एकाएक हुई होगी। इस सब की पूरी जाँच कराई जानी चाहिये।'

सम्मेलन में

सम्मेलन का उद्घाटन इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण ने किया। उन्होंने अपने प्रारम्भिक भाषण में सम्मेलन के ऐतिहासिक महत्त्व पर जोर देते हुए कहा— 'मानव के इतिहास में गैरगोरी जातियों का यह पहला सम्मेलन है।'

अपने धारावाहिक भाषण में उन्होंने कहा—'पीढ़ियाँ बीत गईं जब दुनियाँ में एशिया की जनता की आवाज सुनने वाला भी कोई नहीं था।

'हमारी तो कोई परवाह ही नहीं करता था। हमारे भाग्य का फैसला हम स्वयं नहीं दूसरे करते थे। उन्हीं के स्वार्थ उपर रहते थे एशिया की जनता तो गरीबी और बे आदर का जीवन व्यतीत करती थी।'

उन्होंने स्पष्ट कहा—'गत कुछ वर्षों में बड़े परिवर्तन हो गये हैं। सदियों की निद्रा से राष्ट्र और जाति जाग उठी हैं। निष्क्रिय लोग हाथ-पैर फैलाने लगे हैं। शान्ति के बजाय सक्रियता और संघर्ष है। दोनों महाद्वीपों पर ऐसी लहरें उठी हैं, जिन्हें कोई भी नहीं रोक सकता।

'जागरण और पुनरुत्थान का तूफान सभी देशों को दहलाता हुआ और बहतरी के लिए उनमें परिवर्तन करता हुआ उठ पड़ा है।

'हमसे प्रायः कहा जाता है, कि उपनिवेशवाद मर गया। हमें इसके धोखे में न पड़ना चाहिये और न इससे शान्त होना चाहिये। मैं आपसे कहता हूं कि उपनिवेशवाद अभी भी मरा नहीं हैं, हम उसे कैसे मरा मान सकते हैं जबकि एशिया और अफ्रीका के बड़े-बड़े भूभाग आज भी स्वतन्त्र नहीं हैं।'

अपने भाषण में उन्होंने समस्त प्रतिनिधियों को आवाहन किया—**'एशिया की सारी आत्मिक, नैतिक और राजनैतिक शक्तियों को शान्ति के समर्थन में एक जूट करें और यह दिखा दें कि हम शान्ति का समर्थन करेंगे युद्ध का नहीं और हमसे जितनी भी ताकत होगी उसे शान्ति के समर्थन में लगा देंगे।'**

सम्मेलन के अध्यक्ष इन्डोनेशिया के प्रधानमन्त्री अली शस्त्रोमिजय चुने गये। अपने भाषण में उन्होंने कहा—'आज के तनाव का मुख्य कारण उपनिवेशवाद है।' अपने भाषण में आगे चलकर वह बोले—'दुनियां का अधिकांश भाग समझता है कि उपनिवेशवाद तो पुराने जमाने की बात थी। पर वास्तविकता ये है कि उपनिवेशवाद अभी काफी जीवित है।'

राजनैतिक स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में एशिया तथा अफ्रीकी जनता की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए उन्होंने इन देशों के आर्थिक सहयोग पर बल दिया।

चीन के प्रधानमन्त्री श्री चाओएन लाई ने अपने भाषण में कहा—

'एशिया और अफ्रीका की जनता ने शानदार प्राचीन समस्याओं का निर्माण किया था और मानव समाज को अतुल देन दी थी। पर जब से नया युग प्रारम्भ हुआ, एशिया और अफ्रीका के समस्त राष्ट्रों को अनेक तरह से उपनिवेशी लूट और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा और इस तरह उन्हें मजबूरन गरीबी और

पिछड़ेपन के गढ़े में रोक रखा गया।

'हमारी आवाजों का गला घोंटा गया, हमारे अरमान चूर-चूर किये गये, हमारा भाग्य दूसरों के हाथों में सौंप दिया गया।

'हमारे समक्ष इसके सिवाय अन्य मार्ग नहीं है कि हम उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष करें। एक ही रोग के शिकार एक ही उद्देश्य के लिए लड़ते हुए, हम एशिया और अफ्रीका के निवासी एक दूसरे को अधिक सरलता से समझ सकते हैं। हम में एक दूसरे के प्रति बराबर हार्दिक सहानुभूति रही है।

'और अब एशिया और अफ्रीका की शक्ल ही बदल गई है। नये-नये देश उपनिवेशी जंजीरों को तोड़ चुके हैं और तोड़ते जा रहे हैं। अब किसी भी प्रकार उपनिवेशी राष्ट्र अपनी लूट को जारी रखने के लिए अब पुराने तरीके प्रयोग नहीं कर सकते।

'आज का एशिया और अफ्रीका कल का एशिया और अफ्रीका नहीं है। इस भूमि से बहुत से देशों ने बरसों तक मेहनत के पश्चात् अपना भाग्य अपने हाथों में स्वयं ले लिया है। हमारा ये सम्मेलन इसी एतिहासिक परिवर्तन का सूचक है।

'परन्तु इस इलाके में उपनिवेशी शासन समाप्त हो गया हो ऐसी बात नहीं है, बल्कि नये उपनिवेशी राष्ट्र पुरानों का स्थान लेने की चेष्टा कर रहे हैं। बहुत से एशियाई अफ्रीकी देश आज भी उपनिवेशी परतन्त्रता में जकड़े हुए हैं।

'स्वतन्त्रता प्राप्त करने के हमारे मार्ग चाहे कितने ही भिन्न हों, पर स्वतन्त्रता प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने की हमारी भावना एक ही है। हमारे देशों की अपनी-अपनी दशा चाहे कितनी ही भिन्न हों, लेकिन हममें से अधिकांश के लिये यह एक ही तरह आवश्यक है कि उपनिवेशी शासन के कारण जिस पिछड़ेपन के हम शिकार हैं, उससे अपने को मुक्त करें।

'हमारे लिये आवश्यकता इस बात की है कि बिना बाहरी दखलन्दाजी के अपनी जनता की इच्छा के अनुसार स्वतन्त्र रूप से अपने देशों का विकास करें।

'इस बात को देखते हुए एशिया और अफ्रीका के देशों की जनता की यही समान इच्छा हो सकती है कि विश्व शान्ति की रक्षा की जाय, राष्ट्रीय

स्वतन्त्रता प्राप्त करने, और इसी के लिए राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण सहयोग को प्रोत्साहन दिया जाय।'

उन्होंने अपने भाषण के अन्त में जेनेवा सम्मेलन का जिकर किया कि उससे एक आशा की किरण दिखाई दी थी, उसके पश्चात् का जिकर करते हुए उन्होंने कहा—

'पर उसके पश्चात् जो अन्तर-राष्ट्रीय क्षेत्र में घटनाएँ हुई वह जनता की इच्छाओं के विरुद्ध जाती हैं। पूर्व और पश्चिम दोनों ओर ही युद्ध का खतरा बढ़ रहा है।

'एशिया की जनता यह कभी भी नहीं भूल सकती कि पहला एटमबम एशिया की पृथ्वी पर फेंका गया और हाईड्रोजन के परीक्षण में जो पहला ही आदमी मरा वह एशियाई ही था।

'फिर भी आक्रमणात्मक कारंवाई करने वाले और युद्ध की तैयारी करने-वाले तो बहुत थोड़े हैं, जब कि सारी दुनियां की लगभग समस्त जनता वह चाहे जिस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में रहती हो युद्ध के खिलाफ शान्ति चाहती है।

'उसकी आवाज की अब अधिक उपेक्षा नहीं की जा सकती। आक्रमण और युद्ध की नीति से जनता अब पहले से अधिक घृणा करने लगी है।'

उन्होंने अपने भाषण में आगे चलकर कहा—

'चीन सहित एशिया और अधिकांश अफ्रीका के देश लम्बे उपनिवेशी आधिपत्य के कारण आज भी आर्थिक रूप से बहुत पिछड़े हैं। इसीलिये हम केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता ही नहीं आर्थिक स्वतन्त्रता भी चाहते हैं।

'पर राजनैतिक स्वतन्त्रता के ये अर्थ नहीं हैं कि एशिया अफ्रीका क्षेत्र के बाहर के देशों से हम अपने को पृथक कर लें। पर फिर भी वह समय लद गया जब हमारे भाग्य विधाता बाहर के लोग बन बैठे थे। अब स्वयं एशिया और अफ्रीका की जनता अपने भाग्य को बनाने वाली है।

'उपनिवेशवाद का विरोध करने वाले और अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा करने वाले एशिया अफ्रीका के देश अपने राष्ट्रीय अधिकार का और भी

अधिक सम्मान करते है, सभी देश वे चाहे छोटे हों या बड़े अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सबके समान अधिकार होने चाहियें।

'हर परतन्त्र देश की जनता को आत्म निर्णय का अधिकार होना चाहिये, उन्हें उत्पीड़न और हत्या का शिकार न बनाना चाहिये।

'नस्ल या रंग का भेद किये बिना प्रत्येक जनता को मूल मानव अधिकार मिलने चाहियें, उनके साथ दुर्व्यवहार न होना चाहिये।'

२५ अप्रैल के हिन्दुस्तान टाइम्स ने चाओ एन लाई के व्यवहार के सम्बन्ध में लिखा—'मित्रतापूर्ण सद्भाव के बढ़ाने और तनाव घटाने के मार्ग निकालने में श्री चाओ एन लाई ने जो महान् भूमिका अदा की, सम्मेलन का शायद वही सबसे बड़ा चमत्कारी पहलू था।'

एशिया अफ्रीकी सम्मेलन के आरम्भ से ही फिलीपाइन्स, थाईलैण्ड, पाकिस्तान, श्री लंका, इराक और तुर्की के प्रतिनिधियों ने विश्व कम्युनिज़म और कम्युनिस्ट देशों की आलोचना की। इनके उठाये गये अनेकों प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्री चाओ एन लाई ने अपने दूसरे भाषण में कहा—

'चीनी प्रतिनिधि मण्डल यहाँ एकता के लिए आया है, झगड़ा करने के लिए नहीं। हम कम्युनिस्ट यह छिपाते नहीं कि हम कम्युनिज़्म में विश्वास करते हैं और हम समाजवादी व्यवस्था को अच्छा समझते हैं, पर आपस में मत-भेद होते हुए भी इस सम्मेलन में अपनी विचारधारा और अपने देश की राजनैतिक व्यवस्था का प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है।

'चीनी प्रतिनिधि मंडल यहाँ एकता के लिए आधार तलाश करने आया है, मतभेद ढूँढ़ने नहीं। क्या हममें एकता के लिए आधार ढूँढ़ने की गुंजाइश है? अवश्य है! एशिया व अफ्रीका के देशों ने उपनिवेशवाद की बर्बादी को सहा है। और सह रहे हैं, यह हम सभी मानते हैं। यदि हम उपनिवेशवादी बर्बादी और यातनाओं को समाप्त करना एकता का आधार बनाएँ, तो हमें एक-दूसरे को समझने, आदर करने, हमदर्दी और सहायता करने में सरलता होगी और एक-दूसरे के प्रति सन्देह, भय, अलगाव और विरोध की भावना दूर होगी।

'इसलिये बोगोर में हुये पांच देशों के प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन में इस

एशिया अफ्रीका सम्मेलन के जो चार उद्देश्य तय हुये थे, हम उनसे सहमत हैं और नये प्रस्ताव नहीं रख रहे हैं।'

मतभेद के प्रश्न पर उन्होंने कहा—

'ताइवान के क्षेत्र में एक मात्र अमरीका ने जो तनाव पैदा कर दिया है, उसके सम्बन्ध में हम इस सम्मेलन में विचारार्थ सोवियत यूनियन का यह सुझाव उपस्थिति कर सकते थे कि एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन बुलाकर यह समस्या हल कर ली जाय। ताइवान और तटवर्ती द्वीपों को, जो हमारे देश का ही हिस्सा है, मुक्त करने की चीनी जनता की इच्छा न्यायोचित है। यह बिल्कुल हमारी घरेलू और अपनी प्रभुसत्ता को कार्यान्वित करने का सवाल है। इस सम्बन्ध में हमारी उचित माँग का समर्थन कई देशों ने किया है।

'संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारा स्थान माना जाय, और हमें उचित स्थान दिया जाय—यह प्रश्न भी हम इस सम्मेलन में उठा सकते थे। बोगोर में हुये पाँच प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन ने हमारी इस माँग का समर्थन किया है। एशिया व अफ्रीका के अन्य देशों ने भी, इस प्रश्न पर हमारा समर्थन किया है। हमारे साथ संयुक्त राष्ट्र संघ ने जो अनुचित व्यवहार किया है, हम उसकी आलोचना भी यहां कर सकते थे।

'पर हम ये प्रश्न नहीं उठा रहे हैं, क्योंकि यदि हम ये प्रश्न उठायेंगे तो हमारा यह सम्मेलन झगड़ों में फँस जायेगा और उनका हल भी न निकाल पायेगा।

'इस सम्बन्ध में हमें मतभेद रहते हुये भी आपस में एकता के आधार तलाश करने चाहिये। हम सब की जो एकसी इच्छायें और माँगें हैं, इस सम्मेलन को उसे दुहराना चाहिये। यही यहाँ पर हमारा मुख्य काम है। जहाँ तक मतभेद का प्रश्न है, कोई किसी से अपना दृष्टिकोण देने के लिये नहीं कहता है। क्योंकि वास्तविकता ये है कि हम में मतभेद हैं। पर यह मतभेद मुख्य प्रश्न के बारे में एकमत होने के मार्ग में नहीं आना चाहिये। जहाँ हमारी एक राय हो, वहाँ हमें मतभेद समझने के लिये कोशिश करनी चाहिये।

'सबसे प्रथम मैं अलग-अलग बिचारधाराओं और सामाजिक व्यवस्थाओं को

लेता हूँ। हमें मानना पड़ेगा कि एशियाई और अफ्रीकी देशों में अलग-अलग विचारधारा और सामाजिक व्यवस्था है, लेकिन इससे हमें आपस में समानता ढूँढ़ने और एक होने के मार्ग में बाधा नहीं पड़ती।

'दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से बहुत से देश आजाद हुये हैं। इन देशों का एक समूह वह है जो कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में हैं, दूसरा समूह वो है जहाँ राष्ट्र-वादी नेतृत्व करते हैं। पहले समूह में अधिक देश नहीं हैं। पर कुछ लोगों को यह नापसन्द है कि साठ करोड़ चीनी जनता ने एक समाजवादी सामाजिक व्यवस्था और कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व स्वीकार किया है और साम्राज्यवादियों का शासन समाप्त कर दिया है। दूसरे समूह में जो देश हैं उनकी संख्या अधिक है—भारत, वर्मा, इण्डोनेशिया आदि एशिया व अफ्रीका के कई देश इस समूह में हैं।

'इन दोनों समूहों के देशों ने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पाई है, और वे पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये आज भी संघर्ष कर रहे हैं। फिर क्या कारण है कि हम एक-दूसरे को न समझ सकें, आदर न प्रदान कर सकें। आपस में मैत्रीपूर्ण सह-योग और अच्छे पड़ोसियों जैसे सम्बन्ध कायम करने के लिये पंचशील को अवश्य ही आधार बनाया जा सकता है। हम एशिया व अफ्रीका के देश, जिनमें चीन भी सम्मिलित है, आर्थिक व सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुये हैं। फिर क्यों न हम एक-दूसरे को समझें व आपस में मित्रों का सा व्यवहार करें?'

धार्मिक और अधार्मिक प्रश्न को जो लोग उठाते हैं, और एशिया की मित्रता को तोड़ने की कोशिश करते हैं, उनको जवाब देते हुए उन्होंने कहा—

'हर आधुनिक देश धार्मिक विचारों की स्वतन्त्रता को मानता है। हम कम्युनिस्ट अनीश्वरवादी हैं, लेकिन हम धार्मिक विचार रखने वालों का आदर करते हैं।

'हम आशा करते हैं कि जो धार्मिक विचार वाले लोग हैं, वह भी अनी-श्वरवादी विचारधारा वालों का आदर करेंगे। चीन ऐसा देश है जहाँ धार्मिक विचारों की पूर्ण स्वतन्त्रता है। हमारे यहाँ करोड़ों मुसलमान और बौद्ध हैं, और प्रोटेस्टेट व कैथोलिक ईसाई हैं। यहाँ चीनी प्रतिनिधि मण्डल में भी

मुस्लिम धर्म को मानने वाले एक सज्जन आये हैं, लेकिन इनसे चीन की एकता में बाधा नहीं पड़ती, तो फिर एशिया और अफ्रीकी देशों के सम्मेलन में धर्म मानने वालों और न मानने वालों के बीच एकता क्यों नहीं हो सकती ।

'धार्मिक झगड़े करने के दिन तो अब समाप्त हो जाने चाहिये थे, क्योंकि वे लोग जो धार्मिक झगड़े करके लाभ उठाते थे, यहाँ हमारे बीच में नहीं हैं ।'

जो लोग बाहरी देशों में बसे चीनियों के बारे में शंका प्रकट करते हैं, क्योंकि चीन उन्हें भी नागरिक समझता है, उनके बारे में श्री चाओ एन लाई ने कहा——

'कुछ लोग कहते हैं कि जो एक करोड़ से अधिक चीनी दूसरे राज्यों में रहते हैं उनकी दुहरी नागरिकता से लाभ उठाकर विध्वंसात्मक कार्रवाइयाँ कराई जा सकती हैं । पर दुहरी नागरिकता की समस्या तो पुराने चीन की छोड़ी हुई समस्या है । अभी तक च्यांगकाई शेक विदेशों में बसने वाले थोड़े से चीनियों को उन देशों के खिलाफ विध्वंसक कार्य करने के लिए प्रयोग कर रहा है । हम विदेश में बसने वाले चीनियों की दुहरी नागरिकता के प्रश्न को सम्बन्धित देशों के साथ मिलकर हल करने के लिए तैयार हैं ।

'कुछ लोग कहते हैं कि चीन में थाई जाति का स्वतन्त्र प्रदेश दूसरे देशों के लिए खतरा है । चीन में बीसियों जाति के चार करोड़ अल्पसंख्यक लोग रहते हैं । थाई और उनके ही परिवार के चुंग जाति के लोग लगभग एक करोड़ हैं । जब वे हमारे देश में हैं तो हम उनको प्रादेशिक स्वतन्त्रता देते हैं । जैसे बर्मा में शान जाति के लोगों को स्वतन्त्रता प्राप्त है, वैसे ही चीन में प्रत्येक जाति को प्रादेशिक स्वतन्त्रता है । चीन की जातियाँ इस प्रादेशिकता का उपयोग अपने ही देश में करती हैं, तब वह पड़ौसियों के लिए किस प्रकार खतरनाक बन सकती हैं ।'

उन्होंने समझौते के लिए आधार उपस्थित करते हुए कहा——

'हम पंचशील के सिद्धान्तों पर दृढ़ता के साथ चलने का आधार बनाकर एशिया व अफ्रीका के सभी देशों, संसार के प्रत्येक देश और विशेष रूप से अपने पड़ौसियों के साथ साधारण सम्बन्ध स्थापित करने को तैयार हैं । इस

समय यह प्रश्न नहीं है कि हम दूसरे देशों की सरकारों के विरुद्ध विध्वंसक कार्य कर रहे हैं, वल्कि प्रश्न ये है कि कुछ लोग हैं जो चीन के चारों ओर अड्डे वना रहे हैं, ताकि वे हमारी सरकार के विरुद्ध विध्वंसक कार्रवाई कर सकें।

'उदाहरण के लिए चीन और वर्मा के सीमावर्ती क्षेत्र में च्यांगकाई शेक गुट के सशस्त्र लोग बाकी हैं जो चीन व वर्मा दोनों के विरुद्ध विध्वंसक कार्य कर रहे हैं। चीन व बर्मा के बीच मित्रता के सम्बन्ध होने के कारण से और क्योंकि हम सदैव से बर्मा की स्वतन्त्रता का आदर करते हैं, हम समझते हैं बर्मा की सरकार इस समस्या को हल कर लेगी।

'चीनी जनता ने स्वयं अपनी सरकार चुनी है, वह उस सरकार का समर्थन करती है। चीन में धार्मिक विचारों की स्वतन्त्रता है। चीन की ऐसी कोई इच्छा नहीं है कि वह अपने पड़ौसी देशों के विरुद्ध कोई विध्वंसक कार्य करे।

'इसके विपरीत, चीन उन विध्वंसक कार्यों का शिकार हो रहा है, जो अमेरिका खुले आम कर रहा है। जिन्हें हमारी बात पर विश्वास न हो, वह स्वयं चीन आकर या किसी को भेजकर देख सकते हैं चीन में, हम जानते हैं कि कुछ लोगों के दिमागों में, जिन्हें सच्चाई ज्ञात नहीं है, हमारे बारे में सन्देह है। चीन में कहावतें हैं 'सौ बार सुनने से एक बार देखना अच्छा।' हम उन देशों के प्रतिनिधियों को जो इस सम्मेलन में सम्मिलित हैं, जब भी वे चाहें चीन आने का निमंत्रण देते हैं। हम किसी पर्दे में नहीं रहते, लेकिन कुछ लोग हमारे चारों ओर (धुऐं का) पर्दा खड़ा करना चाहते हैं।

'एशिया और अफ्रीका की १६० करोड़ जनता इस सम्मेलन की सफलता चाहती है। संसार के वे सभी देश व लोग जो शान्ति चाहते हैं, इस सम्मेलन की ओर देख रहे हैं कि हम शान्ति का क्षेत्र बढ़ाने और संसार में सामूहिक शान्ति स्थापित करने के लिये क्या करते हैं। हम एशिया और अफ्रीका के देशों को एक हो जाना चाहिए और इस सम्मेलन की सफलता के लिए पूरी कोशिश करनी चाहिये ?'[1]

---

१. भारत में चीन के राजदूत कार्यालय की न्यूज बुलेटिन से।

कुछ देशों के प्रतिनिधियों ने अपने भाषण में जो आरोप कम्युनिस्ट देशों और इशारा किसे या बिना किये चीन पर किये उनके बारे में हिन्दुस्तान टाइम्स ने लिखा है—

"इन प्रतिनिधियों के नाटक को देखकर यह साफ हो जाता है कि इन्हें कहीं से तैयार कर और सिखा पढ़ाकर सम्मेलन को तोड़ने के लिए भेजा गया है और कहना भी किसी सीमा तक सच है कि रोज इन्हें कहीं से आदेश व इशारे मिलते हैं।"

सम्मेलन के फैसले

सम्मेलन एक सप्ताह तक चला, और जितने भी सम्मेलन में निर्णय हुए, सभी एक मत से हुए इससे साम्राज्यवादियों के खेमें में आश्चर्य तो हुआ ही साथ ही क्रोध और गुस्सा भी आया, क्योंकि उन्होंने तो कुछ लोगों को सम्मेलन को विफल करने के हेतु भेजा था जैसा कि हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता का बयान ऊपर दिया है, मगर वह देश भी हर निर्णय में साथ ही रहे।

सम्मेलन के समाप्त होने के पश्चात् जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसकी मुख्य बातें नीचे दी जा रही हैं—

"एशिया अफ्रीका सम्मेलन १८ से २४ अप्रैल तक बाडुंग में हुआ। इस सम्मेलन का निमंत्रण भारत, इंडोनेशिया, वर्मा, पाकिस्तान, और श्री लंका ने दिया था।

'सम्मेलन में इनके अलावा ये २८ राष्ट्र सम्मलित हुये—

अफगानिस्तान, गोल्डकोस्ट, ईरान, ईराक, जापान, जार्डन, लाग्रोस, लेबनान, लाइबेरिया, लिबिया, नेपाल, फिलीपाइन, साऊदी अरब, स्वीडन, सीरिया, थाइलैंड, तुर्की, उत्तर तथा दक्षिणी वियतनाम और यमन।

'सम्मेलन ने इस बात पर विचार किया कि किस प्रकार एशिया और अफ्रीका के लोगों में पूर्ण आर्थिक सांस्कृतिक और राजनैतिक सहयोग कायम किया जाय।

आर्थिक सहयोग

'सम्मेलन ने इस बात को स्वीकार किया कि एशियाई अफ्रीकी क्षेत्र में

आर्थिक सहयोग को बहुत जल्दी बढ़ाना चाहिये।

'सम्मेलन ने यह स्वीकार किया है कि इस प्रकार आर्थिक सहयोग के ये मानी नहीं हैं कि इस क्षेत्र के बाहर के देशों से इस प्रकार का सहयोग न किया जाय या विदेशी पूँजी न लगाई जाय।

'यह भी स्वीकार किया गया कि इस क्षेत्र के कुछ देशों को अन्तरराष्ट्रीय समझौते के अनुसार जो मदद मिल रही है उससे विकास योजनाओं को बहुमूल्य मदद मिली है।

'सम्मेलन ने तय किया कि सभी देश एक दूसरे को विशेषज्ञ, शिक्षक तथा प्रदर्शन के लिए साधन देंगे।

'परस्पर जानकारी का लेन देन होगा। राष्ट्रीय या क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र और अनुसंधान शालाएँ खोली जायेंगी।

'सम्मेलन ने यह सिफारिश की कि आर्थिक विकास के लिये संयुक्तराष्ट्र का एक विशेष कोष हो।

'पुनर्निर्माण और विकास का अन्तराष्ट्रीय बैंक अपने साधनों का अधिकांश इस क्षेत्र पर खर्च करे।

'पूँजी लगाने के लिए एक अन्तर राष्ट्रीय वित्त कारपोरेशन कायम हो।

'समान हित के लिए एशियाई और अफ्रीकी देशों के संयुक्त कार्यों को प्रोत्साहन दिया जाय।

'सम्मेलन ने इस क्षेत्र में व्यापार में स्थिरता लाने पर जोर दिया। यह स्वीकार किया गया कि व्यापार और आमदनी सम्बन्धी कई देशों के संयुक्त व्यापार समझौते हों। यह भी माना गया कि आज भी स्थिति में द्विपक्षीय समझौते भी हो सकते हैं।

'कच्चे माल के दाम स्थिर करने के लिए इस क्षेत्र के देश द्विपक्षीय और अनेक पक्षीय समझौते कर सकते हैं। इस प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र संघ की संबंधित संस्थाओं में एक समान रुख रखा जाय।

'सम्मेलन ने इस बात की भी सिफारिश की कि इस देश के क्षेत्र अपने कच्चे माल को, जहां तक आर्थिक रूप से लाभदायक हो, निर्यात करने से पहले

पक्का बनायें। इस क्षेत्र में व्यापारिक मेले लगें, व्यापार प्रतिनिधि मंडल आयें, जायें, जिसमें इस क्षेत्र में परस्पर व्यापार बढ़े।

'सम्मेलन ने जहाज रानी को काफी महत्व दिया और कहा कि जहाजी कम्पनियाँ माल ढुलाई की दरें इस तरह बदलती रहती हैं जिससे इस क्षेत्र के लोगों को नुकसान होता है।

'सम्मेलन ने कहा कि जहाजी कम्पनियों पर दबाव डालने के लिये सामूहिक कार्रवाई की जाय।

'सम्मेलन इस बारे में सहमत था कि राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय बैंक तथा बीमा कम्पनियाँ स्थापित की जायँ।

'सम्मेलन ने यह महसूस किया कि तैल के बारे में एक समान नीति बनाने के लिए मुनाफे, टैक्स आदि की सूचना का आदान प्रदान किया जाय।

'सम्मेलन ने एटमी शक्ति को शान्तिपूर्ण निर्माण के काम में इस्तैमाल करने पर जोर दिया।

'परस्पर हित की सूचना के लेन-देन के सम्बन्ध में इस क्षेत्र के देशों में एक-दूसरे देश के सूचनाधिकारी नियुक्त करने का निश्चय किया गया।

'यह भी तय किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में अपने पारस्परिक हितों को आगे बढ़ाने के लिए इन देशों के प्रतिनिधियों में पहले विचार-विनिमय हो जाया करे। फिर भी इन देशों का किसी प्रकार का गुट बनाने का इरादा नहीं है।'

सांस्कृतिक सहयोग

'सम्मेलन इस बारे में एक मत था कि राष्ट्रों में सद्भाव बढ़ाने का सबसे प्रबल साधन सांस्कृतिक सहयोग है एशिया और अफ्रीका महान धर्मो और सभ्यताओं की जन्मभूमि रहे हैं। इन देशों की संस्कृति, आत्मिक और विश्व-व्यापी आधार पर खड़ी है। दुर्भाग्य से पिछली सदियों में इसका सांस्कृतिक सम्बन्ध टूट गया था।

'एशिया और अफ्रीका की जनता अपने पुराने सांस्कृतिक सम्बन्धों को फिर

जीवित करना चाहती है और नई दुनियाँ के आधार पर नये सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले सभी देशों ने परस्पर घनिष्ठ सांस्कृतिक सहयोग कायम करने पर जोर दिया।

'सम्मेलन ने इस बात पर ध्यान दिया कि एशिया और अफ्रीका के अनेक हिस्सों में उपनिवेशवाद रहना, वह चाहे जिस रूप में हो, न सिर्फ हमारे सांस्कृतिक सहयोग को रोकता है बल्कि जनता की राष्ट्रीय सांस्कृतियों को भी दबाता है।

'सम्मेलन ने साम्राज्यी राष्ट्रों द्वारा गुलाम जातियों की भाषा और संस्कृति को कुचलने की निन्दा की। सम्मेलन ने खास तौर से नस्ली भेदभाव की निन्दा की।

'सम्मेलन ने इस बात पर जोर दिया कि एशिया अफ्रीका के परस्पर सांस्कृतिक सम्बन्धों के पीछे कोई अलग रहने या प्रतिद्वन्द्विता की भावना नहीं है। सहिष्णुता और विश्व बन्धुत्व की भावना के अनुसार एशिया और अफ्रीका का सांस्कृतिक सहयोग विश्व सहयोग की व्यापक परिधि में ही होगा।

'एशिया और अफ्रीका में परस्पर सांस्कृतिक सहयोग के साथ ही सम्मेलन दूसरों से सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ाना चाहता है। इससे खुद हमारी संस्कृति समृद्ध होगी और विश्व शान्ति और सद्भाव बढ़ेगा।

'एशिया और अफ्रीका के बहुत से देश शिक्षा, विज्ञान और कौशल की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। सम्मेलन ने तय किया कि इस क्षेत्र के आगे बढ़े देश इस सम्बन्ध में शिक्षा आदि की सुविधा देकर पिछड़े देशों की सहायता करें।

'सम्मेलन ने यह मत प्रकट किया कि आज की स्थिती में द्विपक्षीय समझौते से ही सांस्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ाने में सबसे अधिक सफलता मिल सकती है।'

मानव अधिकार और आत्म निर्णय

'संयुक्त राष्ट्र अधिकार पत्र में दिये गये मानव अधिकार के मूल सिद्धान्तों और राष्ट्रों के आत्म निर्णय के अधिकार का सम्मेलन ने पूर्ण समर्थन किया।

'अफ्रीका के एक बड़े क्षेत्र में और दुनियाँ के दूसरे हिस्से में अलगाव और

भेदभाव की नीतियों की सम्मेलन ने निन्दा की।

'सम्मेलन में फिलस्तीन' ने अरब जनता के अधिकारों का समर्थन किया और माँग की कि इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ के फैसलों पर अमल किया जाय।

गुलाम देशों की समस्या

सम्मेलन ने उपनिवेशवाद को खत्म करने का समर्थन किया और इरियान के सवाल पर इंडोनेशिया के रुख को सही माना।

सम्मेलन ने अलजीरिया, मोरक्को और ट्यूनीशिया की जनता के आत्म-निर्णय और स्वतन्त्रता के अधिकार का समर्थन किया और फ्रांसीसी सरकार पर इस बात के लिये जोर दिया कि इस प्रश्न को वह शान्तिपूर्ण ढंग से फौरन हल करे।

विश्व शान्ति और सहयोग बढ़ाना

सम्मेलन ने इस बात पर जोर दिया कि प्रभावपूर्ण सहयोग के लिये यह आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता सभी के लिये खोल दी जाय। सम्मेलन की राय में इसमें शामिल होने वाले इन देशों को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता मिलनी चाहिये।

कम्बोडिया, श्री लंका, जापान, जार्डन, लाओस, लिबिया, नेपाल और संयुक्त वियतनाम।

सम्मेलन ने यह भी मत प्रकट किया कि सुरक्षा परिषद में इस क्षेत्र को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाय।

युद्ध का परिणाम

सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की स्थिति पर और विश्व युद्ध के खतरे से सारी मानव जाति के सामने आये हुए खतरे पर विचार कर तमाम राष्ट्रों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि वे इस पर सोचें कि आज इस तरह का युद्ध छिड़ गया तो उसका कितना भयंकर परिणाम होगा।

सम्मेलन ने यह मत प्रकट किया कि मानवता को पूर्ण विनाश से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि निरस्त्रीकरण किया जाय और ऐटमी हथियारों के

निर्माण और परीक्षण पर रोक लगाई जाय।

सम्मेलन ने यह मत प्रकट किया कि एशिया अफ्रीका के यहाँ आये हुए राष्ट्रों का मानवता के प्रति यह कर्तव्य है कि इन हथियारों पर रोक लगाने का वे समर्थन करें और सम्बन्धित राष्ट्रों तथा दुनियाँ के जनमत से अपील करें कि ऐसे निरस्त्रीकरण और रोक पर वह अमल करायें।

सम्मेलन ने सभी राष्ट्रों से अपील की कि ऐटमी हथियारों पर जब तक पूरी रोक नहीं लगती तब तक के लिये उनके परीक्षण पर रोक लगा देने का एक समझौता किया जाय।

सम्मेलन ने यह घोषणा की कि शान्ति रक्षा के लिये व्यापक निरस्त्रीकरण एकदम आवश्यक है और संयुक्त राष्ट्रसंघ से और सभी लोगों से अपील की कि हथियारों में कमी करने के लिये, व्यापक संहार के हथियारों पर रोक लगाने के लिये और इस पर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण स्थापित करने के लिये तेजी से कोशिश करें।

'सम्मेलन ने अमन और यमन के दक्षिणी भाग के सम्बन्ध में जिस पर ब्रिटिश संरक्षण है, यमन अधिकार का समर्थन किया और माँग की कि इसे शान्तिपूर्ण ढंग से हल किया जाय।

गुलाम देशों की समस्याओं पर घोषणा

सम्मेलन ने गुलाम देशों और उपनिवेशवाद की समस्याओं और विदेशी आधिपत्य और शोषण की बुराइयों पर विचार किया और इस पर सहमत हुआ।

यह घोषणा की जाती है कि उपनिवेशवाद अपने हर रूप में एक ऐसी बुराई हुई है जिसका जल्दी ही अन्त कर देना चाहिये।

यह स्वीकार किया जाता है कि लोगों को विदेशी गुलामी, आधिपत्य और शोषण का गुलाम बनाना उन्हें मूल मानव अधिकारों से वंचित करना है, संयुक्त-राष्ट्र अधिकार पत्रों के विरुद्ध है और विश्व शान्ति और सहयोग को आगे बढ़ाने में बाधक है।

इस तरह के तमाम लोगों की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का समर्थन किया जाता है।

सम्बन्धित राष्ट्रों से माँग की जाती है कि वे ऐसे लोगों को स्वतन्त्रता और स्वाधीनता दें।

विश्व शान्ति सहयोग बढ़ाने की घोषणा

सम्मेलन ने गम्भीरता के साथ विश्व शान्ति और सहयोग के सवाल पर विचार किया। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव की मौजूदा स्थिति और उसकी वजह से ऐटमी महायुद्ध के खतरे पर गहरी चिन्ता प्रकट की गई।

शान्ति का सवाल अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के सवाल से बँधा है। इस सम्बन्ध में सभी राज्यों को खासकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के जरिये इस बात में सहयोग करना चाहिये कि हथियार घटाये जायँ और प्रभावपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में ऐटमी हथियार खतम किये जायँ।

इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में बढ़ावा दिया जा सकता है और ऐटमी शक्ति को केवल शान्ति के कार्यों में इस्तैमाल किया जा सकता है। इस तरह एशिया और अफ्रीका की आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं, क्योंकि इन देशों को फौरन इस बात की जरूरत है कि सामाजिक प्रगति हो और व्यापक स्वाधीनता में उनके रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठे।

आजादी और शान्ति एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। सभी देशों की जनता को आत्म निर्णय का अधिकार मिलना चाहिये और जो लोग अब भी गुलाम हैं उन्हें जल्द से जल्द स्वतन्त्रता और स्वाधीनता दी जाय।

अविश्वास और भय से मुक्त एक दूसरे के प्रति विश्वास और सद्भावना के साथ, राष्ट्रों को सहिष्णु होना चाहिये और एक दूसरे के साथ शान्ति से अच्छे पड़ौसियों की तरह रहना चाहिये और नीचे दिये गये सिद्धान्तों के आधार पर आपस में मित्रतापूर्ण सहयोग बढ़ाना चाहिये।

१—मानव अधिकारों और संयुक्त राष्ट्र अधिकार पत्र का सम्मान करना,

२—सभी राष्ट्रों की प्रभु सत्ता अखण्डता का सम्मान करना।

३—वाणी और राष्ट्रीय समानता को मानना।

४—दूसरों के अन्दरूनी मामलों में दखल न देना।

५—संयुक्त राष्ट्र अधिकार पत्र के अनुसार अकेले या सामूहिक रूप से किसी राष्ट्र के आत्म रक्षा के अधिकार को मानना।

६—सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को किसी एक बड़ी विश्व शक्ति के फायदे में न इस्तैमाल करना, दूसरे देशों पर दबाव न डालना।

७—किसी दूसरे देश के खिलाफ हमले की कार्रवाई की धमकी या बल-प्रयोग न करना।

८—तमाम अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्ति से सुलझाना।

९—आपसी हित और सहयोग को बढ़ाना।

१०—न्याय और अन्तर्राष्ट्रीय जिम्मेदारियों का सम्मान करना।

सम्मेलन अपना ये विश्वास प्रकट करता है कि इन सिद्धान्तों के अनुसार मित्रतापूर्ण सहयोग अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा प्रभाव पूर्ण ढंग से कायम रखी जा सकेगी और बढ़ाई जा सकेगी और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में सहयोग से सभी की समृद्धि और भलाई होगी।

सम्मेलन ने इस बात की सिफारिश की कि इस सम्मेलन को बुलाने वाले राष्ट्र दूसरे सम्बन्धित राष्ट्रों से सलाह कर दूसरा सम्मेलन बुलाने पर विचार करें।

पंडित नेहरू

सम्मेलन के बीच हमने यद्यपि पंडित नेहरू का जिकर नहीं किया, और ऐसा किसी भ्रमवश हुआ है, ऐसी बात नहीं है, बल्कि अच्छी तरह मनन करने के बाद ही ऐसा किया गया है। क्योंकि सम्मेलन में जो कुछ फैसले हुए उनमें पंडित नेहरू का पूरा-पूरा हाथ था, या यों कहिये कि पंडित नेहरू ने यदाकदा जब भी शान्ति के बारे में कुछ कहा सम्मेलन के फैसलों में वही निश्चित हुआ। अर्थात् सम्मेलन में दो व्यक्तियों का व्यक्तित्व ही निखर कर चमका, चीन के प्रधानमन्त्री चाओ एन लाई और पंडित जवाहरलाल नेहरू।

चाओ एन लाई ने अपने भाषण में चीन की समस्या के सिवाय और जो कुछ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और स्वतन्त्रता के लिए कहा, पंडित नेहरू की उस पर स्पष्ट छाप दीखती है। पंचशील सिद्धान्त तो श्री चाओ और नेहरू जी सम्मिलित देन थे ही। इस तरह बाडुंग सम्मेलन की सफलता का एक बहुत बड़ा श्रेय पंडित नेहरू को है। बाडुंग सम्मेलन में किये गये निश्चय भारत की पर-राष्ट्र नीति के अनुसार ही हैं, और इस तरह नेहरू जी का शान्ति के लिये एशिया को आवाहन सफल रहा है।

सप्तम अध्याय

'नेहरू नई दुनियाँ में'

रूस में नेहरू

पंडित जवाहरलाल नेहरू की रूस यात्रा के सम्बन्ध में जिन लोगों ने भी समाचार पत्रों में पढ़ा उन पर तुरन्त उसका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा। अधिकाँश लोग ऐसे थे, जिन्हें इस समाचार से प्रसन्नता हुई, मगर युद्धखोरों के दलालों में एक हलचल सी मच गई, क्योंकि अब तक शाँति के देश रूस के बारे में उन्होंने काफी भ्रम सा लोगों के बीच फैला रखा था। यों दूसरे लोग भी रूस गए थे, मगर उनके बारे में इन दलालों का कहना होता था कि जाने वाले या तो कम्युनिस्ट थे या कम्युनिस्ट समर्थित। यहाँ तक इन नीचों ने कहा कि रूस से जो भी लौटकर आता है उसे एक मोटी रकम रिश्वत में मिल जाती है, इसीलिये वह रूस के गुणगान करने लगता है। और वह इसके लिए नेहरू का नाम लिया करते कि पंडित जी अमेरिका से इँगलैंड गये, और हाल में चीन में भी गये, मगर रूस इसीलिए नहीं जाते कि वहाँ की शासन प्रणाली बड़ी खराब है। ऐसे लोगों के सामने अन्धेरा छा गया कि अब पं० नेहरू रूस जारहे हैं, इससे उनकी पोल खुल जायगी और जिसे वह लोहे की दीवार कहते हैं, वह वास्तव में क्या है इसे लोग भारत के प्रधान मन्त्री के मुँह से सुन लेंगे। खैर!

समाचार से भारतीय जनता को प्रसन्नता हुई, उसने पंडित नेहरू के रूस जाने के विचार का स्वागत किया।

७ जून को पंडित जवाहरलाल नेहरू संध्या के समय मास्को के केन्द्रिय हवाई अड्डे पर वायुयान से उतरे। उनके साथ श्रीमती इन्दरा गांधी, परराष्ट्र मन्त्रालय के सचिव श्री एन० आर० पिल्ले तथा संयुक्त सचिव श्री एम० ए० हुसैन थे।

केन्द्रीय हवाई अड्डा सोवियत संघ और भारतीय राष्ट्र पताकाओं से सुशोभित था। पंडित नेहरू के स्वागत में उस समय, रूस के प्रधान मन्त्री एन० ए० बुलगानिन, एल० एम० कगानोविच, जी० एम० मालेनकोव, वी० एम० मोलोतोव, ए० आई० मिकोयान, एम० जी० पूर्वखिन एम० जेड० सावरोव, एन एस० ख्रुश्चेव, रूसी संघ की मन्त्रि परिषद के अध्यक्ष ए०एम० पुजानोव, सोवियत संघ

के मन्त्रिगण पी० वाई० एत्रोदोव, आई० ए० वेनेडिक्टोव, जी० के० झुकोव, पी० येल्युतिन, एम० डी० कोत्ररीगीना, आई० जी० कावानोव, पी० आई० पार्शिन, एन० ए० मिखैलोव, डी० वाई० रेजर, ए० जी० शेरेमेत्येव, एन० एस० रिझोव, सोवियतसंघ के मार्शल वी० डी० सोकोलोवस्की, वायु सेना के मुख्य मार्शल पी० एफ० झिगारेव, कर्नल जनरल आई० ए० सेरोव, सोवियत संघ के उपमन्त्रीगण ए० ए० ग्रोमिको, वी० वी० मारसकेविच, वी० वी० कुजनेत्सोव, तास के जनरल मैनेजर एन० जी० पालगोनोव, प्रावदा के मुख्य सम्पादक डी० टी० शेपीलोय सोवियतसंघ के मजदूर संघों की केन्द्रीय परिषद के उपाध्यक्ष एल० एन० सोलोव्येव, मास्को नगर सोवियत की कार्यकारिणी समिती के अध्यक्ष एम० ए० यास्नोव, मास्को नगर के उप सेनानायक कर्नल ए० टी० बेरेदचेंको, सोवियत संघ की मन्त्रि परिषद्, सोवियत संघ के परराष्ट्र-मन्त्रालय, सोवियत संघ के रक्षा मन्त्रालय के उच्च अधिकारी, गणमान्य व्यक्तियों और प्रेस प्रतिनिधियों ने उनका स्वागत किया। भारत के सोवियत रूस में स्थानापन्न राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन और सोवियत रूस के भारत में मनोनीत राजदूत श्री एम० ए० मेनशिकोव भी उपस्थित थे। मास्को स्थित सभी देशों के राजदूत भी स्वागत करने वालों में सम्मिलित थे।

मास्को के तरुण पायोनियरों ने अतिथियों को गुलदस्ते भेंट किये। पंडित नेहरू और श्रीमती इन्द्रा गांधी ने बच्चों को पुष्पमालाएँ भेंट करने के उपलक्ष्य में हार्दिक धन्यवाद दिया।

भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रीय गान की गम्भीर ध्वनि के पश्चात् सोवियत संघ के राष्ट्रीय गान के भव्य तराने गूँज उठे।

सोवियत रूस के प्रधान मन्त्री और पंडित जवाहरलाल नेहरू ने गार्ड आफ आनर का निरीक्षण किया।

धन्यवाद भाषण

पं० नेहरू ने माईक के सामने खड़े होकर हवाई अड्डे पर हिन्दी में भाषण दिया :

'यहां सोवियत संघ में आने की मेरी इच्छा बहुत पहले से रही है। इस प्रसिद्ध और एतिहासिक नगर में मैं बहुत समय पहले आना चाहता था। मेरी इच्छा आज पूर्ण हुई है। यहाँ आकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। मैं स्वयं को एक यात्री समझता हूँ और आपकी सरकार तथा जनता के लिए शुभेच्छायें लिए हुये एक यात्री के रूप में ही मैं यहाँ आया हूँ। मेरा पूर्ण विश्वास है कि मेरे यहाँ आने से हमारे सम्बन्ध और भी दृढ़ होंगे। इस हार्दिक एवं मैत्रीपूर्ण स्वागत के लिए मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।'

इसके बाद पं० नेहरू और श्री एन० ए० बुलगानिन पहली मोटरगाड़ी में बैठे। श्रीमती इन्द्रागांधी, श्रीमती मैनन, एम० पी० रोबरीगीना और वी० एन० मैनशिकोव दूसरी गाड़ी में। भारतीय गणतन्त्र के परराष्ट्रीय सचिव श्री एन० आर० पिल्ले, सोवियत संघ के पराष्ट्र मन्त्रालय के उप मन्त्री वी० वी० कुजनेत्सोव, सोवियत संघ के परराष्ट्र मन्त्रालय के प्रोतोकोल विभाग के प्रधान एफ० एफ० मोलोचकोव तीसरी मोटर गाड़ी में और भारतीय गणतन्त्र के परराष्ट्र मन्त्रालय के संयुक्त सचिव एस० ए० हुसैन, सोवियत संघ में भारतीय गणतन्त्र के राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन, भारत में सोवियत संघ के राजदूत मैनशिकोव चौथी गाड़ी में बैठे थे, अन्य गाड़ियों में पंडित नेहरू के दल के अन्य सदस्य तथा सोवियत और विदेशी पत्रकार थे।

सड़क के किनारे से दूसरे किनारे तक लगी बृहद् पताकाओं पर ये शब्द अंकित थे—'भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू का अभिवादन स्वागतम्।'

लम्बे जनमार्ग के दोनों ओर भारी जनता एकत्रित थी, जो पंडित नेहरू के स्वागत के निमित्त वहाँ एकत्रित थी, सभी ने हाथ हिलाहिलाकर उनका स्वागत किया। और इस तरह सोवियत जनता ने पहले ही दिवस अपनी मैत्रीपूर्ण शुभ कामनायें पंडित नेहरू तक पहुँचा दीं।

आज ही के दिन प्रावदा ने पण्डित नेहरू के आगमन पर सम्पादकीय लिखा जो अब एतिहासिक लेख बन गया है।

प्रावदा द्वारा स्वागत

प्रावदा में जो ७ जून १९५५ को सम्पादकीय प्रकाशित हुआ उसका शीर्षक

था—'सोवियत यूनीयन और भारत की जनता के बीच इस मित्रता में वृद्धि हो और शक्तिशाली बने।'

'भारतीय गणराज्य के प्रधान पं० जवाहरलाल नेहरू आज हमारे देश में पधार रहे हैं। सोवियत जनता अपनी मित्र भारतीय जनता के इस सुपुत्र का हार्दिक स्वागत करती है।

'इतिहास के पूरे दौरान में १५ वीं शताब्दी में साहसी रूसी यात्री अफानासी निकीतिन द्वारा भारत यात्रा से लेकर आज तक हमारे देशों के बीच लगातार मैत्री सम्बन्ध स्थापित रहे हैं।

'प्रसिद्ध रूसी चित्रकार वेरेशाजिन ने भारत के इतिहास, प्रकृति और उसकी जनता के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में प्रेरणा ली थी।

'भारतीय साहित्य के प्रमुख प्रतिनिधि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बड़े स्नेह और सहानुभूति से सोवियतराज्य की राष्ट्रनीति और सोवियत संस्कृति के बारे में लिखा था।

'सोवियत यूनीयन और भारत की जनता ने सदैव एक दूसरे का बड़ा आदर किया है। दोनों को एकदूसरे के सुन्दर भविष्य के लिये होने वाले संघर्षों से नैतिक सहयोग प्राप्त हुआ है।

'भारत की प्रगतिशील जनता ने, जो उस समय भी उपनिवेश वादी गुलामी के नीचे दबी थी—महान अक्तूबर क्रांति का अभिनन्दन किया और सोवियत यूनीयन द्वारा प्राप्त की गयी सफलताओं को निकट से देखा। सोवियत यूनीयन ने अपने जन्म ही से लगातार भारतीय जनता की स्वाधीनता के लिए और उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध होने वाले संघर्ष के प्रति गहरी सहानुभूति दिखाई।

'कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज के संस्थापक, महान लेनिन भारतीय जनता की रचनात्मक शक्तियों और आजादी तथा स्वाधीनता के लिये होने वाले संघर्ष की सफलता में पूर्ण विश्वास रखते थे। सोवियत जनता को इससे बहुत सन्तोष है कि भारत ने दसियों साल के बाद उपनिवेशवादी शासन के जुए से आखिरकार अपने को मुक्त कर लिया और अब वह राष्ट्रीय विकास के स्वतन्त्र मार्ग पर बढ़ने के लिए दृढ़ है।

'यह चीज इस आवश्यकता को और प्रकट करती है कि सोवियत भारतमैत्री में वृद्धि हो और मजबूती आये ।

'भारत और सोवियत जनता के राजकीय ढांचे में अन्तर है । उनकी सामाजिक और राजनीतिक प्रथाओं में विभिन्नता है, लेकिन सोवियत और भारतीय जनता में समानता भी बहुत है, दोनों ही देशों की जनता शांति प्रेमी है ।

'काफी व्यय से सोवियत यूनीयन और जनतान्त्रिक भारत में फैक्टरियां और मिलें खुल रही हैं, बाँध बनाये जा रहे हैं, नदियों के तटों पर बिजली के कारखाने खड़े किये जा रहे हैं, रेगिस्तानों को उत्पादन भूमि में परिवर्तित किया जा रहा है ।

'निर्माण और रचना के लिये शांति की आवश्यकता होती है । हमारी समान कामना यही है कि हम शांति और मैत्री के सम्बन्धों के बीच रहें । हमारे दोनों देश शांति की रक्षा और दृढ़ता के लिए सतत संघर्षशील हैं, अन्तरष्ट्रीय समस्याओं और झगड़ों के शांतिपूर्ण हल के लिए आगे बढ़कर आते हैं । यह चीज सोवियत और भारतीय जनता को एक करती है ।

'अन्य शान्ति प्रेमी जनता के साथ, सोवियत और भारतीय जनता द्वारा शान्ति के लिये किये जाने वाले संघर्ष के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप स्पष्ट परिणाम प्रकट होने लगे हैं । सोवियत यूनीयन और जनतांत्रिक भारत द्वारा सक्रिय रूप से बीच में पड़ने से एशिया में, कोरिया और हिन्द चीन के दो दावानलों को बुझाया जा सका ।

'सोवियत जनता, एशिया में शांति और विश्वशान्ति प्राप्त करने के प्रश्न को प्रशंसा की दृष्टि से देखती है । हिन्द चीन में अन्तर राष्ट्रीय संगठनों में भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा की गई घोषणाओं को, भारतीय प्रतिनिधियों के नेतृत्वमें चलने वाले अन्तरराष्ट्रीय पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण कमीशन की कार्रवाइयों को सोवियत जनता लगातार बड़े गौर से देख रही है ।

'सोवियत यूनीयन के साथ संयुक्त रूप से संयुक्तराष्ट्रसंघ में जनवादी चीन को उचित स्थान दिलाने के लिये किये जाने वाले संघर्ष के कारण, भारत समस्त शान्ति प्रिय जनता की भारी प्रशंसा का पात्र बन गया है । जनवादीचीन

की उचित माँग के तुस्टि करण से न केवल सुदूरपूर्व में वल्कि दुनियां भर में शान्ति सुदृढ़ होगी, अन्तर राष्ट्रीय तनाव समाप्त होगा और राष्ट्रसंघ के कार्य और अधिकार में वृद्धि आयेगी।

'जनता को भयभीत करने वाले सैनिक गुटों के विरुद्ध दोनों देशों का नकारात्मक काम और उनकी समाप्ति के लिए संघर्ष कि दूसरे राज्यों की सीमा के अन्दर फौजी अड्डे न कायम किये जायें—यह भी वह चीज है जिसने परस्पर विश्वास की भावना को गहरा कर किया है।

'उपनिवेशवाद, अब तक हुए युद्ध, रंगभेद—ये सब साम्राज्यवाद के सेवक रहे हैं। भारतीय जनता अभी भी अपनी सीमा के एक भाग से उपनिवेशवादी शासन के जुए को उतार फेंकने और उसे मुक्त करने के लिये संघर्ष कर रही है, ताकि उसकी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में प्रगति हो सके। सोवियत जनता भारतीय जनता के इस संघर्ष को सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखती है।

'सोवियत जनता औद्योगिक विकास के लिये भारत सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रयासों को हमदर्दी भरी नजर से देखती है, क्योंकि स्वतन्त्र अस्तित्व के लिये औद्योगीकरण के महत्त्व को भारत ने अपने स्वयं के तजुर्बे से समझा है। रंग-भेद, विशेषकर दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार के खिलाफ भारतीय जनता के संघर्ष का सोवियत स्त्री और पुरुष समर्थन करते हैं।

'दूसरे विनाशकारी महायुद्ध की तैयारियों और हथियार बन्दी की होड़ का भारी बोझा मेहनतकश जनता द्वारा उठाया जाता है और जिसकी वजह से जन कल्याणकारी योजनाओं में बाधा पड़ती है। भारत और सोवियत जनता की परस्पर समझदारी और ठोस सहयोग इन बुराइयों से मानवता को बचानेवाली कार्रवाइयों में प्रकट होता है।

'कई वर्षों से सोवियत यूनियन लगातार इस बात पर जोर दे रहा है। हथियार बन्दी सीमित की जाय और उसमें कमी की जाय, एटम, हाइड्रोजन और दूसरे नरसंहारकारी हथियारों के निर्माण और प्रयोग पर रोक लगाई जाय और इन फौजों पर अमल कराने और निरीक्षण करने के लिये उचित एवं प्रभाव-

शाली नियन्त्रण की व्यवस्था की जाय ।

'सोवियत यूनीयन और भारत के बीच मैत्री और सहयोग का आधार ये सिद्धान्त है—एक दूसरे की सीमा और परस्पर सम्मान, अनाक्रमण, एक दूसरे के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर लाभ, तथा शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व । इन सिद्धान्तों को बिना विचलित हुए, दृढ़तापूर्वक सोवियत यूनीयन और भारत के सम्बन्धों के बारे में लागू किया जा रहा है ।

'शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के ये सिद्धान्त जनवादी चीन की राज्य-परिषद के प्रधानमन्त्री, चाओ एन लाई और भारत के प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल की प्रसिद्ध संयुक्त घोषणा में निहित हैं । जनवादी चीन और भारत के बीच बढ़ती हुई मैत्री विश्व शान्ति की स्थापना में अमूल्य योग प्रदान करती है ।

'इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सोवियत यूनीयन में भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू का आगमन हमारे देशों के बीच मैत्री सम्बन्धों को और मजबूत करेगा, विश्व शान्ति के उद्देश्य को लाभ पहुंचायेगा, और दुनियां भर में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करेगा ।'

जंगबाज चौंके

एक नई दुनियाँ के मजदूरों के राज्य में पंडित नेहरू के इस प्रकार के हार्दिक स्वागत को देखकर जंगबाजों में खलबली मच गई, उनके अखबारों के कालम पर कालम रँगे जाने लगे, और पंडित नेहरू का कहना कि 'मैं शान्ति और भाईचारे का सन्देश लेकर आने वाला तीर्थ यात्री हूँ' से उनके कलेजे पर सॉप लोट गया ।

अमरीका के एक अखबार ने कीचड़ उछालते हुए इस पर लिखा—

'मिस्टर नेहरू सम्मानित और बुद्धिमान व्यक्ति हैं, फिर भी इस बात का तर्कसंगत भय है कि उनकी हार्दिक शान्ति भावनाओं का लाभ उठाकर मास्को ने उन्हें बड़ी चतुराई से चूहे की तरह फसा लिया है ।'

हमारा ख्याल है, इससे नीच ढंग से और क्या कहा जा सकता है, सभ्यता का दम्भ भरने वाले अमेरिकी पूंजीपतियों की सभ्यता और उनकी संस्कृति का वास्तविक रूप केवल इन दो लाइनों में स्पष्ट चमकता है । जब पंडित नेहरू

की उचित माँग के तुस्टि करण से न केवल सुदूरपूर्व में बल्कि दुनियां भर में शान्ति सुदृढ़ होगी, अन्तर राष्ट्रीय तनाव समाप्त होगा और राष्ट्रसंघ के कार्य और अधिकार में वृद्धि आयेगी।

'जनता को भयभीत करने वाले सैनिक गुटों के विरुद्ध दोनों देशों का नकारात्मक काम और उनकी समाप्ति के लिए संघर्ष कि दूसरे राज्यों की सीमा के अन्दर फौजी अड्डे न कायम किये जायँ—यह भी वह चीज है जिसने परस्पर विश्वास की भावना को गहरा कर किया है।

'उपनिवेशवाद, अब तक हुए युद्ध, रंगभेद—ये सब साम्राज्यवाद के सेवक रहे हैं। भारतीय जनता अभी भी अपनी सीमा के एक भाग से उपनिवेशवादी शासन के जुए को उतार फेंकने और उसे मुक्त करने के लिये संघर्ष कर रही है, ताकि उसकी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में प्रगति हो सके। सोवियत जनता भारतीय जनता के इस संघर्ष को सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखती है।

'सोवियत जनता औद्योगिक विकास के लिये भारत सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रयासों को हमदर्दी भरी नजर से देखती है, क्योंकि स्वतन्त्र अस्तित्व के लिये औद्योगीकरण के महत्त्व को भारत ने अपने स्वयं के तजुर्बे से समझा है। रंग-भेद, विशेषकर दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार के खिलाफ भारतीय जनता के संघर्ष का सोवियत स्त्री और पुरुष समर्थन करते हैं।

'दूसरे विनाशकारी महायुद्ध की तैयारियों और हथियार बन्दी की होड़ का भारी बोझा मेहनतकश जनता द्वारा उठाया जाता है और जिसकी वजह से जन कल्याणकारी योजनाओं में बाधा पड़ती है। भारत और सोवियत जनता की परस्पर समझदारी और ठोस सहयोग इन बुराइयों से मानवता को बचानेवाली कार्रवाइयों में प्रकट होता है।

'कई वर्षों से सोवियत यूनियन लगातार इस बात पर जोर दे रहा है। हथियार बन्दी सीमित की जाय और उसमें कमी की जाय, एटम, हाइड्रोजन और दूसरे नरसंहारकारी हथियारों के निर्माण और प्रयोग पर रोक लगाई जाय और इन फौजों पर अमल कराने और निरीक्षण करने के लिये उचित एवं प्रभाव-

शाली नियन्त्रण की व्यवस्था की जाय।

'सोवियत यूनीयन और भारत के बीच मैत्री और सहयोग का आधार ये सिद्धान्त है—एक दूसरे की सीमा और परस्पर सम्मान, अनाक्रमण, एक दूसरे के भीतरी मामलों में हस्तक्षेप न करना, समानता और परस्पर लाभ, तथा शान्ति-पूर्ण सह अस्तित्व। इन सिद्धान्तों को बिना विचलित हुए, दृढ़तापूर्वक सोवियत यूनीयन और भारत के सम्बन्धों के बारे में लागू किया जा रहा है।

'शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के ये सिद्धान्त जनवादी चीन की राज्य-परिषद के प्रधानमन्त्री, चाओ एन लाई और भारत के प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल की प्रसिद्ध संयुक्त घोषणा में निहित हैं। जनवादी चीन और भारत के बीच बढ़ती हुई मैत्री विश्व शान्ति की स्थापना में अमूल्य योग प्रदान करती है।

'इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सोवियत यूनीयन में भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू का आगमन हमारे देशों के बीच मैत्री सम्बन्धों को और मज-बूत करेगा, विश्व शान्ति के उद्देश्य को लाभ पहुंचायेगा, और दुनियां भर में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करेगा।'

जंगबाज चौंके

एक नई दुनियाँ के मजदूरों के राज्य में पंडित नेहरू के इस प्रकार के हार्दिक स्वागत को देखकर जंगबाजों में खलबली मच गई, उनके अखबारों के कालम पर कालम रँगे जाने लगे, और पंडित नेहरू का कहना कि 'मैं शान्ति और भाईचारे का सन्देश लेकर आने वाला तीर्थ यात्री हूँ' से उनके कलेजे पर साँप लोट गया।

अमरीका के एक अखबार ने कीचड़ उछालते हुए इस पर लिखा—

'मिस्टर नेहरू सम्मानित और बुद्धिमान व्यक्ति हैं, फिर भी इस बात का तर्कसंगत भय है कि उनकी हार्दिक शान्ति भावनाओं का लाभ उठाकर मास्को ने उन्हें बड़ी चतुराई से चूहे की तरह फंसा लिया है।'

हमारा ख्याल है, इससे नीच ढंग से और क्या कहा जा सकता है, सभ्यता का दम्भ भरने वाले अमेरिकी पूंजीपतियों की सभ्यता और उनकी संस्कृति का वास्तविक रूप केवल इन दो लाइनों में स्पष्ट चमकता है। जब पंडित नेहरू

अमेरिका गये थे तब यही अखबार उनके स्वागत में कालम पर कालम रंग रहा था, इसका एक कारण था उस समय जंगखोरों ने सोचा था, पंडित नेहरू हमारे स्वागत के जाल में फँस जायेंगे। पर वह पंडित नेहरू ही थे, जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में अमेरिका में ही युद्ध चाहने वाले राष्ट्रों की भर्तसना की थी। क्या न्यूयार्क टाइम्स के सम्पादक महोदय ने उस समय पंडित नेहरू को नहीं पहिचाना था, कि पंडित नेहरू शान्ति के पुजारी हैं, और उनका अमेरिका भ्रमण शान्ति की खोज का एक छोटा-सा अध्याय मात्र है।

न्यूयार्क क्यों पंडित नेहरू की इस यात्रा से नाराज हुआ, इसका कारण उसके नीचे लिखे शब्दों से स्पष्ट हो जाता है—

'मार्शल बुलगानिन और उनके साथी पंडित नेहरू को एक ऐसे नाटक का पात्र बनाने में सफल हो गये हैं जिनमें कम्युनिस्ट संसार 'तनाव कम करने' के सिद्धान्त का उपासक और बिना युद्ध झगड़े और मतभेद तय करने की कोशिश करने वालों की अन्तिम आशा के प्रतीक रूप में प्रकट होता है, और अमेरिका तथा उसके साथी जंगबाजों के रूप में प्रकट होते हैं।

'खेद है कि पंडित नेहरू जैसा आदमी इस नाटक में सम्मिलित किया जा सका।'

यदि हम यों कहें कि अमेरिकी जंगबाज इसलिए पंडित नेहरू से रुष्ट हो गये कि उनकी मास्को यात्रा से रूस की शान्ति नीति उजागर हो गई और अमरीकी साम्राज्यवादियों की 'युद्ध नीति' का पर्दा फाश हो गया तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

अमेरिका में ही यह हलचल मची हो, ऐसी बात नहीं, ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के खेमे में भी गड़बड़ाहट और बौखलाहट मच गई। ब्रिटिश रेडियो (बी. बी. सी.) ने तो अपनी समाचार बुलेटिन में पंडित नेहरू के मास्को पहुँचने के समाचार का ही जिक्र नहीं किया।

ब्रिटिश पूँजीपतियों के अखबार मैनचेस्टर गार्जियन को जब सत्य पर पर्दा डालने के लिए कुछ नहीं मिला तो वह नाराज होकर लिखने लगा यह सब तो केवल सोवियत रूस के अखबारों के भारी प्रोपेगंडे के कारण हुआ है।

इण्डियन एक्स प्रेस के लन्दन प्रतिनिधि ने लिखा—

'एक ओर ब्रिटिश सरकार सोवियत के इस कथन पर सन्देह करती है कि (सोवियत की) यह कार्रवाइयाँ अन्तरराष्ट्रीय तनाव कम करने के उद्देश्य से की जा रही हैं। दूसरी तरफ ब्रिटेन के अखबार सोवियत नीति से भारत जैसे देश में पैदा हुए प्रभाव तो कम आंकने की कोशिश कर रहे हैं।......

'ब्रिटेन की जनता के लिए (!!!) सबसे परेशानी की बात यह है कि मि० नेहरू जब कभी ब्रिटेन आये, उनका ऐसा उत्साहपूर्ण स्वागत कभी नहीं हुआ न कभी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का सुधार करने के लिए किये गये उनके प्रयत्नों का उतना सम्मान हुआ, जितना सोवियत नेता कर रहे हैं।'

अन्त में उस सम्वाददाता ने लिखा—

'यह डर है कि कहीं मि० नेहरू रूसी राजनीतिज्ञों के सुमधुर व्यवहार और कूटनीति के संयोग के शिकार न हो जायँ, जिसकी वजह से बेलग्रेड और वियना में इतने अप्रत्याशित और आश्चर्य जनक परिणाम निकले और अब जिसका इस्तैमाल डाक्टर अडेन्योर पर किया जा रहा है।'

मास्को में

८ जून को प्रातः ही सोवियत संघ के प्रधान मन्त्री मार्शल बुल्गानिन पण्डित नेहरू से मिले, इस समय सोवियत संघ में भारत के राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन नेहरू जी के साथ थे।

पं० नेहरू और मार्शल बुल्गानिन के बीच जो बातचीत हुई उसमें सोवियत संघ के विदेशमन्त्री वी० एम० मोलोतोव तथा एम० ए० मेन्शिकोव भी सम्मलित थे।

उसी दिन वी० एम० मोलोतोव ने पण्डित नेहरू के सम्मान में एक भोज दिया। पश्चात् रूस के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री स्वर्गीय स्टालिन की समाधि पर पं० नेहरू ने पुष्पाँजलि अर्पित की।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने आज मास्को का क्रेमलिन भी देखा। उसके स्थापत्य कला सम्बन्धी स्मारकों का ब्लागोवेश्चेंस्की गिरजा घर, आर्खगेल्स का

गिरजाघर जो नयी सजधज के साथ हाल ही में खुला है, और ओरूजेइयानापालाता का—निरीक्षण किया ।

८ जून को ही पण्डित नेहरू स्तालिन मोटर कारखाना देखने गए थे । नेहरू जी के सम्मान में बालक बालिकाओं ने गीत सुनाए और पुष्प भेंट किये । एक बालिका ने नेहरू जी का स्वागत करते हुए अनुरोध किया कि वे सोवियत संघ के बच्चों की ओर से भारतीय बच्चों के लिए भाई चारे और प्रेम का सन्देश भेज दें ।

इस कारखाने में पण्डित नेहरू ने तीन घन्टे बिताये और होने वाले उद्योग के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की । इस कारखाने में ४०,००० मजदूर काम करते हैं और ३००० मोटरें नित्य बनकर तैयार होती हैं ।

पण्डित नेहरू के पहुँचते ही मजदूरों ने जिनमें आधी महिलाये थीं—'भारतीय मैत्री जिन्दाबाद,' 'भारतीय प्रधान मन्त्री जिन्दाबाद' के गगन वेधी नारों से उनका स्वागत किया । इस कारखाने के मजदूरों के प्रेम भाव से उनका हृदय भर आया ।

प्रातः भी जब पंडित नेहरू क्रेमलिन जा रहे थे, हर जगह जन समूह एकत्रित हो जाता था और तूफानी हर्षध्वनि से अपने अतिथि पण्डित नेहरू का स्वागत करता था । हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता ने एक मजदूर महिला से पूछा कि वह नेहरू जी को देखकर क्यों इतना हर्ष प्रगट कर रही हैं तो उसने उत्तर दिया—**नेहरू जी शान्ति का समर्थन करते हैं और सोवियत जनता भी शान्ति चाहती है ।** इसलिये उसे भारत से अत्यन्त प्रेम है ।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उस दिन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर सोवियत विदेश मन्त्री मो० मोलोतोव और प्रधान मन्त्री मार्शल बुलगानिन से बातचीत की ।

रात को भारतीय राजदूत की ओर से एक भोज दिया गया, जिसमें मार्शल बुलगानिन, खुश्चेव और सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष मण्डल के ६ अन्य सदस्य भी उपस्थित थे। इस भोज में भारतीय भोजन परोसा गया था।

तीसरे दिन ९ जून को पण्डित नेहरू ने हवाई जहाज का कारखाना देखा । नेहरू जी के प्रवेश करने और जाने के समय हजारों मजदूरों ने प्रेमपूर्वक नारों

से स्वागत किया।

कारखाने के मैनेजर ने उन्हें बताया कि यह कारखाना सोवियत की पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तरगत बना था। इसमें फौजी और नागरिक प्रयोग के हवाई जहाज कम बनते हैं, क्योंकि इनके लिए आर्डर नहीं मिल रहे हैं। आज कल अधिकाँशतः मुसाफिरी हवाई जहाज, उनके कल पुर्जे तथा खेती की मशीनें तैयार हो रही हैं।

दोपहर का भोजन सोवियत राष्ट्रपति मो० वोराशिलोव के साथ हुआ।

सन्ध्या को उन्होंने मास्को में कृषि प्रदर्शन भी देखी। प्रदर्शनी में श्रीमती इन्द्रागाँधी उनके साथ थीं। भारतीय अतिथियों के साथ प्रथम उपराष्ट्र मन्त्री वी० वी० कुज़नेत्सोव, भारत में सोवियत संघ के राजदूत मेनशिकोव, सोवियत संघ के परराष्ट्र मन्त्रालय के प्रोतोकोल विभाग के प्रधान एफ० एफ० मोलोच-कोव थे।

प्रदर्शनी देखने वाले अगणित दर्शकों ने तुमुल हर्षध्वनि के साथ उनका स्वागत किया।

पंडित नेहरू और श्रीमती इन्द्रागांधी ने अपने दल के सहित उद्यानों, खेतों और फव्वारों का निरीक्षण करते हुए प्रदर्शनी की अनुपम छटा देखी। अभ्यागत जिधर भी जाते थे तुमुलहर्ष ध्वनि से उनका स्वागत होता था।

जब पण्डित नेहरू उजबेक जनतन्त्र का मंडप देखने गए जो कपास रेशम तथा फारस के मेमनों के रोयें के लिए प्रसिद्ध है, तो उन्होंने बड़ी दिलचस्पी ली। तुर्कमेनिया के मंडप में नेहरू जी का ध्यान हाथ के बुने एक बृहत् कालीन की ओर आकर्षित हुआ जिसमें सोवियत जातियों की मैत्री की प्रतीक बहुजातीय सोवियत राज्य के प्रतिनिधियों का चित्रण है। इसी मंडप में नेहरू जी ने एक मानचित्र में दिलचस्पी ली जिसमें काराकुम नहर का मार्ग दिखाया गया था।

कृषि के यन्त्रीकरण एवं विद्युतीकरण के मंडप में नेहरू जी ने कपास चुनने की नयी सोवियत मशीनों तथा उत्कृष्ट सर्विस के लिए विख्यात जी० ए० जेड० ६९ मोटर गाड़ियों पर विशेष ध्यान दिया।

पशपालन विभाग और जलस्त्रोत साधन के मंडप को भी उन्होंने बड़ी दिल-

चस्पी के साथ देखा।

दर्शकों की पुस्तक में पण्डित नेहरू ने लिखा——

'यह एक आश्चर्यजनक प्रदर्शनी है, मुझे केवल इसी बात का अफसोस है कि मैंने और अधिक समय यहाँ नहीं बिताया।'

१० जून को नेहरू बच्चों के स्कूल नं० ५४५ में गये, जहाँ छात्रों और शिक्षकों ने प्रेमपूर्वक उनका अभिवादन किया और फूल भेंट किये। तूफ़ानी हर्ष ध्वनि के बीच पंडित नेहरू और इन्द्रागांधी को बच्चों ने तरुणपायनियरों की टाइयाँ भेंट कीं। बदले में पंडित नेहरू ने बच्चों को अपनी चन्दन की छड़ी भेंट में दी, जिसे उन्होंने कभी भी अपने से अलग नहीं किया था।

दर्शकों की पुस्तक में पंडित जी ने लिखा——

'मुझे इस स्कूल में आकर बच्चों के प्रसन्न चेहरे देखकर हर्ष हुआ है।' उनकी पुत्री श्रीमती इन्द्रा गांधी ने लिखा——'मैं विश्वास करती हूँ कि इस स्कूल में हमारे आने से भारत के बारे में और भी अधिक दिलचस्पी पैदा होगी और हमारे देशों के बच्चों के बीच ज्ञान के आदान-प्रदान की नूतम संभावनायें पैदा होंगीं।'

मास्को विश्व-विद्यालय

पण्डित नेहरू मास्को विश्वविद्यालय देखने भी गये। देश के सबसे पुराने उच्च शिक्षालय के हजारों छात्रों ने उनका हार्दिक अभिवादन किया। विश्व-विद्यालय के रेक्टर अकादमिशियन आई० पेट्रोवस्की, सोवियत संघ के उच्च शिक्षा के मन्त्री वी० इल्युतिन तथा उप शिक्षा मन्त्री वी० प्रोकोफियेव और वी० स्तोलेतोव ने मेहमानों का स्वागत किया। नेहरूजी ने विद्यार्थियों के आवास एवं अध्ययन की परिस्थितियों, वैज्ञानिक शोध कार्य तथा उच्च शिक्षालयों में प्रवेश आदि के विषय में प्रश्न पूछे। विश्वविद्यालय में विदेशी भाषाओं की शिक्षण विधि तथा स्नातक परीक्षा पद्धति में भी काफी दिलचस्पी ली।

पश्चात् विश्वविद्यालय के द्विशती समारोह के उपलक्ष में उन्हें समारोह पदक इस शिक्षा संस्था की इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें और समारोह के बैज भेंट किये।

विश्वविद्यालय की चौबीसवीं मँजिल पर नेहरू जी ले जाये गये, जहाँ से उन्होंने मास्को का दृश्य देखा और तारीफ की। भूगोल संग्रहालय भी दिखाया गया जहां द्विशती समारोह के अवसर पर विश्वविद्यालय को भेजे गये उपहार प्रदर्शित थे। भूगोल विभाग के शिक्षकों की ओर से पंडित नेहरू को विश्व का मानचित्र भेंट किया गया।

भाषा विज्ञान विभाग में शिक्षक मंडल की एक सदस्या श्रीमती मलेभारेन कोवा ने हिन्दी में पंडित नेहरू के स्वागत में भाषण दिया। पंडित नेहरू ने 'भारत की खोज' नामक अपनी पुस्तक पर हस्ताक्षर किये।

उन्होंने अपने पूरे दल के साथ विश्वविद्यालय का हाल भी देखा। हाल में छात्रों और शिक्षकों ने तुमुल हर्ष ध्वनि के साथ उनका स्वागत किया। पण्डित नेहरू ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—'आपसे मिलकर मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। आपका ये देश अत्यन्त विशाल है, पर आपके दिमाग एवं हृदय की महानता देश की विशालता से भी बड़ी है।'

परिशिष्ट

पंडित जवाहरलाल नेहरू मध्य एशिया में भी गये। यह मध्य एशिया कभी खानाबदोशों का देश कहलाता था। आज प्राचीन मुस्लिम संस्कृति और आधुनिक उद्योग धन्धों का मनहर और रंगीन प्रदेश है। यहाँ अश्काबाद और ताशकंद में तुर्कमानिया और उजबेक जनतंत्र की जनता ने बिल्कुल पूर्वी ढंग से भारत के प्रधान मंत्री पं नेहरू का स्वागत किया।

अश्काबाद इस रेगिस्तानी प्रदेश पर सोवियत के समाजवादी इन्सान की शानदार जीत का प्रतीक है। यहाँ पंडित नेहरू ने मध्य एशियाई कबाबों, तंदूरी रोटी और पुलाव का पहला मजा लिया।

अश्काबाद और बाद में ताशकंद में पंडित नेहरू ने "सलामवालेकुम" से जनता का अभिवादन किया। हर्षोन्मत जनता ने "वालेकुमसलाम" के गगनभेदी सामूहिक स्वर में उनका अभिनन्दन किया।

अश्काबाद में पंडित नेहरू और उनके दल को तुर्कमानिया की परम्परागत

मुस्लिम पोशाक भेंट में दी गयी। पंडित नेहरू अलग कमरे में जाकर जब उसको पहनकर लौटे, तो उपस्थित भीड़ खुशी से पागल होकर फिर उनकी जय-जयकार कर उठी।

उर्दू में अभिनन्दन-पत्र

२० लाख आबादी वाले बड़े शहर ताशकंद के हवाई अड्डे पर मानो सारा शहर उमड़ पड़ा था। यहाँ पंडित नेहरू को उर्दू में अभिनन्दन-पत्र दिया गया, जिसे एक उजबेक नागरिक ने पढ़ा। पंडित नेहरू ने इसका उत्तर उर्दू में ही दिया। पंडित नेहरू ने कहा कि भारत और उजबेकिस्तान के बीच सदियों पुराने सांस्कृतिक सम्बन्ध हैं। भारत शांति चाहता है और उजबेकिस्तान भी। इसलिए दोनों देश मित्र हैं।

हवाई अड्डे से पंडित नेहरू कार में बाहर गये और उजबेक प्रधान मन्त्री के मेहमान बने। सड़कों पर दोनों ओर मीलों तक खड़ी जनता ने उनको "सलाम-वालेकुम" से अभिनन्दन किया।

यहाँ पंडित नेहरू ने ताशकंद की शानदार नाटकशाला देखी, जो अपनी कला में बेजोड़ है। इसमें समरकंद और बुखारा की पुरानी कला सजीव हो उठी है।

समरकन्द में

१५ जून को पंडित नेहरू, उजबेकिस्तान के दूसरे बड़े और प्राचीन शहर समरकन्द को देखने पहुँचे। यहाँ प्राचीनतम ऐतिहासिक इमारतें और आधुनिकतम विशाल भवन देखने को मिले। पण्डित नेहरू के स्वागत के लिए सारा शहर सजा हुआ था। नौजवानों के सामूहिक गीतों और मसजिदों से मुअज्जिनों की पुकार से वातावरण में विचित्र संगीत भर गया था।

ताशकंद में मानों मेला जुड़ा हुआ था। दूर-दूर के ग्रामों से, यारकंद के प्रसिद्ध घोड़ों पर सामूहिक खेतों के किसान पण्डित नेहरू को देखने के लिए आये थे।

पण्डित नेहरू ने यहाँ कुछ प्राचीन ऐतिहासिक स्थान, मिसाल के लिए तैमूर

लंगकी समाधि आदि देखे ।

यहाँ से पंडित नेहरू फिर ताशकंद पहुँचे जहाँ उन्होंने स्तालिन सामूहिक खेत और एक कपड़ा मिल का निरीक्षण किया। यहाँ सामूहिक खेत के किसानों के साथ पण्डित नेहरू ने भोजन किया ।

आलमा अता

ताशकंद से पण्डित नेहरू कज़ाकिस्तान की राजधानी आलमा-अता पहुँचे । क्रान्ति से पहले यह स्थान, बर्फ़ से ढके हुए पामारी पहाड़ों के बीच, चँद भेड़ें चराने वाले खानाबदोशों की झोंपड़ियों का प्रवेश था किंतु अब यहाँ एक विशाल औद्योगिक नगर बन गया है जिसकी आबादी लगभग ५ लाख है ।

इस शहर की आधुनिकतम सुन्दर इमारतों के बीच चौड़ी सड़कों पर से जब पण्डित नेहरू गुजरे तो दोनों ओर खड़े हर्षोन्मत्त नागरिकों ने राह में फूल बिछा दिये ।

नौतोड़ प्रदेश में

आलमा अता से पण्डित नेहरू साइबेरिया के दक्षिणी भाग में बाहरी मंगोलिया के लगभग करीब के रुबज़ोवस्क नाम के स्थान पर पहुँचे ।

यह वह स्थान है , जहां की जमीन सदियों से इन्सान के जादू भरे हाथों के छूने का इन्तजार कर रही थी । किन्तु इसे बाँझ (बंजर और रेगिस्तान) समझकर, मनुष्यता ने कभी हल की नोक छुआकर इसके अरमानों को जगाने की कोशिश नहीं की ।

सोवियत जनता ने समाजवाद से कम्युनिज़्म की मंज़िल पर बढ़ते हुए इस जमीन का भाग्य पलटने का बीड़ा उठाया । दो वर्ष पहले, सोवियत संघ की नई कृषि योजना के अनुसार लगभग ५०,००० एकड़ जमीन को सरसब्ज़ करने के लिए सोवियत संघ के योरपी हिस्से के शहरों के नौजवान स्वयंसेवक यहाँ पहुँचे उनके साथ पहुँचे सोवियत संघ के इन्सान के जादू भरे हाथ—आधुनिकतम ट्रेक्टर बड़ी-बड़ी मशीनें । नहरों के रूप में जमीन का प्यार फूट पड़ा; गेहूँ की बालों के रूप में धरती ने बढ़े हुए हाथों से सोवियत के नये इन्सान को गले लगाया ।

नौजवान स्वयंसेवक नयी धातु के इन्सान हैं, जो मुसीबतों पर विजय पाने के विज्ञान में दक्ष हैं। अभी कुछ दिन पहले वे खेमों मे रहते थे, लेकिन अब उनके मकान बन रहे हैं और थोड़े दिनों में यहाँ सभी आधुनिक सुविधाएँ हासिल हो जायँगी ।

यहाँ पण्डित नेहरू को सोवियत कृषि विज्ञान का करिश्मा देखने को मिला। फार्म के नौजवान डायरेक्टर ने पण्डित नेहरू को एक-एक बात बड़ी दिलचस्पी और उत्साह से बतायी।

सबसे बड़ा इस्पात केन्द्र

१७ जून को पण्डित नेहरू यूराल के पर्वती प्रदेश में बना हुआ इस्पात का बड़ा भारी कारखाना देखने गये। मेग्नितोगोरस्क का यह कारखाना योरप में सबसे बड़ा है जिसका वार्षिक उत्पादन ४५,००,००० टन है। २५ वर्ष पहले यह प्रथम पंचवर्षीय योजना के काल में बना था। आजकल रोज ३५०,००० टन इस्पात उत्पन्न होता है।

युद्ध के बाद इस कारखाने में नयी सोवियत मशीनें लगायी गयीं, जिसके कारण यहाँ सब काम मशीनों से होने लगा और मनुष्य के श्रम की बचत होने लगी। इतने कम आदमी, दुनिया में कहीं इतनी पैदावार नहीं करते।

यहाँ २५,००० आदमी काम करते हैं, जिनमें से एक तिहाई महिलाएँ हैं। बड़ी-बड़ी भट्टियाँ और मशीनें यहाँ बटन दबाते ही काम करने लगती हैं।

इस्पात बनाने के लिए यहाँ नई विधियाँ इस्तेमाल की जाती हैं जिनकी वजह से इस्पात ढालने के लिए मैंगनीज का इस्तेमाल खत्म हो गया है।

पंडित नेहरू ने यहाँ ६ घण्टे बिताये और इस इस्पात नगर में विज्ञान का चमत्कार देखा। १९२८ में यह सिर्फ़ ३०० झोंपड़ों का गाँव था, किन्तु अब ३ लाख आबादी का बड़ा नगर है।

मेगजीतोगोरस्क से नेहरू जी यूराल के दूसरे नगर स्वेर्दलोवस्क गये।

स्वेर्दलोवस्क में

१८ जून को स्वेर्दलोवस्क में भी हवाई अड्डे पर और नगर में जनता ने

उसी तरह स्वागत किया, जैसा कि सोवियत संघ में अन्य स्थानों पर किया गया था।

यहाँ नेहरू जी ने मशीनें बनाने वाले विराट कारखाने का निरीक्षण किया। भारत के लिए इस्पात के कारखाने के अधिकांश पुर्जे इसी कारखाने में बन रहे हैं। आजकल यहाँ चीन के लिए एक कारखाना तैयार हो रहा है। यह कारखाना १६२८ में कायम हुआ था। यहाँ आधे इंची नट और बोल्ट से लगाकर २ हजार टन भारी खुदाई की मशीनें तैयार होती हैं।

इस कारखाने में २० हजार मजदूर काम करते हैं, जिनमें से एक तिहाई महिलाएँ हैं।

पण्डित नेहरू ने मजदूरों के मनोरंजन गृह खेलकूद के स्थान और तैरने के तालाब वगैरा दिलचस्पी से देखे। यहाँ एक स्टेडियम है, जिसमें ६ हजार आदमी बैठ सकते हैं।

इस नगर की आबादी १० लाख है। कारखाना देखने के बाद नेहरू जी लेनिन-मार्ग से वापिस लौटे। इस चौड़े राजपथ के दोनों ओर कई मंजिल ऊँची इमारतों में मजदूरों के रहने के लिए आराम ग्रह और खूब सूरत फ्लैट हैं जिनमें सारी आधुनिक सुविधाओं का प्रबन्ध है।

यहाँ पण्डित नेहरू ने भूगर्भ सम्पत्ति का अजायब घर देखा, जिसमें यूराल क्षेत्र के २० हजार किस्म के बहुमूल्य पत्थर तथा खनिज पदार्थ रखे हुए हैं। खनिज पदार्थों का इतना विशाल अजायबघर दुनिया में दूसरा नहीं है।

लेनिनग्राद में

१६ जून को पंडित नेहरू लेनिनग्राद पहुँचे। स्थानीय सोवियत के सदस्यों और अध्यक्ष श्री निकोलाई स्मर्नोविने पं० नेहरू का स्वागत किया।

हवाई अड्डे से पं० नेहरू रवाना हुए तो बर्फ जमा देने वाली सर्दी और तूफानी हवा का मुक़ाबला करते हुए लाखों जनता ने उनका स्वागत किया।

सोवियत संघ की लोकप्रिय पारिवारिक पत्रिका 'आगोनियक' के आज के अंक में पंजाब के नये नगर चण्डीगढ़ के बारेमें एक सचित्र लेख प्रकाशित हुआ।

इसके अलावा कई भारतीय गीतों की स्वर-लिपि और सोवियत संघ में शीघ्र प्रकाशित होने वाली रवीन्द्र-ग्रन्थावली का परिचय भी प्रकाशित हुआ। नेहरूजी की सोवियत यात्रा के भी कई चित्र दिये।

लेनिनग्राद में पं० नेहरू ने सोवियत का प्रसिद्ध चित्रकला संग्रालय देखा। बाद में रात को उन्होंने लेनिनग्राद की प्रसिद्ध नाटिका "सुप्त सौन्दर्य" देखी।

सोवियत संघ में जहाँ भी नेहरू जी गये, उनको शांति के दूत के रूप में जनता का अपार प्यार मिला, क्योंकि सोवियत जनता दूसरे विश्व-युद्ध के घावों को भूली नहीं है, वह शांति को प्यार करती है और अपने समाजवादी समाज को कम्युनिज़्म की ओर ले जाने में,—एक ऐसे समाज की ओर ले जाने में, जिसमें सब अपनी सामर्थ्य के अनुसार श्रम करेंगे और सबकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकेंगी—वे अब कोई बाधा नहीं चाहते।

यही कारण है कि मास्को से लेकर ताशकंद तक, विभिन्न भाषा और संस्कृति की पोषक जनता ने नेहरू जी के मार्ग में आँखें बिछा दीं और उनके शब्दों को फूलों से तोला।

सोवियत संघ की सरकार ने भारतीय प्रधान मन्त्री के लिए सारी सुविधाएँ प्रदान कीं, उनको हर चीज देखने की सुविधा दी—बड़े-बड़े कारखाने, मीलों तक फैले हुए सामूहिक खेत, विराट जल-विद्युत केन्द्र, मजदूर जनता के मनोरंजन, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक शिक्षा के केन्द्र, बच्चों के क्रीड़ा-क्षेत्र—यही वे चीजें हैं जिनको सोवियत जनता और अधिक बढ़ाना चाहती है।

दो महत्वपूर्ण भाषण

२१ जून को मास्को के डायनेमो स्टेडियम में सोवियत भारत मैत्री सभा हुई। यह एक एतिहासिक दिवस था। पंडित नेहरू ने इस सभा में जो भाषण दिया वह न केवल भारत सोवियत इतिहास में वरन विश्व के इतिहास में एक प्रमुख स्थान रखता है। उनका पूरा भाषण इस प्रकार है :—

सोवियत संघ की मंत्रि परिषद् के माननीय अध्यक्ष महोदय,

मास्को सोवियत के अध्यक्ष महोदय,

प्यारे मित्रो !

मैं इस बात के लिये क्षमा चाहता हूँ कि आपके देश की भाषा रूसी में

बोलने में असमर्थ हूं। इस कारण आप अनुवाद ही सुन सकेंगे !

दो हफ्ते पूर्व हम सोवियत संघ में आये और शीघ्र ही इस महान देश से प्रस्थान करेंगे। इस अवधि में हमने लगभग १३ हजार किलोमीटर का दौरा किया, बहुत से प्रसिद्ध शहरों में गये और बहुत सी अद्‌भुत चीजें देखीं। पर सबसे अधिक आश्चर्यजनक तो वह स्वागत सम्मान है जो हर जगह हम लोगों का हुआ है और वह प्रेम है जिसकी हमारे ऊपर जनता ने वर्षा की है। इस प्रेम और स्वागत के लिये हम असीम कृतज्ञता प्रकट करते हैं, और सोवियत संघ की जनता के प्रति शब्दों द्वारा मैं बिल्कुल ठीक ठीक धन्यवाद ज्ञापन नहीं कर सकता। (देर तक तूफानी हर्ष-ध्वनि) फिर भी प्रधान मन्त्री महोदय, मैं आपके प्रति, आपकी सरकार के प्रति तथा आपकी जनता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ और आपसे निवेदन करता हूं कि हमारी गहरी भावना की इस अभिव्यक्ति को सोवियत संघ की जनता तक पहुँचादें, जिसने हमारा इतना सम्मान किया है। (हर्ष ध्वनि)

हम इस महान देश की जनता के प्रति भारतीय जनता के अभिवादन एवं शुभेच्छाएं प्रकट करने आये थे (देर तक हर्ष ध्वनि) हम अपने देश और अपनी जनता के प्रति आपके प्रेम और सद्‌भावों से लदे हुए घर वापिस जा रहे हैं। (देर तक हर्ष ध्वनि)

हम यहां अजनबी के रूप में नहीं आये, क्योंकि हममें से बहुत लोग उन महान परिवर्तनों और घटनाचक्रों में, जो सोवियत संघ में हुए हैं, गहरी दिलचस्पी लेते रहे हैं। जब आपके देश में महान लेनिन के नेतृत्व में अक्तूबर क्रान्ति हो रही थी, लगभग उसी समय हमने भारत में अपने स्वातन्त्र्य संघर्ष का एक नया दौर शुरू किया। हमारी जनता बहुत वर्षों तक संघर्ष में लगी रही और उसने साहस एवं सहिष्णुतापूर्वक भयंकर दुःख का सामना किया। यद्यपि हमने महात्मागाँधी के नेतृत्व में अपने संघर्ष में एक भिन्न मार्ग का अनुसरण किया, फिर भी हम लेनिन की प्रशंसा करते थे और उनके दृष्टान्त से प्रभावित हुये। (देर तक हर्ष ध्वनि) हमारी पद्धतियों में इस अन्तर के बावजूद भी हमारी जनता के भाव सोवियत संघ की जनता की तरफ कभी अमैत्रीपूर्ण नहीं रहे।

हमने आपके देश के कुछ घटनाचक्र नहीं समझे और आपने भी हमने जो किया उसमें बहुत कुछ नहीं समझा होगा। सोवियत संघ जो महान एवं नूतन प्रयोग कर रहा है उसमें हमने उसकी शुभकामना की है और यथा सम्भव उससे सीखने की कोशिश की है। हमारे दोनों देशों की पृष्ठभूमि अलग अलग है, उनके भूगोल, इतिहास, परम्परा, संस्कृति तथा परिस्थितियां जिनमें उन्हें काम करना पड़ा है।

हमारा विश्वास रहा है कि एक देश द्वारा दूसरे पर आधिपत्य स्थापित करना बुरी बात है, और जब हम अपनी स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करते थे उस समय भी हम उन देशों के साथ सहानुभूति दिखाते थे जो विदेशी अथवा निरकुश शासन से अपने को मुक्त करने के लिये प्रयत्नशील थे। हर देश और राष्ट्र अपने अतीत द्वारा तथा अनुभवों द्वारा, जिनसे वे गुजरे हैं, प्रभावित एवं निर्धारित हुये हैं और उन्होंने एक हद तक अपने व्यक्तित्व का विकास किया है। वे विदेशी शासन के अन्दर अथवा बाहर से अपने ऊपर कोई चीज लादे जाने की हालत में प्रगति नहीं कर सकते। वे तभी बढ़ सकते हैं जब वे आत्मनिर्भरता तथा अपनी शक्ति का विकास करें और अपनी अखंडता कायम रखें। हम सबों को दूसरों से सीखना है और हम अपने को एक दूसरे से अलग नहीं रख सकते, लेकिन उस तरह का सीखना उपयोगी नहीं हो सकता यदि वह बाहर से लादा जाता है।

हम जनवाद एवं समानता में, तथा विशेषाधिकार के उन्मूलन में विश्वास रखते हैं और हमने अपने देश में शांति पूर्ण पद्धतियों द्वारा समाजवादी ढंग के समाज का निर्माण करने का लक्ष्य अपने सामने रखा है। (हर्ष ध्वनि) समाजवाद का अथवा जनवाद का वह नमूना चाहे जो भी शक्ल अख्तयार करे, लेकिन इसमें सबों के लिये ज्ञान का द्वार उन्मुक्त एवं समान अवसर होना जरूरी है।

अपने भाग्य का निर्माण करने के लिये देश के अधिकार को मान्यता देते हुये भारत सरकार तथा चीन की लोक सरकार ने अपने पारस्परिक संघर्षों के निर्धारण के लिये पंचशील सिद्धान्त स्वीकार किये हैं। वे सिद्धान्त हैं:—एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता, एवं प्रभुसत्ता के प्रतिसम्मान, अनाक्रमण, एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप, समानता पारस्परिक लाभ, तथा शांतिपूर्ण

सह अस्तित्व । बाद में बर्मा और यूगोस्लाविया ने ये सिद्धान्त स्वीकार किये, और अब सोवियत सरकार ने भी इनके प्रति अपनी सहमति प्रकट की है। (तूफानी हर्ष ध्वनि) बांडुंग सम्मेलन में ये सिद्धान्त बढ़ाकर दस कर दिये गये और उन्हें विश्व शांति एवं सहयोग सम्बन्धी एक घोषणा में शामिल कर दिया गया। इस प्रकार तीस से ऊपर देशों ने उन्हें स्वीकार कर लिया है। मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि यदि अन्तर राष्ट्रीय आचरण सम्बन्धी ये सिद्धान्त संसार के सभी देशों द्वारा स्वीकृत एवं कार्यान्वित हो जाएं, तो बहुत हद तक भय और आशंकाएं दूर हो जाएंगी जिनकी काली छाया संसार के ऊपर पड़ रही है।

विज्ञान की एवं तज्जनित टेकनोलाजी की प्रगति ने इस संसार की, जिसमें हम रहते हैं, शक्ल बदल दी है, और विज्ञान की हाल की प्रगतियां मनुष्यों के अपने विषय में तथा दुनियाँ के विषय में सोचने के ढंग बदल रही है। काल एवं आंतरिक सम्बन्धी धारणाएं बदल गई हैं तथा प्रकृति के रहस्यों का भेदन करने और मानव जाति के हित साधन में अपने ज्ञान का प्रयोग करने के लिये अपरिमित विस्तार खुला पड़ा है। विज्ञान और टैकनोलोजी ने मानव को उसके बहुत से बोझों से मुक्त कर दिया है और उसको यह नया परिप्रेक्षण एवं महती शक्ति प्रदान की है। यदि हम बुद्धिमानी से कामलें तो इस शक्ति का उपयोग सबों के हित में हो सकता है, अथवा यदि दुनियां पागल या बेवकूफ रही तो वह ठीक उसी समय जब महती प्रगति और विजय प्रायः उसकी पहुँच के अन्दर है, अपने को नष्ट कर सकती है।

यदि हमारी इस दुनियां को प्रगति करनी है, वस्तुतः यदि इस को जीवित रहना है, तो राष्ट्रों के लिये शांति का प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। हमारे बिचार में शांति का अर्थ केवल युद्ध से बिरत रहना नहीं है वरन् अन्तर राष्ट्रीय संबंधों की ओर तथा बर्तमान तनातनी कम करने की ओर सक्रिय एवं सकारात्मक रुख अपनाना है, समझौता वार्ता की विधियों द्वारा अपनी समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करना तथा इसके बाद विविध प्रकार से राष्ट्रों के बीच बढ़ता हुआ सहयोग शांति है। सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक सम्पर्कों के साथ-साथ व्यापार में वृद्धि हो सकती है, विचारों का आदान-प्रदान तथा अनुभव और जना-

कारी क विमनय हो सकता है। हमें अपने मस्तिष्क और हृदय के विकास में रुकावट डालने वाली तथा अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के मार्ग में आने वाली समस्त विघ्न बाधाओं को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। कोई वजह नहीं कि विभिन्न राजनीतिक सामाजिक या आर्थिक पद्धति वाले देश इस तरह एक दूसरे के साथ सहयोग न करें बशर्ते कि एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न हो तथा एक दूसरे पर कोई ऊपर से लादने या आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास न हो।

मैं सोवियत संघ में जहाँ भी गया, मैंने शांति की उत्कट इक्षा देखी है। मेरा विश्वास है कि हर देश की बहुसंख्यक जनता शांति की भूखी है, लेकिन दूसरों का डर बहुधा उनके मन को आच्छन्न करता है। हमें डर और घृणा से मुक्त होना चाहिए तथा शांति का वातावरण तैयार करने की कोशिश करनी चाहिये। युद्ध, युद्ध के खतरे या युद्ध की अबाध तैयारियों से शांति कभी कायम नहीं हो सकती।

भारत में हमने शांति के लक्ष्य में अपने को अर्पित कर दिया है और अपने संघर्षो में भी हमने शांति की पद्धतियों का अनुसरण करने का प्रयास किया है। हमारी अपनी प्रगति के लिये तथा उन लक्ष्यों के लिये जो हमें प्रिय हैं शांति जरुरी है। अतएव हम अपनी पूरी शक्ति भर शांति के लिये प्रयास करेंगे तथा इस महत्वपूर्ण कार्य में अन्तरराष्ट्रों से सहयोग करेंगे।

मैं सोवियत संघ की सरकार को हाल के महीनों में ऐसे कई कदम उठाने के लिए बधाई देना चाहता हूं जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय तनातनीमें कमी हुई है और शांति के लक्ष्य में योगदान हैं। (तूफानी हर्षध्वनि) मेरा विश्वास है कि खासतौर से निरशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में सोवियत सरकार के हाल के प्रस्ताव इस कठिन समस्या को सुलझाने में मदद करेंगे। भय को दूर करने और शांति को सुनिश्चत बनाने के लिये निरशस्त्रीकरण आवश्यक है। हम अपने-अपने देश में आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास की योजना बनाते हैं। हम सामूहिक हित के लिए तथा युद्ध के उन्मूलन के वास्ते विभिन्न देशों के शांतिपूर्ण सहयोग की योजना बनायें।

किसी अन्य देश या देशों के भय से मुल्क बहुधा गुटबन्दियाँ बनाते हैं और

सांठ-गांठ करते हैं। हमारे निकट आने का आधार यह न होकर कि हम दूसरों को नापसन्द करते हैं तथा उन्हें हानि पहुँचाना चाहते हैं, यह हो कि हम एक दूसरे को पसन्द करते हैं और उनसे सहयोग करना चाहते हैं। (हर्ष ध्वनि)

अभी जब मैं आपके सामने बोल रहा हूँ, सानफ्रानसिस्को में संयुक्त राष्ट्र संघ की दसवीं साल गिरह मनाने के लिए एक विशेष समारोह हो रहा है संयुक्त राष्ट्रसंघ उदात्त शब्दों में लिखित अधिकार पत्र पर आधारित है जिसका उद्देश्य शांतिपूर्ण सहयोग है। दुनियां के राष्ट्रों ने इस विश्व संगठन से जो आशाएँ की थीं वह पूर्ण रूपेण पूरी नहीं हुई हैं और बहुत कुछ ऐसी बातें हुई हैं जो इस अधिकार पत्र के आदर्शों के मार्ग में अवरोध पैदा करती हैं। मेरी यह उत्कट इच्छा है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के नये दशम में, जो अभी शुरू हो रहा है, ये आशाएँ पूर्ण होंगी (देर तक हर्ष ध्वनि) लेकिन जब तक कुछ राष्ट्र इसके क्षेत्र से बाहर रखे जायेगें संयुक्त राष्ट्र संघ तब तक विश्व के समस्त राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, खास करके एक लम्बे अर्से से हमने यह अनुभव किया है कि चीन के महान लोक गणतन्त्र को संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा मान्यता नहीं देना न केवल एक बेतुकी बात है, जिसका अधिकार पत्र के साथ कोई मेल नहीं है, वरन शांति को बढ़ावा देने और दुनियां की समस्याओं के हल के लिए खतरा भी है। (देर तक हर्ष ध्वनि)

आज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्याओं में एक है सुदूर पूर्व की समस्या जो चीनी लोक गणतन्त्र की सदिच्छा एवं सहयोग के बिना सुलझाई नहीं जा सकती। मुझे उम्मीद है कि चीन के लोकतन्त्र को सयुक्त राष्ट्र सघ में अपना न्यायोचित स्थान प्राप्त हो जायगा। (तूफानी हर्ष ध्वनि) तथा सुदूरपूर्व की समस्या को सुलझाने के प्रयासों में अधिकाधिक सफलता प्राप्त होगी।

हम एक जीवंत विकाशशील संसार में रहते हैं जो नूतन आविष्कारों एवं नूतन विजयों के पथ पर बढ़ता जा रहा है, जहाँ मानव को अधिकाधिक शक्ति प्राप्त है।

हम आशा करें कि ये शक्ति बुद्धिमानी एवं सहिष्णुता द्वारा नियंत्रित एवं परिचालित होगी, और हर राष्ट्र सामूहिक हित में योग दान देगा।

सोवियत संघ की महान उपलब्धियों को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं। मैंने सोवियत जनता के परिश्रम तथा उत्प्रेरणा के फलस्वरूप. जो अपनी स्थिति को बहतर बनाने के लिये अनुप्रेरित करता है इस विशाल देश की काया पलट देखी है। संगीत, नृत्य एवं उत्कृष्ट नाट्य नृत्य जो मैंने देखे हैं, मुझे बहुत पसंद आये है। सोवियत राज्य तथा सोवियत जनता इस विशाल देश के बच्चों—उगती पीढ़ी—की खुशहाली के लिये जो भारी जागरूकता दिखाती है, उससे मैं सबसे कधिक प्रभावित हुआ हूँ।

प्रधान मन्त्री महोदय ! मैं आपको, आपकी सरकार को तथा आपकी जनता को उनकी मैत्री एवं उदारतापूर्ण आतिथ्य सत्कार के लिये पुन: धन्यवाद देता हूं। भारत की जनता आपकी सुख समृद्धि की कामना करती है और हमारे दोनों देशों के लिये तथा समस्त मानव जाति के वास्ते बहुत से सम्मिलित प्रयासों में आपके साथ सहयोग करने की आशा रखती है। (तूफानी हर्ष ध्वनि)

मानव जाति के हित के लिये हमारे देशों की जनता तथा सँसार के अन्य देशों के बीच मैत्री एवं सहयोग चिरंजीव हो ! (तूफानी हर्ष ध्वनि)

—मास्को २२–६–५५ (तास)

एन. ए. बुल्गानिन का भाषण

साथियो !

माननीय प्रधान मन्त्री ! मित्रो !

हमारे माननीय अतिथि, भारत के गणतंत्र के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने हमारे देश के बारे में जो भावपूर्ण तथा मैत्रीपूर्ण शब्द कहे हैं उसके लिये मैं सोवियत-सरकार की तरफ से यहां पर एकत्रित मास्को की श्रमिक जनता के प्रतिनिधियों की तरफ से, और सोवियत जनता की तरफ से उनको धन्यवाद देता हूँ। हमारे लिये, श्री नेहरू के ये शब्द सुनना अत्यन्त हर्षप्रद था, जिन्हें हम राष्ट्रीय आज़ादी के लिए भारतीय जनता के संघर्ष के प्रमुख नेता और शांति के एक वीर सेनानी के रूप में जानते हैं। (तूफानी हर्ष ध्वनि)

सोवियत जनता ने अपने देश में भी नेहरू का स्वागत बड़े प्यार, हर्ष तथ

हार्दिक मित्रता की भावना के साथ और उन्हें महान भारतीय जनता का प्रतिनिधि और दूत मानकर किया है।

हमारे देश और भारत के बीच बहुत समय से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रहे हैं। भारत की चालीस करोड़ बहुजातीय जनता के श्रम और कौशल ने, जिसने कई शताब्दियों के पूरे इतिहास के दौरान में अमर साँस्कृतिक स्मारकों की रचना की है, स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय आजादी के लिए उसके अटल प्रयास ने, शांति के लिये उसके अनवरत प्रेम ने हमारे देश की जनता का गहरा सम्मान तथा हार्दिक सहानुभूति प्राप्त की है। (हर्ष ध्वनि) सोवियत नरनारी महान भारतीय जनता के अपने देश में समाजवादी ढंग का समाज निर्माण करने के प्रयासों को गहरी दिलचस्पी और सहानुभूति के साथ देखते हैं और अपने अर्थ तन्त्र को उन्नत बनाने तथा अपने राष्ट्रीय उद्योग धन्धों को विकसित करने में उसकी उपलब्धियों की वे सराहना करते हैं।

सोवियत-भारत सम्बन्धों का निर्माण एक ठोस तथा विश्वस्त आधार पर हो रहा है वे एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता तथा प्रभुसत्ता के सम्मान, अनाक्रमण, एक दूसरे के अन्दरूनी मामलात में हस्तक्षेप न करने, बराबरी तथा पारस्परिक लाभ और शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

शांति प्रिय वैदेशिक नीति के इन सिद्धान्तों की घोषणा भारत तथा चीन के लोक गणतन्त्र द्वारा की गई थी। बाद में बर्मा और युगोस्लाविया ने उन्हें स्वीकार किया और फिर, जैसाकि श्री नेहरू ने यहां कहा, उन्हें बाँडुंग सम्मेलन में एशिया तथा अफ्रीका के २९ देशों की मान्यता प्रदान हुई और उन्हें सम्मेलन द्वारा स्वीकृत विश्व शांति तथा सहयोग की घोषणा में मूर्त कर दिया गया। सोवियत सरकार भी इन सिद्धान्तों को स्वीकार करती है और विश्वास करती है कि वे शांति को कायम रखने तथा उसे दृढ़ बनाने में सभी जातियों के लिए एक सामान्य आधार बन सकते हैं। (हर्ष ध्वनि)

सोवियत भारत सम्बन्ध विभिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक पद्धतियों वाले राष्ट्रों के शांति पूर्ण सह-अस्तित्व तथा सहयोग की सम्भावना के बारे में महान लेनिन द्वारा घोषित सिद्धान्त की सार्थकता की विश्वासप्रद पुष्टि है।

शांति तथा सभी जातियों के साथ मित्रता के लिये निरंतर प्रयास तथा अन्तर राष्ट्रीय तनातनी को दूर करने के लिये संघर्ष, सोवियत संघ तथा भारत को विशेष रूप से एक दूसरे के निकट लाते हैं। शांति पूर्ण निर्माण के श्रम में रत हमारे दोनों देशों की जनता युद्ध नहीं चाहती। दोनों देशों की जनता अपने अपने ढंग से एक नये और बेहतर जीवन की ओर अग्रसर है।

शांति का बचाव करना और जनता की सुरक्षा करना हमेशा से सोवियत संघ की वैदेशिक नीति का आधारभूत लक्ष्य तथा सर्वोच्च सिद्धान्त रहा है और अब भी है। सोवियत संघ ने इधर हाल में अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में अविश्वास को दूर करने की दिशा में लगातार कई नये कदम उठाये हैं। ये कदम हैं :— आस्ट्रिया के साथ राज्यीय सन्धि का सम्पन्न होना, हथियार बन्दी में कमी करने, परमाणविक अस्त्रों पर पाबन्दी लगाने तथा एक नये महायुद्ध के खतरे को दूर करने के बारे में सोवियत संघ के सुझाव, सोवियत संघ तथा यूगोस्लाविया के सम्बन्धों का प्रकृत होना, सोवियत संघ तथा जर्मन संघात्मक प्रजातन्त्र के बीच कूटनीतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का सुझाव, सोवियत जापानी सन्धि-वार्ता तथा अन्य कदम।

सोवियत सरकार ने चार शक्तियों की सरकारों के प्रधानों की बैठक में, जो १८ जुलाई से जेनेवा में आरम्भ होने वाली है, भाग लेना स्वीकार कर लिया है। हम इस बात को मानकर चलते हैं कि इस सम्मेलन का उद्देश्य अन्तरराष्ट्रीय तनातनी को दूर करना तथा अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में विश्वास को प्रोत्साहन देना होगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हम कोई कोशिश उठा न रक्खेंगे और हम आशा करते हैं कि इस सम्मेलन में भाग लेने वाले अन्य पक्ष भी यही कोशिश करेंगे। (देर तक तूफानी हर्ष ध्वनि)

शांति को सुदृढ़ बनाने में सोवियत संघ के योगदान को सभी शांति प्रिय जातियों की, जिसमें भारतीय जनता भी शामिल है, सहानुभूति पूर्ण सराहना तथा समर्थन प्राप्त होता है।

इधर हाल में भारत ने शांति के लिये जो योगदान किया है उसकी सोवियत जनता बहुत कद्र करती है। सोवियत संघ और चीन के लोक गणतन्त्र के साथ

मिलकर भारत के सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण कोरिया में युद्ध-विराम की स्थापना हुई और हिन्द चीन में लड़ाई बन्द हुई।

भारत बाँडुंग के एशियाई-अफ्रीकी सम्मेलन के आयोजकों में से एक था; यह सम्मेलन अपने अधिकारों तथा स्वतन्त्रता के लिये एशिया तथा अफ्रीका की जनता के संघर्ष में तथा विश्व शांति को सुदृढ़ बनाने के लिये एक महान योग दान था।

सोवियत संघ की ही तरह भारत भी हथियार बन्दी सेनाओं में कमी करने और परमाणविक तथा उद्जन अस्त्रों पर पाबन्दी लगाते के पक्ष में है। हम आशा करते हैं कि श्री नेहरू और भारत सरकार के रूप में हमें सोवियत सरकार द्वारा प्रस्तावित हथियार बन्दी में कमी कराने तथा परमाणविक और उद्जन अस्त्रों पर पाबन्दी लगाने के विस्तृत तथा आमूल परिवर्तन कारी कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये एक सहयोगी तथा मित्र मिल जायगा। (तूफानी हर्ष ध्वनि)

चीनी जनता के जातीय हितों की ओर उचित ध्यान देते हुए तैवान समस्या को सफलतापूर्वक हल करने की दिशा में भारत और सोवियत संघ संयुक्त प्रयास कर रहे है।

चीन के लोक गणतन्त्र को संयुक्त राष्ट्र संघ में उसका न्यायोचित स्थान दिलाने के लिये भारत तथा सोवियत संघ के संयुक्त संघर्ष के प्रति सभी शांति प्रेमी जातियों ने अपनी विशेष कृतज्ञता प्रकट की है। (देर तक तूफानी हर्ष ध्वनि) अन्तर राष्ट्रीय तनातनी को दूर करने के लिये, और विभिन्न जातियों के बीच शांति तथा सहयोग के लिये अपने प्रबल संघर्ष में सोवियत संघ तथा भारत हमेशा संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार पत्र में मूर्त सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित होते हैं।

कल सानफ्राँसिस्को में संयुक्त राष्ट्र संघ की १० वीं वर्षगांठ मनाने के लिये जयन्ती अधिवेशन का उद्घाटन हुआ। दुनिया के हर भाग में नरनारी यह उत्कट आशा रखते हैं कि यह जयन्ती अधिवेशन शांति तथा अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा की हिफाजत करने की दिशा में नये कदम उठाने के लिये एक प्रारम्भिक बिन्दु होगा।

अपने देश की तरफ से मैं आज संयुक्त राष्ट्र संघ की दसवीं वर्षगांठ के अवसर पर होने वाले जयन्ती अधिवेशन का अभिवादन करता हूँ और मैं सोवियत संघ की जनता तथा सोवियत सरकार की यह उत्कट आशा व्यक्त करता हूं कि दुनियां की जातियों का संगठन विश्व व्यापी शांति तथा सुरक्षा के हित संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार पत्र के आदर्शों को प्राप्त करने के लिये अनवरत काम करता रहेगा। हमारा देश और सरकार इस उच्च उद्देश्य को प्राप्त करने में सुविधा प्रदान करने का भरसक प्रयत्न करेगी। (तूफानी हर्ष ध्वनि)

सोवियत संघ और भारत का सहयोग केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं है। सोवियत संघ और भारत की मित्रता तथा सहयोग का उल्लेख करते हुए हम इस बात की ओर ध्यान दिये बिना नहीं रह सकते कि परस्पर लाभदायक आर्थिक, तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध जो हमारे देशों को एक दूसरे के और भी निकट लाने में सहायक होते हैं, लगातार बढ़ रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि श्री नेहरू द्वारा सोवियत संघ की यात्रा सोवियत जनता के साथ उनका निकट सम्पर्क और सोवियत संघ के नेताओं के साथ वैयक्तिक सम्पर्क की स्थापना हमारे देशों के बीच मित्रता तथा सहयोग को आगे बढ़ायेगी और सुदृढ़ बनायेगी। मुझे यह कहते हुये हर्ष होता है कि हमारे बीच विचारों के आदान-प्रदान ने दिखा दिया है कि विश्वव्यापी तनातनी को कम करने के लिए प्रमुख महत्व रखने वाले कई प्रश्नों के बारे में हम एक दूसरे को समझते हैं और उनके बारे में हमारे दृष्टिकोण एक ही हैं। (देर तक तूफानी हर्षध्वनि)

सोवियत संघ में अपने प्रवास के दौरान में श्री नेहरू को स्वयं यह देखने का अवसर मिला कि सोवियत जनता शांति की रक्षा करने तथा उसे सुदृढ़ बनाने के लिए सच्चे हृदय से प्रयास करती है। श्री नेहरू को निस्सन्देह यह देखने का भी अवसर मिला कि हमारे देश की जनता भारत की जनता के प्रति गहरी तथा हार्दिक सहानुभूति और मित्रता की भावना रखती है। (तूफानी हर्षध्वनि)

प्रधानमन्त्री महोदय, सोवियत जनता तथा सोवियत संघ की सरकार की तरफ से मैं आपका, भारत की सरकार का, भारत की समस्त जनता का अभि-

वादन करता हूँ तथा भारत के विकास तथा समृद्धि में सफलता की कामना करता हूँ। (देर तक तूफानी हर्ष ध्वनि। 'हुर्रा' की जय ध्वनि)

सोवियत संघ तथा भारत की जनता की मित्रता तथा सहयोग चिरंजीवी हो।

दोनों देशों की जनता की भलाई विश्व शांति और सुरक्षा के हित के लिए सोवियत भारतीय मित्रता विकसित तथा दृढ़ हो। (सब उठ खड़े होते हैं। देर तक तूफानी हर्ष ध्वनि। 'हुर्रा' की जय ध्वनि)

मास्को २२-६-५५ (तास)

सोवियत संघ के एटमी कारखाने और एटमी बिजली के कारखाने को देखने के पश्चात् पण्डित नेहरू की सोवियत यात्रा समाप्त हुई। एटम शक्ति पैदा करने का केन्द्र दिखाकर सोवियत संघ ने भारतीय प्रधान मन्त्री तथा भारतीय जनता की शांति भावनाओं के प्रति अटूट विश्वास प्रकट किया।

सोवियत भारत मित्रता संघ में भाषण देने के पश्चात् सोवियत संघ की मन्त्रि परिषद के आर्थिक आयोग के अध्यक्ष एम० जेड० साबुरोव से बातें कीं और बाडुंग सम्मेलन में भाग लेने वाले देशों के मास्को स्थिति कूटनीतिक प्रतिनिधियों द्वारा आयोजित भोज में सम्मिलित हुए। भोज में निम्न देशों के राजदूत सम्मिलित हुये—

(१) बर्मा (२) वियतनाम (३) भारतीय गणतन्त्र (४) अफगानिस्तान (५) हिन्देशियाई गणतन्त्र (६) तुर्की (७) चीनी लोकगणतन्त्र (८) एथियोपिया (९) स्याम (१०) सीरिया (११) लेबनान (१२) ईरान (१३) पाकिस्तान।

भोज में पंडित जवाहरलाल नेहरू उनकी पुत्री श्रीमती इन्दरा गांधी, भारतीय गणतन्त्र के परराष्ट्र मन्त्रालय के महा सचिव एन० आर० पिल्ले तथा संयुक्त सचिव एम० ए० हुसैन भी उपस्थित थे।

सोवियत संघ के निम्न प्रमुख नेता भोज में सम्मिलित हुए—

(१) एन० ए० बुलगानिन (२) एल० एम० कगानोविच (३) एन० एस० ख्रुश्चेव (४) जी० एम० मालेनकोव (५) ए०आई० मिकोयान (६) एम० जी० पेवुरिवन (७) एन० जेड० साबुरोव (८) सोवियत संघ के परराष्ट्र मन्त्रालय के

उप मन्त्री वा० वो० व.जनेत्सोव (९) वी० ए० जोरिन (१०) सोवियत के भारत स्थित राजदूत एम० ए० मेंशिकोव (११) सोवियत संघ के परराष्ट्र मन्त्रालय के निकट एवं मध्य पूर्व विभाग के प्रधान जी० टी० जेचीकोव (१२) सोवियत सघ के परराष्ट्र मन्त्रालय के प्रोतोकोल विभाग के प्रधान एफ० एफ० मोलोचकोव (१३) सोवियतसंघ के परराष्ट्र मन्त्रालय के द० पूर्वी एशिया विभाग के उप प्रधान एम० ए० मैक्सियोव (१४) सोवियत संघ के परराष्ट्र मन्त्रालय के दूर पूर्व विभाग के उप-प्रधान ए० एम० लेदोवस्की।

२१ जून को क्रेमलिन प्रासाद में सोवियत संघ की मन्त्रिपरिषद के अध्यक्ष एन० ए० बुल्गानिन और पंडित नेहरू में एक महत्व पूर्ण वार्ता हुई। इस वार्ता में एल० एम० कगानोविच, एन० एस० ख्रुश्चेव और ए० आई० मिकोयान ने भाग लिया।

इसी रोज पंडित नेहरू ने अपने दल सहित मास्को के बोलशोई थियेटर में 'दी फाऊंटेन आफ बखची सराय' नामक नृत्य नाट्य देखा।

श्री बुल्गानिन, श्री कगानोविच, श्री ख्रुश्चेव और ए० आई० मिकोयान भी नृत्यनाट्य में पडित नेहरू के साथ ही थे।

२२ जून को ही पंडित नेहरू ने अपने दल सहित प्रथम परमाणविक वैद्युतिक स्टेशन देखा।

इसी दिन पंडित नेहरू ने भोज दिया। भोज में सोवियत संघ के लगभग समस्त उच्चाधिकारी नेता और अफसर तथा पत्रकार उपस्थित थे।

मास्को स्थित दूतावासों और लिगेशनों के प्रधान भी भोज में उपस्थित थे।

इस समारोह में मास्को विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों एवं छात्रों के प्रतिनिधि मण्डल ने श्री नेहरू को मास्को विश्वविद्यालय के 'आनरेरी डाक्टर आफ ला' की उपाधि से विभूषित किया।

२२ जून को सोवियत संघ की मन्त्रि परिषद के अध्यक्ष एन० ए० बुल्गानिन और भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने विशाल क्रैमलिन प्रासाद में मैत्रीपूर्ण वातावरण में एक संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर किये।

सन्ध्या को सवा आठ बजे एन० ए० बुल्गानिन और पण्डित जवाहरलाल

नेहरू उस मेज के पास आये जिस पर रूसी और अंग्रेजी भाषाओं में संयुक्त घोषणा की मूल प्रति रखी थी। एन०ए० बुल्गानिन और पं० जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त घोषणा पर हस्ताक्षर किये और हाथ मिलाया।

पश्चात् सोवियत संघ की मन्त्रि परिषद के अध्यक्ष एन० ए० बुल्गानिन ने भारतीय गणतन्त्र के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के सम्मान में विशाल क्रैमलिन प्रासाद में भोज दिया।

संयुक्त घोषणा

मास्को २३-६-५५ (तास) सोवियत संघ की सरकार के निमन्त्रण पर भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने सोवियत संघ की यात्रा की। मास्को में अपने प्रवास के दौरान में उन्होंने सोवियत संघ के प्रधान मन्त्री श्री बुल्गानिन और सोवियत सरकार के अन्य अधिकारियों से कई बार बातचीत की। यह बातचीत मैत्री और हार्दिक प्रेम के वातावरण में हुई और इसमें दोनों देशों के पारस्परिक हित की बहुत सी बातों पर और अन्तर्राष्ट्रीय हित तथा महत्व की बड़ी समस्याओं पर चर्चा हुई जो वर्तमान विश्व राजनीतिक मामलों से उत्पन्न होती है।

यह सौभाग्य की बात है कि सोवियत संघ और भारत के सम्बन्ध मैत्री और पारस्परिक सद्भावना की मजबूत नींव पर आधारित है। प्रधान मन्त्रियों का दृढ़ निश्चय है कि ये सम्बन्ध निम्न सिद्धान्तोंसे अनुप्रेरित और संचालित होते रहेंगे—

(१) एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का पारस्परिक सम्मान;

(२) अनाक्रमण;

(३) आर्थिक, राजनीतिक और विचारधारा सम्बन्धी किसी कारण से एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप;

(४) समानता और पारस्परिक लाभ; तथा

(५) शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

प्रधान मन्त्रियों को विश्वास है कि ये सिद्धान्त; जिनको अभी हाल में अधिकाधिक समर्थन प्राप्त हुआ है, और भी अधिक विस्तृत पैमाने पर लागू किये जा सकते हैं और राष्ट्रों द्वारा पारस्परिक सम्बन्धों में इन सिद्धान्तों के पालन में उनके मन से भय और अविश्वास दूर होने और इस प्रकार विश्व तनातनी कमी होने की मुख्य आशा निहित है। ये सिद्धान्त जितने अधिक स्वीकार किये जायँगे शांति का क्षेत्र उतना ही विस्तृत होगा, राष्ट्रों में पारस्परिक विश्वास उतना ही बढ़ेगा और अन्तरराष्ट्रीय सहयोग का मार्ग उतना ही प्रशान्त होगा। इस प्रकार शांति का जो वातावरण पैदा होगा, उसमें अन्तराष्ट्रीय समस्याओं को बातचीत और सुलह समझौते के द्वारा शांतिपूर्वक हल करना सम्भव हो जायेगा।

दोनों प्रधान मन्त्री यह स्वीकार करते हैं कि संसार के विभिन्न भागों में छोटे और दुर्बल राष्ट्रों को बड़े राष्ट्रों से एक अस्पष्ट और सम्भवत: अनुचित भय है। वे ये अनुभव करते हैं कि इस भय को सब सम्भव उपायों से दूर करना आवश्यक है। यहाँ भी सहअस्तित्व के इन्हीं सिद्धान्तों पर दृढ़ता पूर्वक अमल करने का उपाय सबसे अच्छा है जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

प्रधान मन्त्री गत अप्रैल में बाडुंग में जो एशियाई-अफ्रीकी-सम्मेलन हुआ था उसके परिणामों की बहुत प्रशंसा करते हैं। यह सम्मेलन एतिहासिक महत्व का था, क्योंकि यह अपने प्रकार का पहला सम्मेलन था जिसमें दो महाद्वीपों के स्वतन्त्र राष्ट्र राजनीतिक एवं सामाजिक पद्धतियों की भिन्नता के बावजूद आपस में और अधिक आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सहयोग के साधन और तरीके खोजने के लिए इकट्ठे हुए थे। सम्मेलन के परिणाम उल्लेखनीय रहे हैं और सम्मिलित देशों की ही दृष्टि से नहीं, बल्कि सामानत: विश्व शांति की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्रधान मन्त्री सम्मेलन में स्वीकृत विश्व शांति और सहयोग की वृद्धि सम्बन्धी घोषणा की सराहना विशेष रूप से करते हैं जिसमें शांति पूर्ण सह अस्तित्व की धारणामूर्त तथा परमार्जित की गई है।

प्रधान मन्त्री यह स्वीकार करते हैं कि सामान्य अन्तरराष्ट्रीय स्थिति में सुधार के चिह्न दिखायी देते हैं।

वे मुख्यत: सुदूर पूर्व में तनातनी में कमी होने का, आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता

का, सोवियत संघ और यूगोस्लाविया के सम्बन्धों में सुधार का, और अणु युग के खतरे के प्रति अब सर्वत्र दिखायी देनेवाली तीव्र तर तथा अधिक व्यापक जागरूकता का स्वागत करते हैं। फिर भी बहुत बड़े भागों में मनुष्यों और राष्ट्रों के मस्तिष्कों में भय और सन्देह व्याप्त है और वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को दूषित करते हैं। सुदूर पूर्व में यद्यपि तनातनी कम हुई है, किन्तु तनातनी के कारण वहाँ अभी मौजूद हैं।

दोनों प्रधान मन्त्रियों की यह हार्दिक आशा है कि शांतिपूर्ण तरीकों से ताइ-वान के बारे में चीनी लोक गणतन्त्र के वैध अधिकारों को पूरा किया जा सकेगा साथ ही प्रधान मन्त्री अपने इस विश्वास की पुनरावृत्ति करते हैं कि चीनी लोक गणतन्त्र को संयुक्त राष्ट्र संघ में लेने से इन्कार करते जाने से सुदूर पूर्व और अन्य स्थानों में कई संकट पैदा हुए हैं। वे ये आवश्यक समझते हैं कि चीनी लोक गणतन्त्र को संयुक्त राष्ट्र संघ में उचित स्थान दिया जाये। इससे संघ की भूमिका और अधिकार ऊँचा ही होगा। वे ये भी महत्वपूर्ण समझते हैं कि वे सब राज्य जो अधिकार पत्र के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के अधिकारी हैं उसमें सम्मलित कर लिये जायें।

जेनेवा सम्मेलन के दो सह अध्यक्षों में से एक भी व्यवस्था करनेवाले देश के रूप में सोवियत संघ और हिन्दचीन के तीनों अन्तरराष्ट्रीय आयोगों के अध्यक्षों की व्यवस्था करनेवाले देश के रूप में भारत ने जेनेवा समझौतों के कार्यान्वय के सम्बन्ध में अपने ऊपर विशेष जिम्मेदारियाँ ली हैं। अन्तरराष्ट्रीय विवादों को वार्ताओं की विधि द्वारा किस प्रकार हल किया जा सकता है, जेनेवा समझौतों में इसका उल्लेखनीय उदाहरण मौजूद है। इसके अतिरिक्त इन समझौतों के क्रियान्वित किये जाने में जिस सीमा तक सफलता मिलेगी, उससे अन्य अन्तरराष्ट्रीय विवादों के सुलझाने में कर्ता के उपाय का मूल्य आँका जा सकेगा। अतएव प्रधान मंत्रियों ने हिन्दचीन की समस्या पर-विशेपरूप से विचार किया। अनेक कठिनाइयों के बावजूद जिन्होंने कभी-कभी काफी गम्भीर स्वरूप धारण कर लिया है, समझौतों के क्रियान्वित किये जाने का कार्य कुल मिलकर अब तक संतोषजनक रहा है।

क्रियान्वित किये जाने का कार्य अब कुछ नई एवं असंभावित घटनाओं के कारण बाधाओं में पड़ा हुआ है। दोनों प्रधान मन्त्री चाहते हैं कि समझौतों की शर्तों को क्रियान्वित करने से सम्बन्धित सभी सरकारें अपने दायित्व को पूरी तरह निभाएँ, ताकि समझौतों के उद्देश्यों को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके। विशेष रूप से, दृढ़ रूप से यह अनुरोध करते हैं कि राजनीतिक समझौते की भूमिका के रूप में जहाँ निर्वाचन होना होता है, वहाँ सम्बद्ध सरकारों को चाहिये कि उनके लिये निर्दशित हों।

जिन अन्तरराष्ट्रीय प्रश्नों में विभिन्न राष्ट्रों को गहरी दिलचस्पी है, उनमें कोई समस्या, न तो इतनी आवश्यक है और न हीं युद्ध और शांति की समस्या के लिये भयानक दुष्परिणामों से इतनी पूर्ण, जितनी कि निःशस्त्रीकरण की समस्या। शस्त्रास्त्रों के निर्माण की प्रवृत्ति से, जिसमें प्रचलित तथा अणुशस्त्र दोनों ही शामिल हैं, राष्ट्रों में पहले ही से व्याप्त डर और सन्देह की भावना और बढ़ गई है, और इसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय प्रसाधनों को जनोत्थान वाले वास्तविक उद्देश्य के विपरीति दूसरी बातों में जुटाया जा रहा है। प्रधान मंत्रियों की राय से आणविक तथा ताप परमाणविक युद्ध शस्त्रों के उत्पादन, परीक्षणों तथा प्रयोगों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने के रास्ते में किसी भी बाधा को नहीं आने देना चाहिए। इसके साथ ही उनका विचार है कि प्रचलित शस्त्रों में भी साथ ही ठोस कमी की जाये तथा इस प्रकार के निःशस्त्रीकरण एवं प्रतिबन्ध की योजना को क्रियान्वित करने के लिये कारगर अन्तरराष्ट्रीय निमन्त्रण की व्यवस्था की जाय। इस प्रसङ्ग में, निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी हाल के सोवियत प्रयासों को शांति की दिशा में एक ठोस योगदान स्वीकार किया गया।

प्रधान मंत्रियों का विश्वास है कि इस वक्तव्य में उल्लिखित पाँच सिद्धान्तों के अन्तर्गत दोनों राज्यों के बीच सांस्कृतिक, आर्थिक एवं प्राविधिक सहयोग की काफी गुंजायश है। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुये कि प्रत्येक देश अपनी प्रतिभा, परम्परा एवं परिस्थितियों के अनुसार विशेष प्रणाली का अनुकरण कर रहा है, उससे इस प्रभाव के सहयोग में कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिये। दरअसल, सह अस्तित्व का सार यह है कि विभिन्न सामाजिक प्रणालियोंवाले राज्य शांति

पूर्ण तथा मैत्री भाव से रह सकते हैं और समान हित के लिए कार्य कर सकते हैं।

कुछ समय पहले दोनों देशों के बीच हुए व्यापारिक समझौते की सहायता से दोनों देशों के मध्य साँस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में सहयोग में उल्लेखनीय विकास हुआ है। इस प्रकार के सहयोग की दृष्टि से वह समझौता उल्लेखनीय है जो सोवियत सरकार की सहायता से भारत में इस्पात का कारखाना लगाने के सम्बन्ध में अभी हाल में हुआ है। दोनों प्रधान मन्त्री उक्त सहयोग जनित पारस्परिक लाभों को दृष्टि में रखते हुए दोनों देशों के बीच आर्थिक तथा सांस्कृतिक और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक अनुसन्धानों के क्षेत्र में पारस्परिक सम्बन्धों को और विकसित तथा दृढ़ करने का प्रयत्न करते रहेंगे।

दोनों प्रधान मन्त्रियों को इस बात पर सन्तोष है कि उन्हें पारस्परिक हित के मामलों में व्यक्तिगतरूप से विचार विमर्श करने का अवसर मिला तथा उनका ऐसा विश्वास है कि उनकी वार्ताओं के फल तथा जो मैत्रीपूर्ण सम्पर्क स्थापित हुये हैं, व दोनों देशों तथा उनकी जनता के सम्बन्धों को और भी सुदृढ़ तथा विकसित करेंगें तथा विश्व शांति के हितों का साधन करेंगे।

(हस्ताक्षर) एन. ए. बुल्गानिन

सोवियत संघ की मन्त्रि परिषद के अध्यक्ष

जवाहरलाल नेहरू

भारत के प्रधान मन्त्री

पंडित नेहरू से प्यार

पंडित जवाहरलाल नेहरू जब तक रूस में रहे, नित्य उनके पास सैकड़ों तार और पत्र आते रहे, जिनमें प्राय: उनके चित्र और हस्ताक्षरों की माँग रहती थी, परन्तु दो तार इस प्रकार के आये जिनसे स्पष्टत: पंडित नेहरू से सोवियत जनता का हार्दिक प्यार झलकता है।

सोवियत अजर बे जान के एक कलाकार ने अपने तार में लिखा :—"आज मेरे यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ है। मैं उसका नाम जवाहरलाल रखने की

आज्ञा चाहता हूँ। मैं आपके स्वास्थ्य की मंगल कामना करता हूँ।'

एक दूसरे तार में कहा गया है :—'आपके प्रति और भारतीय जनता के प्रति अपना हार्दिक भाव प्रकट करने के लिये मैं अपनी नवजात पुत्री का नाम इन्द्रा रख रहा हूँ।'

ऐसे अनेकों उदाहरण सोवियत जनता के असीम प्यार के मिलते हैं।

अष्टम अध्याय

इतिहास का नया पृष्ट

सोवियत नेताओं की भारत यात्रा

शुभदिन

भारत के इतिहास में १८ नवम्बर १९५५ एक एतिहासिक दिवस बन गया है, जिस दिन सोवियत नेता श्री एन० एस० ख्रुश्चेव और मार्शल एन० ए० बुल्गानिन भारत पधारे।

गत जून में पण्डित नेहरू की सोवियत संघ की सौहार्दपूर्ण यात्रा के कारण ही इन नेताओं का भारत आना हो सका, क्योंकि चलते समय इन सोवियत नेताओं को पण्डित नेहरू ने भारत आने का निमन्त्रण दिया था, और इन नेताओं ने इस निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार भी कर लिया था। जब कि सोवियत के दोनों नेताओं के सामने इतना काम था कि वह किसी भी देश की यात्रा करने में उस समय असमर्थ थे, मगर फिर भी विश्व के राष्ट्रों के बीच चल रही तनातनी को कम करने के लिए, युद्ध के विरुद्ध शांति की आवाज को दृढ़ करने के लिए और विश्व पूँजीवादी देशों द्वारा औपनिवेशक राज्यों को स्वतन्त्रता न देने के कारण औपनिवेशक राज्यों द्वारा चल रहे अपने आजादी के संग्राम को मजबूत करने के लिए सोवियत नेताओं ने पंडित नेहरू के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। और १८ नवम्बर १९५५ को वह भारत पधारे।

सबसे पहले गैर साम्यवादी देशों में भारत को ही वह स्थान प्राप्त हुआ जहाँ की यात्रा सोवियत नेताओं ने सर्व प्रथम की। इसका अर्थ स्पष्ट था कि भारत की शांति की आवाज इतनी दृढ़ थी कि सोवियत नेताओं को अपने कितने ही आवश्यक कार्य छोड़ भारत की यात्रा करनी पड़ी। फिर भारत ने शांति के लिए कोरिया, हिन्द चीन तथा मलाया आदि में चल रहे युद्ध को बन्द कराने के लिए जो सतत प्रयत्न किए उन्हें इतिहास से मिटाया भी नहीं जा सकता।

जब मध्यान के समय सोवियत नेताओं का वायुयान आई० एल० १४ ढाई बजे पालम के हवाई अड्डे पर पहुँचा तो उनका वहाँ भारत के लाखों नागरिकों ने हृदय खोलकर 'हिन्दी रूसी भाई-भाई' के नारों के साथ स्वागत किया।

उनके वायुयान के उतरते ही पंडित नेहरू, डाक्टर राधाकृष्णन, भारत

सरकार के मन्त्री एवं प्रमुख अधिकारी, विदेशों के स्थानापन्न राजदूत और सोवियत संघ के स्थानापन्न राजदूत एम० ए० मेनशिकोव ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

सर्व प्रथम सोवियत संघ और भारत के राष्ट्र गीतों की ध्वनि बजी।

सोवियत नेताओं ने आर्डर ऑफ ऑनर का निरीक्षण करने के पश्चात् कूट-नीतिक मण्डल के सदस्यों से सम्मानित अतिथियों का परिचय कराया गया।

फूलमालाओं और पुष्पों से दोनों नेता ढक गए।

पश्चात् उनके स्वागत सम्मान में पण्डित नेहरू ने एक संक्षिप्त सा भाषण दिया। जिसमें उन्होंने कहा—

'महामहिम व्यक्तिगण सम्मानित अतिथियो!

'भारत भूमि पर प्रथम बार आपके पधारने पर आपका स्वागत करते हुए मैं अति प्रसन्न हूँ। आपका महान् देश और भारत एक दूसरे से दूर नहीं हैं, वरन लगभग पड़ोसी हैं। फिर भी बीते दिनों में हमारे दोनों देशों के सम्पर्क अत्यन्त सीमित थे। सौभाग्यवश अनेक क्षेत्रों में उन सम्बधों का तेजी के साथ विस्तार हो रहा है, और हमने एक दूसरे की और भी अच्छी जानकारी प्राप्त करना आरम्भ कर दिया है। कुछ महीने पूर्व मुझे सोवियत संघ जाने का विशेष अवसर और आह्लाद प्राप्त हुआ था और वहाँ आपने, आपकी सरकार ने तथा आपकी जनता ने मेरा जो हार्दिक स्वागत किया और जो मैत्री दिखाई उसे हम चिरकाल तक स्मरण रखेंगे। मेरी उस यात्रा ने हमारे दोनों देशों को एक दूसरे के निकट तक लाने में सहायता की और अब आपकी यह यात्रा मैत्री एवं सहयोग के हमारे सम्बन्धों को और भी सुदृढ़ बनाएगी इसमें मुझे सन्देह नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपका यह प्रवास सुखद होगा तथा हमारे दोनों देशों के लिए हितकारी होगा और राष्ट्रों के बीच शांति एवं सहयोग के महान् लक्ष्य को सहायता पहुँचायेगा।'

'मैं पुनः आपका स्वागत करता हूँ।'

श्री एन० ए० बुल्गानिन ने पंडित नेहरू और जनता द्वारा किये गये उनके स्वागत के लिए धन्यवाद प्रदर्शित करते हुए अपने भाषण में कहा—

'माननीय प्रधान मन्त्री जी,

'प्यारे मित्रो !

'हमें इस बात की प्रसन्नता है कि प्रधान मन्त्री पंडित नेहरू के निमन्त्रण की बदौलत भारतीय गणतन्त्र की राजधानी में हमारे लिए आना सम्भव हुआ है और हम महान् भारतीय जनता तक स्वयं हार्दिक अभिनन्दन एवं अत्यन्त शुभ आकांक्षाएँ पहुँचा सकते हैं। हम भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रति उनके प्रेमपूर्ण अभिवादन एवं शुभेच्छाओं के लिए अपनी सच्ची कृतज्ञताज्ञापन करते हैं।

'हम भारत की प्राचीन भूमि पर सम्मान एवं मैत्री के गम्भीरतम भाव के सहित अपने पैर रख रहे हैं, जो सोवियत जनता महान मौलिक संस्कृति की रचना करनेवाली भारत की उद्यमशील एवं मेधावी जनता के प्रति रखती है।

'अपनी मात्र भूमि की स्वतन्त्रा की पुनः स्थापना के हितार्थ शांतिप्रिय भारतीय जनता के वीरतापूर्ण संघर्ष के साथ सोवियत संघ की जातियों ने सदा समझदारी तथा गहरी सहानुभूति दिखाई है। प्रभु सत्तापूर्ण भारतीय गणतन्त्र की स्थापना पर सोवियत जनता ने परम सन्तोष एवं उल्लास प्रकट किया।

'भारतीय जनता की सृजनात्मक शक्ति में जो अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में तथा सर्व व्यापी सुरक्षा एवं शांति को सुदृढ़ बनाने में उत्तरोत्तर अधिकाधिक भूमिका अदा कर रही है हमारी जनता का गहरा विश्वास है। शांति की रक्षा करने तथा अपने देश के अर्थ तन्त्र की प्रगति के लिए भारत सरकार के प्रयासों को सोवियत सरकार अच्छी तरह समझती है और उसकी सराहना करती है।

'सोवियत तथा भारतीय जनता के सामने बहुत से समान कार्य हैं। शांति कायम रखने तथा उसे सुदृढ़ बनाने के लिए भारत और सोवियत संघ महान प्रयास कर रहे हैं और दोनों शांतिपूर्ण रीति से बातचीत के द्वारा विवाद ग्रस्त अन्तरराष्ट्रीय मसलों का हल करने के समर्थक है तथा इस क्षेत्र में अब तक अत्यधिक नतीजे हासिल हो चुके हैं।

'सोवियत संघ तथा भारत के पारस्परिक प्रयास जिनका उद्देश्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना है अन्तरराष्ट्रीय तनातनी कम करने के लक्ष्य में महत्व-

पूर्ण योगदान है ।

'हम अपनी भारत यात्रा के दौरान में भारतीय जनता से उसके रीतिरिवाजों से, अर्थ तन्त्र तथा राष्ट्रीय उद्योग का विकास करने के उसके प्रयासों के परिणामों से प्रत्यक्ष रूप में परिचित होना चाहते हैं ।

"हम आशा करते हैं कि भारतीय जनता के साथ हमारे साक्षात्कार होने तथा राजनीतिज्ञों के साथ हमारे सम्पर्क बढ़ने से हमारे देशों की पारस्परिक समझ-बूझ और मैत्री के और भी अधिक विकास के लिए सफल परिणाम प्राप्त होंगे ।

'आपके प्रेम पूर्ण और हार्दिक स्वागत के लिए मैं अपना सच्चा धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ ।

'भारत तथा सोवियत जनता की मैत्री अमर हो ।'

राजधानी में

भाषण के पश्चात् खुली गाड़ी में बैठकर दोनों सम्मानीय अतिथि पण्डित नेहरू के साथ राष्ट्रपति भवन पहुँचे । पालम हवाई अड्डे का द्वार बड़े कलात्मक ढंग से सजाया गया था । ये द्वार स्वागत के निमित्त विशेष रूप से सीढ़ियों का बनाया गया था । प्रत्येक सीढ़ी पर एक-एक कन्या खड़ी थी जिनके हाथों में सोवियत संघ के झंडे तथा भारतीय गणराज्य के झंडे एक के बाद एक क्रम से फहरा रहे थे ।

तेरह मील लम्बे मार्ग पर पन्द्रह लाख जनता उनके स्वागत के लिए खड़ी थी । स्थान-स्थान पर श्री ख्रुश्चेव और बुल्गानिन जनता को नमस्ते कह कर उनके अभिवादन का उत्तर दे रहे थे । हाथ हिला-हिलाकर, झंडियाँ हिला-हिला कर 'भारत सोवियत मैत्री जिन्दाबाद' के नारे लगा-लगाकर उनका स्वागत किया गया । देश के अनेक भागों से लोग उनके दर्शनों को आए थे । मार्ग में पुराने ईरानी ढंग से चादरें टंगी थी, झंड़े और झंडियों की तो गिनती ही न थी ।

इस प्रकार भारतीय इतिहास में १८ नवम्बर एक ऐतिहासिक दिवस बन गया ।

जब अमरीकियों के दिल पर साँप लोटा

जहाँ एक ओर भारतीय इतिहास का नया परिच्छेद लिखा जा रहा था, वहीं सोवियत नेताओं का अपार स्वागत देखकर अमरीकियों के हृदयों पर सांप लोट रहे थे। उनके पूंजीपति अखबार बिल्कुल वैसे ही बौखला गये थे जैसे पंडित नेहरू के मास्को स्वागत पर बौखला गये थे।

न्यूयार्क टाइम्स ने लिखा—'सोवियत नेताओं की भारत यात्रा एक विशेष प्रकार की राजनैतिक एजेन्टी है, जिसमें वो भारत और वर्मा को कम-से-कम तटस्थवाद दे सकें तथा अफगानिस्तान का सोवियत की ओर झुकाव कर सकें।'

उसने लिखा—'भारतीय जनता की ये आशा कि रूस से कोई आर्थिक सहायता मिलेगी मृग मरीचिका सिद्ध होगी। तथापि रूसी यात्री यह तो जान ही सकेंगे कि स्वतन्त्रता के बाद पश्चिमी राष्ट्रों की सहायता से भारत और वर्मा ने कितनी उन्नति करली है।'

न्यूयार्क टाइम्स ने १६ नवम्बर के अङ्क में अपने नई दिल्ली स्थित संवाद-दाता का हवाला देते हुए लिखा कि—'सरकारी प्रेरणा पर भारी संख्या में जनता ने सोवियत नेताओं का स्वागत किया, किन्तु इस स्वागत में उत्कटता और घनिष्ठता नहीं थी। यदि श्री आइजनहावर भारत जाएं तो उन्हें इस से भी अधिक स्वागत मिलेगा।'

और इसका शीर्षक दिया था—'रूसी माल के दो एजेंट'

भला इससे अधिक लज्जा की और क्या बात हो सकती थी।

डेलीन्यूज ने 'क्या रूस कुछ दे सकता है' नामक शीर्षक से अपने अग्र लेख में लिखा—'निकोलाई और निकिता नेहरू और नू के कानों में अनेक उपहारों और भेटों के देने की बात कहेंगे रूस क्या कुछ देता है यह कुछ समय में ही ज्ञात हो जाएगा।'

देहली से निकलनेवाले एक हिन्दी दैनिक ने अमरीका के अखबार के एक कार्टून के बारे में लिखा—'एक पत्र ने कार्टून प्रकाशित किया है, जिसमें एक रूसी कारखाने को दिखलाया गया है, जो औद्योगिक सहायता के लिये है। इसमें

कुछ रस्सियाँ है जो सारे एशिया तक फैली हुई हैं। इस कार्टून का शीर्षक है—'रस्सियाँ जो गले का फंदा हैं।'

यहाँ एक बात कह देनी आवश्यक समझ पड़ती है, क्योंकि बिना उसे बताए ऊपर के भिन्न-भिन्न अखबारों के उद्धरण अधूरे रह जाएँगे। क्या जब अमरीका से हमने (भारत ने) सहायता ली थी तब क्या सोवियत पत्रों ने ऐसी कोई बात कही थी ? क्या अमेरिका के पत्रकार और सम्पादकों के गले तक साम्राज्यवादी फंदा इस बुरी तरह से फँस गया है कि वह डलेस की आवाज में ही पुकारते हैं ! पर हमें क्या ! हम भारतीय तो परम्परागत शांति के ही मार्ग पर चलनेवाले हैं, जिस पर आज नेहरू, ख्रुश्चेव, बुलगानिन, चाओ एन लाई, नू और टीटो आदि अनेक देशों के नेता चल रहे हैं; जो नवनिर्माण के लिए, राष्ट्रों की खुशहाली और मित्रता के लिये शांति चाहते हैं।

स्वागत

१६ नवम्बर को देहली के रामलीला ग्राउण्ड में राजधानी की जनता की ओर से सोवियत नेता श्री ख्रुश्चेव और बुलगानिन का स्वागत किया गया।

राजधानी के इतिहास में यह एक आश्चर्यजनक घटना थी, जब कि सात आठ लाख नागरिकों ने रामलीला मैदान में एकत्रित होकर सोवियत संघ के प्रधान मन्त्री मार्शल बुलगानिन और उनके साथी श्री ख्रुश्चेव का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए 'रूस भारत मैत्री जिन्दाबाद' के नारे लगाये और अपने महान पड़ोसी देश के प्रति भारतीय जनता की सद्भावनाओं का परिचय दिया।

इस ऐतिहासिक आयोजन की पृष्ट भूमि भी देहली नगरपालिका ने ऐतिहासिक ही बना रखी थी। जो मंच बनाया गया था वह सारनाथ मंदिर का एक सुन्दर नमूना था और उसी प्रकार का प्रवेश द्वार, जो सांची के बौद्ध स्तूप का ज्यों का त्यों नकशा था।

और रोशनी ! रोशनी के लिये तो यों कहना चाहिए कि इस दिन दिल्ली में जैसी रोशनी की गई वैसी १५ अगस्त १६४७ को भी नहीं की गई थी। दिल्ली का पुराना टूटा द्वार तुर्कमान गेट आज दूल्हा दिखाई देता था।

लगता था अपने सम्मानीय अतिथियों के स्वागतार्थ देहली नगरपालिका ने एक नया ही द्वार बनवाया है जो रंगीन बल्बों से बना है और यही दशा दरियागंज के देहली दरवाजे की थी। पेड़ों के पत्तों-पत्तों पर बल्ब लगाने की चेष्टा की गई थी। इस तरह सोवियत नेताओं का भारतीय जनता ने स्वागत किया था।

रामलीला ग्राउण्ड की सभा में जिसमें सात लाख से अधिक मनुष्य उपस्थित थे पंडित नेहरू ने अपने सम्मानीय अतिथियों का स्वागत करते हुए अपने भाषण में कहा :—

'जब मैं सोवियत यूनियन में था, वहाँ के नेताओं से और आम लोगों से मिला था। उन्होंने अपने विचार हमारे सामने और हमने उनके सामने रखे थे। अब उनके दो आदरणीय नेता हमारे यहाँ आये हैं। यह कोई चन्द नेताओं का मिलना नहीं, बल्कि बहुत गहरी और अधिक बड़ी बातें हैं। इसका अर्थ है दो कौमों का मिलना और उनका पहिचानना। इसलिये इस तरह के मिलन का बहुत बड़ा एतिहासिक महत्त्व होता है। आप लोग आज एक एतिहासिक अवसर पर बैठे हैं, जिसके नतीजे दूर तक जायेंगे, किसी कौम के खिलाफ नहीं वरन् दुनिया के भले के लिये।'

हिमालय पहाड़ के बारे में आज तक लोग कहते हैं कि यह एक दीवार है जो बहुत ऊँची है। पंडित नेहरू ने इस सम्बन्ध में कहा—

'ताशकन्द शहर से उड़कर चन्द घन्टों में उनका दिल्ली पहुँच जाना यह सिद्ध करता है कि ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के बावजूद दुनिया अब कितने पास-पास होती जा रही है। किसी जमाने में हिमालय पहाड़ एक दीवार थी, भारत की सीमा पर बहुत जबरदस्त दीवार थी। इससे लाभ भी होता था, और रुकावटें भी पड़ती थीं। हिमालय अब भी मौजूद है, मगर अब वह दीवार नहीं है, अब तो वह दूसरे देशों से सम्बन्ध और प्रेम जोड़ने में दीवार के बजाय एक सुदृढ़ कड़ी बन जायगी। जो लोग हिमालय के उस पार रहते हैं उनसे हमारी मित्रता है, और वह दिन-दिन मजबूत होती जा रही है।

'.........हमारे महान नेता महात्मा गांधी ने भी हमें एक साथ मिलकर रहना सिखाया है। जो हमारा विरोधी हो उसकी ओर भी हम मित्रता का ही

हाथ बढ़ाते हैं, किसी भय या दवाव के कारण नहीं, वरन अच्छी नीयत से मित्रता के लिये हाथ बढ़ाते हैं। आज की दुनिया में तो यह सिद्धान्त और भी आवश्यक है। यह सन्तोष की बात है कि शांति का पक्ष दिन दिन मजबूत होता जा रहा है, पर अभी गाँठें हजारों बाकी हैं जिन्हें खोलना है, पर हमारा वर्ताव सदैव मित्रता का ही रहेगा और शांति की वास्तव में नींव भी यही है। हमें इस बात का अभिमान है कि दुनिया में हमारा कोई दुश्मन नहीं है। सभी मित्र हैं। कोई देश यदि हम से रुष्ट भी रहा तो भी हमने उसकी ओर मित्रता का ही हाथ बढ़ाया। हमारा पड़ोसी एक महान देश चीन है, जिससे हमारा समझौता हुआ है। हमने पाँच बड़े सिद्धान्तों की घोषणा की है, जो विश्व शांति की नींव के पाँच बड़े पत्थर कहे जा सकते हैं। इनके पश्चात् बाडुंग सम्मेलन में दूसरे अन्य देशों ने पंचशील को स्वीकार किया और अब सोवियत यूनियन जैसे महान देश ने भी उन सिद्धान्तों को स्वीकार किया है।

'.........आज की दुनिया एक गढ़ी हुई दुनिया है। देश एक दूसरे के पास आते हैं विचारों के साथ साथ दूसरी अन्य बातों में भी। सबके सामने एक ही मार्ग है, और वह कि 'दुनिया में शांति स्थापित रहे।' यदि चेष्टायें जारी रहीं तो निश्चय-ही विश्व इस ओर आयेगा।

सोवियत नेताओं की भारत यात्रा का उल्लेख करते हुए पंडित जी ने कहा—'इससे भारत और सोवियत यूनीयन का सम्बन्ध दृढ़ होगा। हम उनके तजुर्बे से लाभ उठायेंगे, और इस से हमारे देश को निश्चय ही लाभ पहुँचेगा। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि ये अवसर उन बड़े दिनों में गिना जाय जब हमने कुछ-कुछ बड़े-बड़े कदम उठाये हैं।'

भाषण के अन्त में पंडित जी ने जनता के साथ मिलकर 'रूस भारत मैत्री जिन्दाबाद' और 'जयहिन्द' के नारे लगाए।

देहली की नगरपालिका के प्रधान श्री रामनिवास अग्रवाल ने अभिनन्दन पत्र पढ़ा, जिसमें भारत और सोवियत के शांति प्रयत्नों का उल्लेख करते हुए यह आशा प्रकट भी गई थी कि विज्ञान, उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में दोनों देशों का सहयोग बढ़ता जायेगा।

दिल्ली के इतिहास पर प्रकाश डालते हुये उन्होंने कहा—

'एक लम्बी अवधि की विदेशी सत्ता की मुक्ति के पश्चात् अब दिल्ली एक स्वाधीन राष्ट्र की राजधानी के रूप में पैदा हुई है। अपनी स्वतन्त्रता के इन आठ वर्षों में हमने पूर्वी और पश्चिमी देशों के सर्वोच्च नेताओं एवं विशिष्ट राजनीतिज्ञों सहित अनेक प्रतिष्ठित महानुभावों का स्वागत किया है। आज आपका यहां स्वागत करते हुए हम अपने आपको विशेष भाग्यवान समझते हैं। इस प्रसन्नतापूर्ण अवसर पर यहां एकत्र विशाल जनसमुदाय हमारी भावनाओं का रूप है।

'विश्व इतिहास के इस कठिन काल में हमारी सरकार एवं जनता के निमंत्रण पर आपका यहाँ पधारना अत्यन्त महत्व पूर्ण है। इससे भारत और सोवियत संघ के बीच मैत्री में वृद्धि होगी। हमारा पूर्ण विश्वास है कि ये मैत्री न केवल हमारे दोनों देशों के लिए शुभ है वरन् इससे विश्वशांति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ाने में भी सहायता मिलेगी; जिसके लिए हमारे हृदय में इतना अधिक स्थान है। हमारी इस मैत्री का लक्ष्य किसी अन्य देश अथवा जनता के प्रतिकूल नहीं है। भारत ने अपने सामने केवल एकही ध्येय और एकही सेवा का व्रत रखा है और वह है प्रत्येक देश के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना फिर चाहे नीति सम्बन्धी विचार विभिन्नता कैसी ही क्यों न हों। हमारा विश्वास है कि हमारी यह नीति शांति एवं पारस्परिक मैत्री स्थापित करने में सहायक रही है।'

इस समय मार्शल बुल्गानिन ने भी एक भाषण दिया।

बुल्गानिन का भाषण

मान्यवर प्रधान मन्त्री जी, नगर पालिका के अध्यक्ष और भारत की गौरव पूर्ण राजधानी, अद्वितीय नगर दिल्ली के महान् प्रिय नागरिको! मुझे सर्व प्रथम इस बात की अनुमति दीजिए कि मैं अपनी ओर से, अपने साथी श्री ख्रुश्चेव की ओर से और अपने अन्य साथियों की ओर से जो हमारे साथ भारत की राजधानी में आये हैं, भारत सरकार तथा भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण के लिए कृतज्ञता प्रगट करूँ। आपके इसी निमन्त्रण के परि-

णामस्वरूप हमें यहाँ आकर आपका महान देश देखने और यहाँ के दार्शनिक तथा कुशल लोगों से परिचय प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

मुझे इस बात की भी आज्ञा दीजिए कि मैं आपके द्वारा किए गए हार्दिक स्वागत के लिए आपको धन्यवाद दूँ। आपने हमारा जो सम्मान व स्वागत किया है हम उसमें महान भारतीय नागरिकों की रूस के नागरिकों के प्रति सच्ची मैत्री की भावना देखते हैं। हम आपको तथा आपके द्वारा भारत के १५ करोड़ निवासियों को रूस की जनता की ओर से हार्दिक शुभ कामनाकएँ और उनकी शुभेच्छायें प्रेषित करते हैं—उस रूसी जनता की जो भारत के निवासियों के प्रति शुभ और निःस्वार्थ मित्रता के भाव रखती है।

हमारे देशों के मध्य मैत्री सम्बन्ध बहुत पहले से थे जो आज तक किसी भेद भाव या आपसी शत्रुता के कारण धुंधले नहीं हुए हैं इतना ही नहीं रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति के पश्चात् तो दोनों देशों के बीच मित्रता के यह भाव और भी अधिक बढ़े और विकसित हुए हैं।

'रूसी जनता ने जो सदियों के पुराने निर्दय पूर्ण वातावरण से मुक्त हुई थी, सदैव ही आपकी ओर स्वतन्त्रता के पुनर्स्संथापन के लिए किऐ गए बलि-दान पूर्ण संघर्ष को सहानुभूति से देखा है, और इस सफलता से आपको जो प्रस-न्नता हुई है, उससे हमें भी बड़ा हर्ष हुआ है, क्योंकि हम भी सदैव एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर अत्याचार के विरुद्ध रहे हैं।

हमारे महान विचारक नेता और शिक्षक लेनिन ने समानता और आत्म-निर्णय और प्रत्येक राज्य के स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा की और इसी घोषणा पर रूस की वैदेशिक नीति के सिद्धान्त आधारित हैं। जब से भारत में एक सार्व-भौम सत्ता का प्रादुर्भाव हुआ है, दोनों देशों के बीच मैत्री के विकास के लिए और भी परिस्थितियाँ बन गई हैं।

'सोवियत संघ और गणतन्त्र भारत, इस समय सुदृढ़ आधार पर अपने सम्बन्धों का निर्माण कर रहे हैं। पंचशील के पाँच अंग हैं जो एकदूसरे की राजकीय सीमा और सार्वभौमसत्ता का सम्मान, अनाक्रमण, किसी भी बहाने से दूसरों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना—चाहे वह आर्थिक हों या

राजनैतिक या आदर्शवादी—समानता और आपसी लाभ एवं शांतिपूर्ण सहअस्तित्व पर आधारित है। सबसे प्रथम जनवादी चीन और भारत ने इन पाँचों सिद्धान्तों की घोषणा की, लेकिन उन्हें अभी सभी शांति-प्रिय लोगों और राष्ट्रों का समर्थन मिला है और विभिन्न देशों में उसे कार्यान्वित भी किया गया है, जिससे काफी लाभ हुआ है।

भारत सरकार ने अन्तरराष्ट्रीय तनाव को कम करने और शांति को दृढ़ बनाने की दिशा में काफी प्रगति की है। ऐसी स्थिति में जब कि रूसी जनता ने एक से अधिक अवसरों पर विदेशी आक्रमण कारियों से हाथों में शस्त्र लेकर अपनी मातृभूमि की रक्षा की और जो इस बात को विशेपरूप से जानते हैं कि युद्धों से जनता को असंख्य कठिनाइयाँ होती हैं, रूसी जनता अपने दिल की गहराइयों से भारत सरकार और भारत के निवासियों द्वारा शांति स्थापना के लिए किये गये प्रयत्नों की प्रशंसा करती है।

अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में, समूचे विश्व में शान्ति के महान और नेक संघर्ष के लिए हमारे देश कंधे से कंधे लगाकर खड़े होते हैं।

हमें इस बात से विशेष प्रसन्नता हुई है कि भारत और साथ ही रूस भी, संयुक्तराष्ट्र संघ में जनवादी-चीन को प्रतिनिधित्व दिलाने सरीखे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर एक राय है।

भारत सरकार और भारत की जनता ने अपनी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था को विकसित करने के लिए जो कोशिश की है, विशेषरूप से उद्योगों को विकसित करने की कोशिशें, उनकी ओर हमारे देश की जनता सहानुभूति के साथ देखती है। हमें अपने अनुभवों से यह विश्वास हो गया है कि केवल वही नीति वास्तविकता पूर्ण स्वतन्त्रता ला सकती है, जिसने अपने लिए स्वतन्त्र विकास का मार्ग अपना लिया है। अलबत्ता, आप लोगों को अब कुछ कठिनाइयों का सामना करना है, लेकिन हमें पूरा विश्वास है कि दार्शनिक और परिश्रमी भारतवासी अपने निर्दिष्ट ध्येय को प्राप्त करके रहेंगे। अपनी ओर से, हम औद्योगिक संस्थानों विद्युत-स्टेशनों और अणुशक्ति के उपयोग आदि के के अनुभवों से आपको सहयोग देने के लिए तैयार हैं।

आज भारत और रूस के बीच आर्थिक सहयोग के विकास के लिए परि-स्थितियाँ सर्वथा अनुकूल हैं जिनका लाभ हम समानता और आपसी सहयोग के आधार पर कर सकते हैं।

हमारे देशों के बीच के सम्बन्ध अब काफी दृढ़ हो गये हैं। आर्थिक क्षेत्र के अलावा वे विज्ञान और संस्कृति क्षेत्र में भी काफी समीप आ गये हैं और ये हर्ष का विषय है, क्योंकि आदान-प्रदान द्वारा और एक दूसरे की संस्कृति के परिचय के द्वारा वे और समीप आते हैं और समृद्धि प्राप्त करते हैं। हम सदैव ही संस्कृति और कला के क्षेत्रों में विस्तृत आदान-प्रदान के लिए उद्यत हैं।

भारत और रूस के सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे सवर्था भिन्न हैं, लेकिन हमारे लोगों की बहुत-सी बातें समान हैं। जिससे हमारी मैत्री दृढ़ होती है और वह न केवल रूस तथा भारत के लिए वरन समूचे विश्व के लिए लाभप्रद है।

दोनों देशों की जनता की एक समानता यह है कि वे दोनों ही शान्तिप्रिय और परिश्रमी हैं और दोनों ही के लिए उपनिवेशवाद और जातिवाद के विचार विदेशी है। वे सक्रिय रूप से शांति की स्थापना और उसकी सुरक्षा के लिए खड़े हैं। वे अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता और सभी देशों के बीच आपसी सहयोग और मैत्री के इच्छुक हैं।

भारत और रूस की जनता का सहयोग और उसकी मित्रता जिन्दाबाद। जयहिन्द।

आगरे का ताज

आगरे के ताजमहल को बिना देखे भला हमारे माननीय अतिथि कैसे रह सकते थे, वह २० नवम्बर को आगरा पहुँचे, जहाँ उत्तरप्रदेश की जनता ने उनका दिल खोलकर स्वागत किया। उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री के० एम० मुंशी डा० सम्पूर्णानन्द तथा अन्य कई मन्त्री और आगरे के प्रसिद्ध नागरिकों ने भी इस स्वागत समारोह में भाग लिया।

श्री एन० एस० ख्रुश्चेव तथा मार्शल बुल्गानिन को यहाँ कई भेंट दी गई, बदले में अतिथियों ने भी सोवियत संघ की जनता की ओर से उन्हें भेंट दी।

श्री एन० एस० ख्रुश्चेव ने यहाँ पर अपने स्वागत का उत्तर देते हुए कहा-- 'मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि हमारी जनता भारतीय जनता के प्रति मित्रता और सौहार्दपूर्ण भाव रखती है।

'आप राष्ट्रीय मुक्ति तथा अपने देश के स्वतन्त्र शासन के भव्य वसन्तकाल में रह रहे हैं, पर मैं आपको ये स्मरण कराना चाहता हूँ कि स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता केवल इसी शर्त पर सुदृढ रह सकती है कि आप अपने उद्योगों का, विशेषकर यंत्र निर्माण उद्योग का विकास कर सकें।'

उन्होंने कहा--'मैं आपको परामर्श देना नहीं चाहता, सोचता हूँ कि आप इन सब बातों को अच्छी तरह जानते हैं।

'हमने अभी-अभी मानव हस्तलिप की अप्रतिभ रचना-भव्य समाधि देखी है। जब मैं यह इमारत देख रहा था तो मेरे मन में दो भाव उठ रहे थे। पहला भाव भारत की महान जनता के लिए उनकी कला संस्कृति एवं हस्तशिल्प के लिए प्रशंसा का था जिनका विकास सदियों पूर्व हुआ था। यह इमारत आपकी जनता के लिए गर्व की वस्तु है।'

दूसरे भाव के बारे में उन्होंने कहा--'पर मेरे मन में एक और भाव भी था। अनायास मेरे मन में आया कि किस प्रकार सम्राट और बादशाह मानव श्रमकी परवाह नहीं करते थे, और वे उसका कैसा अपव्यय करते थे। शासित जनता के हाथों द्वारा बलात ऐसी समाधियों का निर्माण कराके उन्होंने केवल अपने को गौरवान्वित करने के उद्देश्य से जनता की शक्ति एवं स्रोत साधनों का अपव्यय मात्र किया। और ठीक उसी समय लाखों लोग क्षुधा-पीड़ित हो काल कवलित हो रहे थे। यह है एक ओर सम्पत्ति तथा दूसरी ओर दरिद्रता का दृश्य।'

वह बोले--'यदि मेरा भाषण अप्रासंगिक हो गया हो तो उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ, लेकिन मैं आपको अपने भाव बताना चाहता था जो इस समाधि को देखते समय मेरे मनमें उठ रहे थे।'

अन्त में सभी को धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा--'मैं आपकी खुशहाली और सुख समृद्धि की कमना करता हूँ।'

नेहरू जी द्वारा दिया गया भोज

सम्माननीय अतिथियों को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भोज दिया, जिसमें लगभग समस्त केन्द्रीय सरकार के मन्त्री, उपराष्ट्रपति, संसद के दोनों सदनों के सदस्य, कुछ प्रमुख अधिकारी और लब्ध प्रतिष्ठित नागरिक सम्मिलित थे। इस शुभ अवसर पर सोवियत संघ के प्रधान मन्त्री श्री एन० ए० बुलगानिन ने एक औपचारिक भाषण दिया। जिसमें उन्होंने उपस्थित सज्जनों के प्रति शुभ-कामनाएँ प्रकट करते हुए कहा—

'हमारे देश तथा भारत के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध एक लम्बी अवधि से स्थापित है, और इस बीच हमारे दोनों देशों की जनता ने एक-दूसरे को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा है। सोवियत संघ तथा भारत की जनता ने अपने सुखमय भविष्य के संघर्ष में सदैव एक-दूसरे की नैतिक सहायता प्राप्त की है। उनकी मैत्री एवं सहकारिता इस समय और भी सुदृढ़ हो गई है, जब ये स्पष्ट हुआ कि शान्ति एवं मानव जाति की खुशहाली के लिए होनेवाले संघर्ष में भारत और सोवियत संघ के बहुत-से पारस्परिक हित समान हैं।'

माननीय प्रधान मन्त्री ने दोनों देशों के सम्बन्धों को पंचशील पर आधारित बताते हुए कहा—

'सोवियत संघ भारत के साथ तथा अन्य शान्तिप्रिय देशों के साथ जो इन सिद्धान्तों का उद्घोष कर चुके हैं या करने को इच्छुक हैं, अपने संबंधों में इन सिद्धान्तों का अक्षरस-पालन करता है।

'भारत और सोवियत संघ शान्तिप्रिय देश हैं। हमारी राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाएँ भिन्न हैं और अपनी जनता की खुशहाली एवं सुख समृद्धि प्राप्त करने के लिए हमने विभिन्न मार्ग चुने हैं। लेकिन भारत तथा सोवियत संघ की जनता के लिए 'शांति' शब्द समान रूप से पवित्र है। शांति का ये इरादा हम लोगों को एक दूसरे के और भी निकट लाता है, हम लोगों को एक जूट करता है, तथा जटिल अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शांतिपूर्ण रीति से हल करने के लिए संघर्ष करने को हमें समर्थ बनाता है।'

श्री बुल्गानिन ने अपने भाषण में शीतयुद्ध के खिलाफ बोलते हुए कहा—
"हम हमेशा शीतयुद्ध के खिलाफ रहे हैं, और हम नहीं चाहते कि इसका पुनः सूत्रपात हो। हम पारमाणविक एवं उद्जन अस्त्रों को निषिद्ध ठहराने, प्रचलित शस्त्रास्त्रों में कमी करने, यूरोप में सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था स्थापित करने तथा राज्यों के बीच सम्पर्क बढ़ाने के लिए संघर्ष करते रहेंगे।

'जहाँ तक जर्मन समस्या का सवाल है, हमारी नीति वही है जो पहले थी और इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इस समस्या का हल करने के लिए समय और धैर्य की अपेक्षा है। हमारा विश्वास है कि इस मस्ले का हल करने के लिए सबसे पहले जर्मन जनता के ही ऊपर इस बात को छोड़ देना चाहिए और हमारा काम इस विषय में उनको मदद करना होना चाहिए।

'एशिया, में जहाँ सबसे बड़े देश चीनी लोकगणतन्त्र, भारत और सोवियत संघ हैं, महान परिवर्तन हो रहे हैं। विश्व शांति के लिए यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि इन तीनों देशों के सम्बन्ध शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, मैत्री एवं सहयोग के सिद्धान्तों की ठोस नींव पर आधृत हैं।

'भारतीय गणतन्त्र का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व वर्ष प्रति वर्ष बढ़ रहा है। एशिया तथा अन्य देशों की समस्याओं के ऊपर विचार-विमर्श करने और उनका समाधान करने में भारत उत्तरोत्तर अधिकाधिक भाग ले रहा है।

'यह सभी जानते हैं कि भारत की ख्याति न केवल इस बात से बढ़ रही है कि यह दुनिया के विशालतम देशों में एक है वरन् इस तथ्य के कारण कि जौ भर भी टस से मस हुए बिना दृढ़तापूर्वक शांति का समर्थन कर रहा है।

'इस सम्बन्ध में हम एशियाई एवं अफ्रीकी देशों के बाडुंग सम्मेलन के भारी-महत्व की ओर संकेत किए बिना नहीं रह सकते जिसने 'बाडुंग' वातावरण तैयार करने में योग दिया—ऐसा वातावरण जो एशिया और अफ्रीका की जनता के भाग्य से सम्बद्ध समस्याओं का हल करने के काम को और भी आसान बना देता है।

'भारत के सक्रिय सहयोग से कुछ उलझन पूर्ण एशियाई समस्याओं का समाधान किया जा चुका है। हमें पूर्ण विश्वास है कि भारत तथा भारत सरकार

जिसके प्रधान हमारे मित्र श्री नेहरू हैं इसी सक्रिय ढंग से भविष्य में भी एशिया तथा सारे संसार में शान्ति की रक्षा करते रहेंगे।'

उन्होंने अपनी भारत यात्रा की सफलता के बारे में कहा—'हमारा पक्का विश्वास है कि हमारी भारत-यात्रा हमारे दोनों देशों के बीच मैत्री एवं सहयोग को और भी सुदृढ़ बनाने के लक्ष्य में योगदान देगी।

उन्होंने कहा—'सोवियत सरकार नये भारत के निर्माण में भारतीय-जनता की तथा शांति के निर्भीक सैनानी श्री जवाहरलाल नेहरू की और भी अधिक सफलता की शुभकामना करती है।'

स्काउट मेला

२१ नवम्बर सन् १९५५ को देहली प्रान्त के स्काउटों के मेले में श्री एन. एस. खुश्चेव ने एक भाषण में कहा—

'······मैं आप लोगों से एक और बात कहना चाहता हूँ कि स्काउट दल के नेता ने अपने भाषण के दौरान में यहाँ आने के लिए हमें धन्यवाद दिया है। लेकिन मैं कहूँगा कि हमारी यह यात्रा केवल शिष्टाचार की ही द्योतक नहीं है, वरन एक आवश्यकता है। दोनों देशों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाना हमारे लिए जरूरी है।'

सोवियत भारत मित्रता के सम्बन्ध में उन्होंने बताया—'स्वतन्त्र नीति का अनुसरण करते हुए श्री नेहरू के नेतृत्व में आपकी सरकार ने सोवियत संघ के साथ सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए हैं। ये सम्बन्ध विश्व-शांति को सुदृढ़ बनाने एवं उदात्त लक्ष्य के संयुक्त संघर्ष पर मुख्यतः आधारित है।

'अतएव हमारी मैत्री दृढ़तम आधार पर कायम है, और इसका विकास सफलतापूर्वक होगा।'

पंच वर्षीय योजना के बारे में उन्होंने कहा—'हम आपकी हर सफलता के ऊपर हर्ष प्रकट करते हैं। अब आपने द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार करना शुरू किया है, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। इसके दो पहलू हैं :

कृषि की उन्नति तथा उद्योग का सुदृढ़ीकरण और विकास।

कृषि की उन्नति किए बिना औद्योगिक विकास की योजना को सफलता पूर्वक कार्यान्वित करना असम्भव है। कल-कारखाने खड़े करने के लिए भोजन वस्त्र तथा जीवन-धारण के अन्य समस्त साधनों का होना आवश्यक है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ की जनसंख्या विपुल है और इसमें सन्देह नहीं कि खाद्य पदार्थों तथा जीवनोपयोगी प्राथमिक वस्तुओं की माँग वर्ष प्रतिवर्ष निरन्तर बढ़ती जायगी।

'लेकिन दूसरी ओर औद्योगिक विकास के बिना कृषि की उन्नति करने की समस्या को सफलतापूर्वक हल करना असम्भव है। उद्योग और कृषि के विकास के लिए यंत्र-निर्माण उद्योग मेरुदण्ड स्वरूप है। इसमें सन्देह नहीं कि हाथी को काम करते देख कुतूहल होता है। मैंने एक फिल्म में यह देखा है। लेकिन ट्रेक्टर, आटोमोबाइल और इंजनें अधिकाधिक शक्तिशाली हैं और उन्हें आदमी जैसे चाहे चला सकता है। अपने अनुभव से हमने ये बात सीखी है। हमारे यहाँ हाथी नहीं होते, लेकिन बीते दिनों में बैलों और घोड़ों से हमने काम लिये हैं, लेकिन जब यन्त्रों ने उनका स्थान लिया तो काम और भी अच्छी तरह होने लगा।

'अपनी द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्दर आप अपने उद्योगों का विकास करना चाहते हैं, यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है। हम सोवियत संघ के लोग अपने अनुभव से जानते हैं कि औद्योगिक विकास का सभी दृष्टियों से भारी महत्व है। इस सम्बन्ध में यह याद रखना विशेषरूप में महत्वपूर्ण है कि प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता को कायम रखना एवं उसकी रक्षा करनी जरूरी है। देशकी पूर्ण स्वतन्त्रता केलिए परिस्थितियाँ तैयार करने के वास्ते आवश्यक उद्योगों के रूप में दृढ़ आधार तैयार करना और उस पर निर्भर रहना जरूरी है।'

हमारे देश को और भी समृद्धिशाली बनाने के बारे में अपनी अमूल्य सलाह देते हुए उन्होंने कहा—

'आप आत्मिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और यह चीज समस्त पूंजीयों से कहीं अधिक मूल्यवान है, और यदि आपकी जानता की समृद्धि एवं गर्वपूर्ण आत्मा राष्ट्रीय अर्थतन्त्र के विकास के लिए अपने उद्योग पर निर्भर करे तो आपका देश

श्रौर भी अधिक समृद्धिशाली हो जागया।'

भारतीय संसद में

सम्मानीय अतिथि श्री बुलगानिन और श्री ख़ुश्चेव ने भारतीय संसद के दोनों सदनों के सामने अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण दिये, जिनके मुख्य भाग ये हैं—

एन. ए. बुल्गानिन

मैं यहाँ ये कहना चाहता हूँ कि रामलीला मैदान में लाखों की संख्या में जन समूह को देख जो हमारे अभिनन्दन के लिए वहाँ उपस्थित थे हम अत्यन्त गद्गद हो गये। जिस निष्ठा से जनता ने अपने उद्दाम भावों को एक स्वर से प्रकट किया है उसे देखकर हमें दृढ़ विश्वास हो गया है कि भारत की जनता *सोवियत जनता की सच्ची एवं निःस्वार्थ मित्र है। इस मैत्री को बढ़ाने तथा व्या*पक बनाने के लिए अपनी तरफ से सोवियत जनता कुछ भी उठा नहीं रखेगी।'

……हमारे देशों की जनता के सम्बन्ध तथा उनकी पारस्परिक सद्भावना रूस की महान् अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय के बाद और बड़ी हद तक दृढ़ हुई। हमारी क्रान्ति ने समानता और आत्म निर्णय के जिन सिद्धान्तों की घोषणा की थी उनका अन्य देशों में व्यापक रूप से स्वागत किया गया, इन देशों में भारत भी सम्मिलित था। नवम्बर १९१८ में पहले भारतीय प्रतिनिधि मंडल का सोवियत रूस में आगमन, जिस प्रतिनिधि मंडल से वी. आई. लेनिन मिले थे, इस बात का प्रमाण था कि उस समय हमारे देश में होनेवाली घटनाओं के प्रति भारतीय जनता को कितनी गहरी दिलचस्पी थी।

सोवियत जनता ने भारतीय साहित्य के प्रति भी बहुत दिलचस्पी दिखलाई है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रतिभाशाली रचनाएँ जो हमारे देश में कई बार प्रकाशित की जा चुकी हैं, अब अलग से एक सम्पूर्ण संस्करण के रूप में प्रकाशित की जा रही है। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी ने महान् भारतीय कवि तुलसीदास की रचनाएँ प्रकाशित की हैं। प्रेमचन्द जैसे प्रमुख लेखक तथा कई अन्य लेखकों की रचनाओं का अनुवाद किया गया है तथा उन्हें प्रकाशित किया है। तथा पुश्री नेहरू की स्तक 'भारत की खोज' भी रूसी में प्रकाशित की गई। उनकी

पुस्तक से सोवियत पाठकों को आपके देश के बारे में अनेक नयी रोचक बातें मालूम हुईं

इस समय भारत तथा सोवियत संघ के सहयोग का स्वरूप सर्वांगीण है। सांस्कृतिक सम्बन्धों के अतिरिक्त यह सहयोग आर्थिक क्षेत्र में और शांति को सुनिश्चित बनाने तथा अन्तरराष्ट्रीय तनातनी को कम करने की समस्याओं के सम्बन्ध में भी पाया जाता है।

शांति को सुदृढ़ बनाने के ध्येय के लिए भारत ने जो योग दिया है सोवियत संघ उसका बड़ा आदर करता है। भारत, चीनी लोक गणतन्त्र तथा सोवियत संघ के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप कोरिया में युद्ध विरामसंधि पर हस्ताक्षर हुए और हिन्द चीन में युद्ध की ज्वाला ठंडी पड़ी। भारत चीन लोक गणतन्त्र को संयुक्तराष्ट्र संघ में उसका न्यायोचित स्थान देने की सक्रिय रूप से पैरवी करता है। भारत सरकार तैवान की समस्या को चीनी लोकगणतन्त्र के राष्ट्रीय हितों तथा न्यायोचित अधिकारों को ध्यान में रखते हुए शांतिपूर्ण ढंग से हल करने के पक्ष में है।

आक्रमणकारी सैनिक गुटबंदियाँ बनाने की नीति के खिलाफ और सामूहिक शांति की रक्षा के लिए भारतीय सरकार के प्रयत्नों के प्रति और अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं के हल करने के साधन को रूप में समझौते के तरीके के प्रति सोवियत संघ की जनता गहरा सम्मान करती है।

सोवियत संघ की वैदेशिक नीति राष्ट्रों के बीच शांति तथा मित्रता की नीति है, वह शांति के लिए और युद्ध के खिलाफ तथा दूसरे राज्यों के अन्दरूनी मामलों में विदेशी हस्तक्षेप के खिलाफ सक्रिय तथा निरन्तर संघर्ष की नीति है।

सोवियत संघ का कहना है कि किसी भी प्रकार का आक्रमण जनता की आत्मा और सम्मान पर प्रहार होता है और उसके फलस्वरूप विपुल भौतिक सम्पदा और असंख्य मनुष्यों का नाश होता है। जो दुनियां की सबसे प्रियतम वस्तु है।

हमें इस बात पर खेद है कि निश्स्त्रीकरण और आणुविक तथा हाइड्रोजन स्त्रों पर रोक-लगाने के प्रश्न की गुत्थी को सुलझाने के सम्बन्ध में हमारे प्रयत्नों

को अभी तक सकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं। वास्तव में संयुक्तराज्य अमरीका, इंगलैंड तथा फ्रांस उन सुझावों से मुकर गये हैं जो उन्होंने स्वयं इस वर्ष के आरम्भ में रखे थे।

सोवियत सरकार सैनिक गुट बनाने की नीति के विरुद्ध है और जो गुट बनाए जा चुके है उन्हें भंग कर देने के पक्ष में हैं।

हमारी राय में वर्तमानकाल में आर्थिक और सांस्कृतिक साथ ही वैज्ञानिक और प्रावैधिक अनुसन्धान के क्षेत्रों में सोवियत भारतीय सहयोग को बढ़ाने की पूरी-पूरी सम्भावनाएँ हैं। हम आपके साथ अपने आर्थिक और वैज्ञानिक अनुभवों का आदान-प्रदान करने के लिए प्रस्तुत हैं। यह हमारी जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप ही है।

एन० एस० ख्रुश्चेव

इस संसद भवन के गुम्बद के नीचे मैं ये कहे बिना नहीं रह सकता कि हमारे देशों की जनता की मित्रता कई शताब्दियों से विकसित होती आई है और वह कभी संघर्षों और गलत फहमियों से कलुषित नहीं हुई है।

'भारत अनेक सदियों से एक औपनिवेशक देश की स्थिति में रह चुका है। आपके आश्चर्यजनक देश ने जिसको उपनिवेशवादियों ने पददलित कर दिया था मानव जाति के सांस्कृतिक इतिहास में महान योगदान दिया है।

हमारे बुद्धिमान शिक्षक वी० आई० लेनिन ने १६२३ में लिखा था कि रूस, भारत, चीन तथा अन्य देश जहाँ दुनियाँ की आबादी का विपुल बहुमत रहता है अपने मुक्त संघर्ष में असाधारण वेग से अवतीर्ण हो रहे हैं। और उन्होंने इस संघर्ष के सफल परिणाम के विषय में भविष्यवाणी भी की थी। सच्चे अर्थ में भविष्यवाणी जैसे इन शब्दों की पूर्ण परिपुष्टि जीवन के अनुभवों द्वारा हो चुकी है।

चीन की महान जनता ने अपार एतिहासिक विजय प्राप्त की है और सफलतापूर्वक अपने स्वतन्त्र नूतन जीवन का निर्माण कर रही है। भारत की महान जनता की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का स्वागत समस्त प्रगतिशील मानव जाति

ने किया है। हिन्देशिया, वर्मा तथा अन्य देशों की जनता ने विदेशी आधिपत्य के जुए को उतार फेंका है।

टिकाऊ तथा स्थायी शान्ति रखने के लिए भारतीय जनता की आकाँक्षाओं को सोवियत जनता अच्छी तरह समझती है, क्योंकि इन कार्यों का सम्पादन एकमात्र शान्ति की परिस्थितियों के अन्दर ही हो सकता है।

हर देश की जनता को अपने मामलों में दूसरे राज्यों द्वारा बिना किसी हस्तक्षेप के अपने ढंग से जीवन बिताने का अधिकार है।

दूसरे देशों में साम्यवाद के सिद्धान्तों का निर्यात करने का आरोप हम पर लगाया जाता है। हमारे बारे में और भी बहुत सी वाहियात बातें कहीं जाती हैं। दबाये हुए राष्ट्र जब भी विदेशी उत्पीड़िकों के जुए को उतार फेंकने का प्रयास करते हैं तो कहा जाता है कि यह सब मास्को के इशारे पर हो रहा है।

समाजवाद के अपने चुने हुए योग पर चलते हुए सोवियत जनता ने अपने विकास में भारी सफलताएँ प्राप्त की हैं। लेकिन समाज के पुनर्निमाण सम्बन्धी अपने सिद्धान्तों को स्वीकार करने के लिए न हमने कभी किसी को वाध्य किया और न कर रहे हैं।

इस बात पर आश्चर्य हो सकता है कि सोवियत संघ के बारे में कौन यह जाल-फरेब गढ़ रहा है? ये प्रतिक्रियावादी हल्के हैं जो जनता को आतंकित करने तथा युद्ध ज्वर पैदा करने के लिए इन कुत्सापूर्ण मनगढ़न्त कहानियों का प्रयोग कर रहे हैं।

वे चाहते हैं कि हमारे देश के बारे में जनता की जानकारी न बढ़े, क्योंकि सोवियत समाजवादी जनतन्त्र संघ सम्बन्धी सच्चाई प्रतिक्रियावादी शक्तियों के लिए, उपनिवेशवादियों के लिए तथा उनके लिए जो मानव द्वारा मानव के शोषण को स्थायी बनाने के उद्देश्य से एक राष्ट्र द्वारा दूसरे के उत्पीड़न को कायम रखना चाहते हैं मौत सिद्ध होती है।

सोवियत संघ एक अखंड बहुजातीय राज्य है, जिसमें सोलह समान अधिकार प्राप्त जनतन्त्र हैं और जिनका अपना विकसित राष्ट्रीय अर्थतन्त्र और अपनी ही मौलिक जातीय संस्कृति है। हमारे देश में जाति और नस्ल के भेदभाव बिना

सभी नागरिकों की पूर्ण समानता के सिद्धान्त का कठोरतापूर्वक पालन किया जाता है। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में अधिकारों पर किसी तरह का नियन्त्रण, जाति या नस्ल के आधार पर नागरिकों के लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में विशेष सुविधाओं का संयोजन कानून द्वारा दंडय अपराध है। हमारे देश की सभी जातियाँ एक सुखी परिवार के सदस्यों की तरह रहती हैं। हमारे देश में बसने वाली जातियों की मैत्री सोवियत राज्य की शक्ति के महान स्रोतों में एक है।

'सारी दुनिया अब मानती है कि संस्कृति के विकास में हमारे देश ने महान प्रगति की है। अक्तूवर क्रान्ति से पूर्व जारकालीन रूस की ७६ प्रतिशत आबादी निरक्षर थी, लेकिन द्वितीय महायुद्ध के पहले ही हमारे देश में निरक्षरता का प्राय उन्मूलन हो चुका था।

वास्तव में हमारा देश अभी स्वर्ग नहीं हैं। अभी कई कमियाँ हमारे यहाँ हैं, लेकिन हमें उनका भास है और हम उन्हें दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं।

यह ठीक है कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के बारे में विभिन्न प्रकार की मन गढ़न्त बातें फैलाई जाती हैं। और यह इसलिए कुछ अजीव भी नहीं हैं, क्योंकि हमारी पार्टी मेहनतकश जनता के विशाल समूह को एक ऐसे बिल्कुल नवीन कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के लिए संगठित और एक जूट कर रही है, जो पुराने पूंजीवादी समाज से बुनियादी तौर पर भिन्न है।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति ने मानवता के लिए नये युग का द्वार उन्मुक्त किया। श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक भारत की खोज में लिखा है।

'सोवियत क्रांति ने मानव समाज को बहुत आगे बढ़ाया है और एक एसी ज्योति जगाई है जिसे बुझाना असम्भव है।

'इस क्रांति ने एक ऐसी नयी सम्पदा की नींव डाली है जिसकी दिशा में सम्भवत: सारी दुनिया आगे बढ़ेगी।'

सोवियत देश के जहाँ की जनता अपने श्रम का उपभोग करती है, अस्तित्व से ही डरने के कारण, शत्रुओं ने हमारे देश पर हिटलरी फासिज़्म रूसी एक पागल

कुत्ता छोड़ दिया। यह सर्व-विदित है कि उस आक्रमण का क्या अन्त हुआ। नात्सीवाद मुक्त मानवता के प्रति भयानक अभिपाप-कुचल दिया गया और हिट-लर न जाने कब का सड़-गल चुका।

हम देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्धों और सांस्कृतिक सम्बन्धों के विकास का समर्थन करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में तनाव को कम करने की दिशा में सोवियत संघ द्वारा किए गये प्रयत्न संसार में सर्व विदित हैं। हम शांति के, राज्यों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के, उनका आंतरिक ढाँचा चाहे जैसा भी हो, हामी हैं। हमारे राज्य की वैदेशिक नीति द्वारा अपनाए गए सभी मार्ग इस बात का अकाटच प्रमाण हैं।

दूसरे महायुद्ध के बाद प्रतिक्रियावादी क्षेत्र हमें अणुबम से डराना चाहते थे, हमें अधीनता में रखना चाहते थे। परन्तु यह सर्वविदित है कि उसका कोई भी परिणाम नहीं निकला। सोवियत वैज्ञानिकों ने अणुशक्ति प्राप्त करने का रहस्य जान लिया है। कुछ युद्ध रत विदेशी राजनीतिज्ञों की आक्रमक योजनाओं को पस्त करने के लिये हमें अणु और उद्जन बम बनाने पर विवश हो जाना पड़ा है। पर इस अस्त्र का निर्माण कर लेने के बाद तुरन्त ही हमने ये घोषणा की कि इसका कभी प्रयोग नहीं किया जाएगा। सोवियत संघ ने अणुशक्ति के शांति पूर्ण विकास में उपयोग करने का पहला उदाहरण सामने रखा। हमने अणु और उद्जन अस्त्रों के प्रयोग और निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में प्रस्ताव प्रस्तुत किए हैं और ऐसे प्रस्ताव भी रखे हैं कि सरकारें शपथ लें कि वे इस अस्त्र का प्रयोग नहीं करेंगी।

शांति के प्रयासों को नष्ट करने के लिये प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ सब कुछ कर रही हैं। लेकिन हमें विश्वास है कि जीत जनता और उन्हीं लोगों को उप-लब्ध होगी जो शांति के लिए प्रयत्नशील हैं, क्योंकि देशों में शांति समूची मान-वता का स्वप्न है। हमें प्रसन्नता है कि इस ध्येय में भारत जैसा अच्छा मित्र हमें प्राप्त है।

सोवियत जनता, साथ ही अन्य देशों की जनता भारतीय जनता भारतीय सरकार के शांति के लिए किए जानेवाले संघर्ष के ध्येय में नये युद्ध की धमकी

के विरुद्ध दिये महान योग की बहुत प्रशंसा करती है। भारत ने सक्रिय रूप से कोरिया और हिंदचीन में युद्धबन्दी का समर्थन किया। उन अड़चनों के बावजूद जो उत्पन्न की जा रही हैं भारत कोरिया व हिन्दचीन में युद्ध विराम की शर्तों के पालन पर नियन्त्रण सम्बन्धी अपने कठिन और उद्दात अन्तर्राष्ट्रीय उत्तर-दायित्वों को पूरा किए जा रहा है।

सोवियत जनता को समृद्धतम भारतीय संस्कृति में, जिसका सदियों पुराना इतिहास है, बड़ी दिलचस्पी है। भारतीय लेखकों के अनुवाद रूसी भाषा में किए गये हैं। महान भारतीय लेखक और समाजसेवी रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ हमारे देश में बहुत लोकप्रिय हैं। आधुनिक लेखकों की पुस्तकें हमारे देश में बार-बार दिलचस्पी से पढ़ी जाती हैं। सोवियत राज्य के अस्तित्वकाल में भारतीय गल्प-साहित्य का प्रकाशन २० लाख प्रतियों से अधिक हो चुका है। महात्मा गांधी जो आपके देश को और भारत की महान जनता को जानते थे और जिन्होंने आपके इतिहास में एक मुख्य भूमिका का निर्वाह किया है उनकी रचनाएँ भी रूसी में अनूदित हो चुकी हैं, उल्लेखनीय राजनेता और राजनीतिज्ञ भारत के प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की 'भारत की खोज' का प्रकाशन बहुत बड़ी संख्या में किया गया।'

पंजाब में

सोवियत संघ के प्रधान मन्त्री श्री एन० ए० बुल्गानिन और एन० एस० ख्रुश्चेव ने हमारे यहाँ का भाखड़ा बाँध देखा और विद्युत बनाने की मशीनरी भी, जिसे देखकर दोनों सोवियत नेता प्रसन्न हुए और भावी-भारत के लिए मंगल-कामना प्रकट की।

२२ नवम्बर को पंजाब के राज्यपाल द्वारा एक भोज दिया गया, जिसमें एन० एस० ख्रुश्चेव ने कहा—'हम शांतिपूर्ण निर्माण सम्बन्धी अपने अनुभव में आपको सम्मिलित करने के लिए तैयार हैं, पर कुछ समाचार पत्र उन लोगों के विचार व्यक्त करते हुए जो हमारे भारत आने से खीझे हैं अब ये लिख रहे हैं कि ख्रुश्चेव और बुल्गानिन धूर्त्त व्यक्ति हैं, वे प्राविधिक सहायता देने के वायदों से

भारतीय जनता को ठग सकते हैं और भारतीय जनता का उनसे सचेत रहना अच्छा है ।'

उन्होंने कहा—'लेकिन उन लोगों से जो ये बातें लिखते हैं हमारा कहना है—'क्या आप भारत के साथ मैत्री स्थापित करने में हमें चुनौती देते हैं ?" हम यह चुनौती स्वीकार करते हैं ! हम यहाँ क्या लेकर आए हैं ? हम आपके यहाँ खुले हृदय से और निष्ठापूर्ण इरादे लेकर आए हैं । हम आपसे कहते हैं, आप कल कारखानों का निर्माण करना चाहते है, हमें इस बात की खुशी है । शायद आपका अनुमान पर्याप्त नहीं है । आप हम से कहिए हम आपकी सहायता करेंगे । आप बिजलीघरों का निर्माण करना चाहते हैं ? यदि इस काम का आपको आवश्यक अभ्यास न हो और यदि आप प्राविधिक सहायता चाहते हैं तो हमसे मांगें हम आपकी सहाता करेंगे । आप अपने छात्रों और इंजीनियरों को प्रशिक्षण के लिए भेजना चाहते हैं । कृपया भेजिए ।'

उन्होंने युद्ध करानेवाले लोगों को लक्ष्य करके कहा—'जो तलवार लेकर हमसे लड़ने आएगा, उसका नाश तलवार के द्वारा ही होगा । हम अभी भी इस सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं । अतिथियों का हम स्वागत करते हैं, उनसे अच्छी तरह मिलते भेंटते हैं । लेकिन यदि कोई तलवार लेकर एक शत्रु के रूप में हमारे यहाँ आना चाहता है तो उसको याद रखना चाहिए जो हाल हिटलर का हुआ वही उसका भी होगा ।'

युद्ध के प्रति अपनी मनोभावना प्रकट करते उन्होंने कहा—'हम चाहते हैं हमें कभी भी अपने बमों और गोलों का प्रयोग नहीं करना पड़े । हम ट्रेक्टर बनाना और अन्य उपयोगी चीजें बनाना अधिक पसन्द करते हैं । लेकिन यदि हम निश्शस्त्र होते तो हमारा क्या हाल होता ? तब निश्चय ही दुश्मन हमारी बोटी बोटी काट लेते और हमारे पोते-पर-पोते कहते—'एक महान लेनिन था जो जनता के हितों को अच्छी तरह समझता था । उसी के नेतृत्व में सोवियत शासन की स्थापना हुई थी, और सोवियत राज्य का निर्माण हुआ, लेकिन उसके उत्तराधिकारी इस राज्य की स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकने में असमर्थ रहे । हम एक पवित्र वस्तु की तरह स्वतन्त्रता की रक्षा कर रहे हैं

जिससे ऐसा कभी न हो। इस तर्क की कभी अवहेलना नहीं की जा सकती। अतः आप भी उस चीज की रक्षा करें जिसको आपने कठिन संघर्ष के बाद प्राप्त किया है।'

बम्बई में

बम्बई में सोवियत नेताओं का अत्यन्त शानदार स्वागत हुआ और बम्बई नगर जो सदैव से भारत का गौरवशाली नगर रहा है उसने दिखा दिया कि हम आपस में चाहे कैसे ही रहे, मगर मित्र या दुश्मन के लिए सब एक साथ होते हैं। मित्र का स्वागत करने में हम एक हैं और शत्रु का मुकाबिला करने में भी एक हैं।

स्मरण रखने की बात है बम्बई में सोवियत नेताओं के आगमन से दो दिन पूर्व ही भारी गड़बड़ी भाषावार प्रान्त बनाने के सिलसिले में हुई थी मगर जब सोवियत नेता वहां पहुँचे तो सारा बम्बई उनके दर्शनों के लिए सड़कों पर निकल आया! बम्बई नगर के मेयर की लड़कियों ने उन पर सच्चे मोतियों की वर्षा की।

बम्बई के नागरिकों की ओर से उनके स्वागत के निमित्त जो सभा की गई उसमें बोलते हुए श्री ख्रुश्चेव ने कहा—

'भारत की जनता के साथ मैत्रीपूर्ण साक्षात्कारों के दौरान में इन दिनों हमारे हृदय में जो प्रेमपूर्ण भावनाएँ उठ रही हैं, उन्हें शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।'

बम्बई राज्य के मुख्य मन्त्री मुरारजी देसाई द्वारा आयोजित स्वागत समारोह में सोवियत संघ के प्रधान मन्त्री श्री एन० ए० बुल्गानिन ने कहा—

'सारी दुनिया की जनता शांति चाहती है। सभी देशों की जनता अनागत पीढ़ी के लिए एक शांतिपूर्ण व सुखी जीवन प्राप्त करने का संकल्प कर चुकी है। लेकिन इस समय हम सब देशों की जनता की समस्याओं के बारे में बात न करके केवल उन समस्यओं की बात करें जो हमारे दोनों देशों की जनता के—महान भारतीय जनता और महान् सोवियत जनता के सामने है। आइये आज हम कहें—

'हमारे देशों की जनता की दृढ़ मैत्री अमर हो।'

बंगलौर में

बंगलौर के नागरिकों द्वारा किए गये स्वागत समारोह में एन० एम० ख्रुश्चेव ने पूंजीपति देशों मे अपनी समानता बतलाते हुए कहा—'हम इस बात पर बहस कर सकते हैं कि किसके यहाँ अधिक बुद्धिजीवी, अधिक इंजीनियर हैं—सोवियत संघ में या किसी पूंजीवादी राज्य में ?'

पूंजीवादी राज्यों के गाली गलौच के गलत प्रचार को उन्होंने किस प्रकार ग्रहण किया इसके सम्बन्ध में उन्होंने कहा—'जो चाहो लिखो, जो मर्जी हो कहो—कुत्सा सुनाम को कलंकित नहीं कर सकती। मैं आपको अपनी एक रूसी लोकोक्ति बतलाता हूँ—कुत्ते भौंकते रहते हैं, पर कारवाँ चला जाता है, हवा सनसनाती रहती है पर आदमी चला जाता है। हमभी अपने मार्ग पर चल रहे हैं, एक ऐसे मार्ग पर जिस पर मानव जाति ने अभी तक अपने चरण नहीं रखे हैं—समाजवादी निर्माण का मार्ग। हमारा देश समस्त मानव जाति के सुखी भविष्य के लिए पथ-प्रशस्त कर रहा है।'

भारत को सहयोग देने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा—

'हम कहते हैं सम्भव है हमारे अनुभव में से कुछ आपके लिए उपयोगी हों। यदि ऐसी बात है तो उसका उपयोग कीजिए। यदि वह उपयोगी न हों तो उसे न लीजिए। हम किसी के ऊपर कोई चीज बलात नहीं लादते, हम कोई राजनीतिक वचन बद्धता नहीं चाहते। हम आपसे इतने स्पष्ट रूप में क्यों बातें करते हैं ? क्योंकि हम सच्चे हृदय से आपको अपने भाई समझते हैं।'

उन्होंने अपने इसी भाषण में एक स्थान पर कहा—

'हमारी हार्दिक कामना है कि भारत आर्थिक दृष्टि से एक महान एवं शक्तिशाली राज्य बनें, जैसा महान राज्य आज वह अपनी आत्मिक शक्ति, संस्कृति एवं नैतिक सहायता की दृष्टि से है। हमारी कामना है कि भारत में उच्चकोटि का विकसित उद्योग तथा उन्नति कृषि हो और उसकी जनता का जीवन-मान ऊँचा हो। अपनी तरफ से हम इस उदात्त एवं भव्यकार्य में आपके साथ सहयोग करने को तैयार हैं।'

मद्रास में

मद्रास की जनता ने हृदय खोलकर सोवियत नेताओं का स्वागत किया और अपने अगाध प्रेम को प्रकट करके बता दिया कि भारतीय जनता शांति के लिए महान सोवियत संघ की जनता के कंधे-से-कंधा मिलाकर आगे बढ़ेगी। जनता द्वारा स्वागत सभा में मार्शल बुल्गानिन और ख्रुश्चेव ने भाषण दिये जिसमें उन्होंने भारतीय जनता को अपनी शुभकामनाएँ और श्रेष्ठ कार्य के लिए बधाई दी।

कलकत्ता में

कलकत्ता में वायुयान के अड्डे पर बंगाल के राज्यपाल मुख्यमंत्री सहित अन्य समस्त मंत्री और उप-मंत्री तथा तमाम बड़े अफसर और प्रान्त के बड़े-बड़े नागरिकों सहित लाखों लोग उनके स्वागत के लिए उपस्थित थे।

जब खुली कार में दोनों सोवियत नेता बंगाल सरकार के अतिथि भवन को चले, तो मार्ग में जन समुद्र ठाठें मार रहा था। सड़क इतनी भरी हुई थी कि कार चलाना कठिन हो रहा था। जब कार को आगे बढ़ाने का मार्ग न मिला तो एक दूसरी सड़क से इन नेताओं को अतिथि भवन पहुँचाया गया था। हिन्दुस्तान टाइम्स के शब्दों में सड़क पर सोवियत नेताओं के दर्शन के हितार्थ आये लोगों की संख्या पचास लाख के लगभग थी।

३० नवम्बर को जब नागरिकों की ओर से इनके स्वागत समारोह का प्रबन्ध होने की तैयारी हो रही थी तो कहते हैं लोगों ने उन्हें नजदीक से देखने के लिए सवेरे से ही अपना स्थान आगे बैठने के लिए पाने को वहां पहुँचना आरम्भ कर दिया था। इस स्वागत समारोह में अखबारों की रिपोर्टों के आधार पर तीस लाख से अधिक जनता उपस्थित थी।

भारत ही क्या विश्व का रिकार्ड तोड़ दिया गया था कलकत्ते में, किसी के स्वागत में दुनिया के किसी भी शहर में इतने आदमी इतने उल्लास के साथ कभी एकत्रित नहीं हुए थे। पंडित नेहरू की अध्यक्षता में ये स्वागत समारोह सम्पन्न हुआ।

स्वागत का उत्तर देते हुए श्री एन० एस० ख्रुश्चेव ने कहा—

'भारत की जनता के समक्ष जो युगों पुराने औपनिवेशिक उत्पीड़न से अपने को मुक्तकर स्वतंत्र विकास के पथ पर आरूढ़ है, स्वतंत्र राष्ट्रीय विकास तथा नवजीवन निर्माण के भव्य मार्ग उन्मुक्त होगये हैं।

'भारत ने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की है और इस प्रकार आपके महान देश के भावी विकास की नींव डाली गई है।'

'एशिया के राष्ट्रों की एक जुटता हमें विशेष रूप में आनन्दित करती है, जिन्होंने विश्व उपनिवेशवाद पर निर्णायक आक्रमण कर महती विजय प्राप्त की है।'

गोआ के संबंध में उन्होंने कहा—

'अभी भी ऐसे देश हैं जो स्वस्थ शरीर पर जोंक की तरह दूसरे देश पर चिपटे हुए हैं। मेरा मतलब पुर्तगाल से है जो गोवा को छोड़ना नहीं चाहता, जो भारत की इस न्याय सम्मत भूमि को अपने शासन से मुक्त करना नहीं चाहता।'

'लेकिन आज या कल ये होकर रहेगा और गोवा विदेशी शासन से अपने को मुक्तकर भारतीय गणतंत्र का अभिन्न अंग हो जावेगा।'

जयपुर में

जयपुर में भी सोवियत नेताओंका शानदार स्वागत किया। जिस प्रकार बम्बई में उन्हें खद्दर की टोपियाँ भेंट की गईं उसी प्रकार यहाँ राजस्थानी साफा भेंट किए गये। स्वागत के निमित्त जब जयपुर में फूलों की कमी महसूस की गई तो देश के दूसरे भागों से फूल मँगाए गये।

काश्मीर में

काश्मीर की यात्रा का एक विशेष महत्त्व इसलिए भी है कि काश्मीर की अन्तरराष्ट्रीय स्थिति ऐसी है कि कोई भी विदेशी राष्ट्र उसके बारे में अपनी सम्मति स्पष्ट नहीं दे पाता। पर काश्मीर पहुँचने पर मार्शल बुल्गानिन ने अपने पहले भाषण में ही कहा—'भारत की यात्रा जो हमने पूरी की है वह हमारे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। हम स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि भारत के बारे में हमारा ज्ञान अल्प था। लेकिन हमारे लिए जो व्यवस्था की गई उससे

हम सारे दक्षिणी तथा मध्यभारत को देख सके और इसके लिए हम अनुग्रहीत है। लेकिन भारत के उत्तरी भाग को देखे बिना हम अपने दिमाग में भारत की पूरी तस्वीर नहीं खींच सकते थे।'

इस तरह सोवियत नेताओं ने स्पष्ट रूप से काश्मीर के विवाद ग्रस्त प्रश्न पर अपनी स्पष्ट राय देदी और खुले शब्दों में कह दिया कि काश्मीर भारत का ही एक अंग है।

श्री एन० एस० ख़ुश्चेव ने काश्मीर के मुख्य मन्त्री बख्शी गुलाम मुहम्मद द्वारा आयोजित अभिनन्द समारोह में उन लोगों को बिल्कुल नंगा कर दिया जो काश्मीर के प्रश्न को खामखाँ विवाद ग्रस्त बनाये हुए हैं। उन्होंने स्वागत समारोह के उत्तर में धन्यवाद देते हुए कहा—

'काश्मीर का यह तथाकथित सवाल आखिर क्यों पैदा हुआ ? इस प्रश्न को जनता ने तो उठाया नहीं। कुछ राज्य उन देशों के लोगों के बीच विद्वेष फैलाना लाभप्रद समझते हैं जो उपनिवेशवाद से तथा विदेशी उत्पीड़कों के ऊपर अपनी युगों पुरानी निर्भरता से अपने को मुक्त कर रहे हैं।

ऐसा करते समय इजारेदार केवल अपने लक्ष्यों का ही अनुसरण करते हैं। इन देशों को आर्थिक दृष्टि से और भी कसकर अपने कब्जे में लाने के लिए तथा अपनी मर्जी का गुलाम बनाने के लिए वे जनता के एक तबके को दूसरे के खिलाफ भड़काते हैं।'

काश्मीर के बारे में उन्होंने सोवियत नीति स्पष्ट करते हुए कहा—

'इस मसले के सम्बन्ध में हमारी स्थिति पूर्णतया स्पष्ट है। काश्मीर राज्य संबंधी इस मसले की बाबत सोवियत संघ का सदा ये विचार रहा है कि इसका निर्णय स्वयं काश्मीर की जनता द्वारा होना चाहिए क्योंकि यह बात जनवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल होगी और इससे क्षेत्र की जातियों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध सुदृढ़ होंगे।'

उन्होंने कहा—'जैसा कि तथ्यों द्वारा सिद्ध है, काश्मीर की जनता साम्राज्य वादी शक्तियों के हाथ का खिलौना नहीं बनना चाहती। लेकिन काश्मीर के मस्ले के सम्बन्ध में पाकिस्तान की नीति का समर्थन करने की आड़ में कुछ

शक्तियाँ बिल्कुल यही करने की कोशिश कर रही हैं।

'भारतीय गणतन्त्र के एक राज्य के रूप में काश्मीर के मसले का फैसला काश्मीरी जनता स्वयं पहले ही कर चुकी है। यह जनता का निजी मामला है।'

उन्होंने पाकिस्तान की मनोवृत्ति का जिकर करते हुए कहा—'पाकिस्तान के परराष्ट्र मन्त्रालय ने सोवियत राजदूत को बुलाकर उन्हें ये सुझाव दिया कि मैं और मेरे मित्र बुलगानिन काश्मीर जाने का विचार त्याग दें और श्रीनगर तथा आपके राज्य के अन्य भागों में आने के लिए आपके राज्य के अध्यक्ष का निमंत्रण अस्वीकार कर दे।'

उन्होंने कहा—'हम इस चीज को दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप करने की अभूतपूर्व मिसाल समझते हैं। इसके पहले कभी भी दूसरे राज्यों ने हमसे ये कहने की जुर्रत नहीं कि हमें कहाँ और किस लिए जाना चाहिए तथा किसको अपना मित्र बनाना चाहिए।'

व्यस्त दिवस

१२ दिसम्बर को हैदराबाद हाऊस में उनका राष्ट्र की ओर से सत्कार किया गया, जिसमें राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्री और कुछ विशेष व्यक्ति सम्मिलित थे।

१३ दिसम्बर को मार्शल बुलगानिन और ख्रुश्चेव ने रेडियो से भारतीय जनता के लिए भाषण दिए, जिनमें उन्होंने भारत और सोवियत संघ की मित्रता की महत्ता पर प्रकाश डाला, और विश्व शांति की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये कहा कि भारत और सोवियत संघ की मित्रता ही विश्व शांति के लिए एक गारंटी है। उन्होंने भारत की समस्त जनता को धन्यवाद दिया, जिसने उनका खुले हृदय से स्वागत किया था।

इसीदिन एन० एस० ख्रुश्चेव ने भारतीय संसद के सदस्यों—संसदीय हिन्दी परिषद के सदस्यों के समक्ष एक भाषण दिया।

१४ दिसम्बर को पत्रकारों के सम्मेलन में दोनों नेताओं ने भाषण दिये और उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नों के सन्तोषप्रद उत्तर दिए।

विदाई की वेला

विदाई का समय भी बड़ा करुणाजनक था, लगता था सोवियत नेता भारत के ही बेटे हैं, पंडित नेहरू का हृदय भी निकला पड़ता था। दोनों नेताओं ने संक्षिप्त भाषण देकर विदा ली।

श्री ख्रुश्चेव ने अपने मर्मान्त भाषण में कहा—'प्यारे मित्रो ! कुछ ही मिनटों में हम भारत की महान जनता की राजधानी से बिदा ले रहे हैं।'

उन्होंने कहा—

'प्यारे मित्रो !

'जब श्री नेहरू सोवियत संघ का दौरा करने के बाद हमारे देश और हमारी जनता से बिदा हो रहे थे तो उन्होंने कहा था कि वह अपने हृदय का एक भाग हमारे देश में छोड़े जा रहे हैं। और आज आपसे, भारत की महान् जनता से बिदा होते समय मैं अनुभव कर रहा हूँ कि ये सीधे-सादे किन्तु गम्भीर अर्थपूर्ण शब्द कितने सही हैं। मैं भी अपने हृदय का एक टुकड़ा यहीं भारत में छोड़े जा रहा हूँ। भारत तथा उसकी जनता के प्रति प्रेम का उत्कट भाव हमारे हृदय में पैदा हुआ है और दृढ़तापूर्वक बहुमूल्य हो गया है। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि हमने यहाँ बहुत-से भले मित्र पाये हैं, और हमारे देशों के बीच मित्रता उत्तरोत्तर सुदृढ़ हो रही है।

'हमारी जनता और देशों की मैत्री कभी भी शत्रुता अथवा संघर्ष से धुंधली नहीं पड़ी है हमारा दृढ़ विश्वास है कि भविष्य में भी ऐसा कभी नहीं होगा। हम अपने देशों की मैत्री को बढ़ाने और सुदृढ़ बनाने के लिए कुछ भी नहीं उठा रखेंगे जिससे कि यह मैत्री चिरन्तन एवं अटूट हो।

प्यारे मित्रो, फिर मिलेंगे !

नमस्ते !

मित्रता की गारंटी

संयुक्त वक्तव्य

सोवियत संघ की सरकार के निमंत्रण पर भारत के प्रधान मंत्री जून, १९५५ में सोवियत संघ पधारे। उनका वहाँ हार्दिक स्वागत हुआ और उनकी इस यात्रा ने दो देशों की जनता के बीच मैत्री एवं सद्भाव को सुदृढ़ बनाया। इस यात्रा के अन्त में भारत के प्रधान मंत्री तथा सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष ने २२ जून, १९५५ को एक संयुक्त वक्तव्य निकाला।

भारत सरकार द्वारा दिये गये निमंत्रण के जवाब में सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष श्री एन० ए० बुल्गानिन, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष-मंडल के सदस्य श्री एन० एस० ख्रुश्चेव सोवियत संघ के अन्य सरकारी प्रतिनिधियों के साथ १९५५ के नवम्बर-दिसम्बर में भारत पधारे। वे भारत में जहाँ भी गये हैं, इस देश की जनता ने उनका उत्साहपूर्ण स्वागत किया है। उनकी इस यात्रा ने दो देशों की जनता को बाँधनेवाले मैत्री सम्बंधों को सुदृढ़ बनाया है। श्री बुल्गानिन और श्री ख्रुश्चेव ने भारत में कृषि उद्योग तथा नदी-घाट सम्बंधी विविध निर्माण कार्यों, सामुदायिक योजनाओं, राजकीय कृषिशालाओं तथा अन्य विकास केन्द्रों को देखा है।

श्री जवाहरलाल नेहरू की सोवियत संघ की यात्रा, तथा सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष श्री एन० ए० बुल्गानिन और सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष-मंडल के सदस्य श्री एन० एस० ख्रुश्चेव की भारत-यात्रा के फलस्वरूप उन्होंने एक-दूसरे देश की जनता और उसकी जीवन-पद्धतियों, समस्याओं, उपलब्धियों और आकांक्षाओं के बारे में निजी रूप से कुछ जानकारी प्राप्त की है जिसकी परिणति उनमें तथा उनकी जनता के बीच पारस्परिक सम्मान, सदिच्छा एवं सहिष्णुता पर आधारित समझबूझ की स्थापना में हुई है।

२२ जून, १९५५ को निकाले गये संयुक्त वक्तव्य में "पंचशील" नाम से विख्यात पांच सिद्धान्तों में दृढ़ निष्ठा प्रकट की गई। इन सिद्धान्तों के अनुसार राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं में अन्तर होते हुए भी देश पारस्परिक सम्मान तथा आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप के आधार पर एक-दूसरे से सहयोग कर सकते हैं और करना चाहिए तथा शांति एवं मानव-जीवन की

परिस्थितियों के सुधारने के समान आदेशों की प्राप्ति के लिए सक्रिय एवं शांति-पूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का अनुसरण वे कर सकते हैं और करना चाहिए।

जब से इन पांच सिद्धान्तों का उद्घोष हुआ है, तबसे अधिकाधिक देशों ने उन्हें स्वीकार किया है और उनके साथ सहमति प्रकट की है। बान्डुंग सम्मेलन में भाग लेने वाले राष्ट्रों ने सर्वसम्मति से एक घोषणा स्वीकृत की जिनमें इन सिद्धान्तों पर बल दिया गया जो अब राष्ट्रों के बीच सहयोग के लिए व्यापक रूप में दृढ़ आधार माने गये हैं।

श्री एन० ए० बुलगानिन और श्री एन० एस० ख़ुश्चेव की वर्तमान भारत-यात्रा के दौरान में भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के ऊपर उन्मुक्त एवं सुस्पष्ट विचार-विमर्श हुए हैं। इन विचार-विमर्शों के फलस्वरूप उन्होंने अपने इस दृढ़ विश्वास पर पुनः बल दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का नियमन इन पाँच सिद्धान्तों द्वारा होना चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी में कमी करने तथा राष्ट्रों के बीच शांति एवं सहयोग के लक्ष्य को बढ़ावा देने के लिए हर प्रयास होना चाहिए। जुलाई, १९५५ में सरकारों के प्रधानों के जेनेवा-सम्मेलन में महान् शक्तियों ने युद्ध की व्यर्थता स्वीकार की जो पारमाणविक तथा उद्जन अस्त्रों के विकास के फलस्वरूप मानव-जाति के ऊपर केवल विपत्ति ढा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े तय करने के लिए युद्ध का सहारा बिल्कुल ही नहीं लेने के सिद्धान्त की इस आधारभूत मान्यता का संसार के राष्ट्रों ने सहर्ष स्वागत किया और इसके फलस्वरूप तनातनी में अत्यधिक कमी हो गई। जबकि यूरोप और एशिया की मुख्य समस्याओं का समाधान अभी भी होना बाकी है, युद्ध को निषिद्ध ठहराने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि रुख में परिवर्तन होगया और वार्ता द्वारा समझौते के प्रयास आरम्भ हुए। सोवियत संघ और जर्मन संघात्मक प्रजातन्त्र के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हुए। राजदूतीय स्तर पर संयुक्त राज्य अमरीका और चीनी लोक गणतन्त्र के बीच वार्ताओं का सूत्रपात हुआ जो अभी भी जारी है। विगत अगस्त महीने में पारमाणविक शक्ति शांतिपूर्ण उपयोग सम्बन्धी सम्मेलन ने सफलतापूर्वक अपने विचार-विमर्श समाप्त किये, और बृहत् परिषद ने अन्त-

र्राष्ट्रीय पारमाणविक शक्तिसूत्र की स्थापना के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया है।

समझौता-वार्ता की इस प्रक्रिया को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सरकारों के प्रधानों के जेनेवा-सम्मेलन से जो विगत जुलाई महीने में हुआ था यह निर्देश दिया कि तत्सम्बधी देशोंके परराष्ट्र मन्त्रियों का सम्मेलन आयोजित हो। परराष्ट्र-मन्त्रियों का यह सम्मेलन अभी हाल में जेनेवा में हुआ है। सम्मेलन में विचार-विमर्शगत समस्याओं के ऊपर समझौता नहीं हुआ और सरकारों के प्रधानों के सम्मेलन से जो बड़ी-बड़ी आशाएं पैदा हुई थीं अभी तक पूरी नहीं हुई हैं। लेकिन इस सम्मेलन के फलस्वरूप उन समस्याओं को और भी स्पष्ट रूप में समझने में मदद मिली है जो संसार के सामने है, और आधारभूत तथ्य यह है कि इन समस्याओं का समाधान एकमात्र शांतिपूर्ण पद्धतियों द्वारा तथा शांतिपूर्ण समझौता-वार्ता द्वारा ही हो सकता है, यदि युद्ध को निषिद्ध ठहराना है, जैसा कि सर्वस्वीकृत है कि इसको निषिद्ध ठहराना ही होगा। अतएव जेनेवा में परराष्ट्र मन्त्रियों के सम्मेलन के नतीजे से होने वाली निराशा केवल अस्थायी होनी चाहिए, और अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी में ढिलाई करने तथा एकमात्र वार्ता द्वारा मतभेदों को हल करने की पद्धति पर निर्भर रहने के लिए हर प्रयास जारी रहना चाहिए। दोनों देशों के नेता यह आशा व्यक्त करते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका तथा चीनी लोक गणतन्त्र के बीच राजदूतीय स्तर पर जो वार्ताएं जारी हैं उनसे न केवल उन समस्याओं का समाधान होगा जिन पर उनके बीच विचार-विमर्श हो रहा है, वरन् उच्च स्तरीय वार्ताओं के द्वारा और भी व्यापक रूप में सद्भाव स्थापित होगा। उनका दृढ़ विश्वास है कि एशिया में तब तक स्थायी शांति नहीं हो सकती जब तक चीनी लोक गणतन्त्र को संयुक्त राष्ट्र संघ में अपना न्यायोचित स्थान मिल नहीं जाता। इस सुस्पष्ट तथ्य को स्वीकार करने में जो विलम्ब हो रहा है उस पर वे खेद प्रकट करते हैं। उनकी यह उत्कट आशा है कि एशिया के दूरपूर्व की अन्य समस्याएँ भी समझौते द्वारा यथाशीघ्र हल हो जाएं, अर्थात् चीनी लोक गणतन्त्र के समुद्र तटीय द्वीपों और तैवान सम्बन्धी न्यायसम्मत अधिकारों की पूर्ति हो, तथा कोरियाई जनता के राष्ट्रीय अधिकारों की मान्यता

के आधार पर एवं दूरपूर्व में शांति के हितों के अनुकूल कोरियाई समस्या को हल किया जाऐ ।

पिछले साल जेनेवा में हिन्दचीन के ऊपर जो सम्मेलन हुआ था उसका सोवियत संघ के नेताओं और भारत के प्रधान मन्त्री ने स्वागत किया था। इस सम्मेलन ने हिन्दचीन में संकटपूर्ण युद्ध का अन्त किया तथा हिन्दचीन के राज्यों की समस्याओं के समाधान की पद्धति सुनिश्चित की थी । वे इस बात का सखेद उल्लेख करते हैं कि वियतनाम में जेनेवा-समझौते को कार्यान्वित करने के मार्ग में बाधाएँ खड़ी की हैं तथा लाउस में जेनेवा-समझौते के कार्यान्वियन के सम्बन्ध में भी कठिनाइयां पैदा हो गई हैं । इन समझौतों के भंग हो जाने के अत्यन्त भयंकर परिणाम होंगे न केवल हिन्दचीन के लिए वरन् सारी दुनिया के लिए । अतएव दोनों देशों के नेता जेनेवा-समझौतों के सफल कार्यान्वियन के मार्ग की समस्त रुकावटों को दूर करने तथा इन समझौतों के बन्धनों को अक्षरशः एवं तत्वतः कार्यान्वित करने में पूर्णतः सहयोग करने के लिए तत्सम्बन्धी समस्त पक्षों और हितों से अपील करना चाहते हैं ।

उनका यह दृढ़ मत है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के मामले में सार्वजनिकता के सिद्धान्त लागू किये जाएँ । जब तक ऐसा नहीं होता तब तक संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व जन-समुदाय की पूर्ण प्रतिनिधिक संस्था नही हो सकता । इसलिए वे एक साथ अट्ठारह राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की बृहत् सभा की सिफारिश का स्वागत करते हैं और यह निष्ठापूर्ण आशा व्यक्त करते हैं कि सुरक्षा-परिषद शीघ्र ही यह सिफारिश स्वीकार करेगी और उस पर अमल करेगी ।

विश्व-शांति स्थापित करने तथा कल्पनातीत विपत्तिपूर्ण एक और विश्व-युद्ध की सृष्टि करने वाली परिस्थितियों का उन्मूलन करने के लिए निश्शस्त्रीकरण के सिवाय और कोई दूसरा मार्ग नहीं है । शस्त्रास्त्रों के वर्तमान पैमाने को बढ़ाना या उसे जारी रखना युद्ध को हमेशा न्योता देने के समान है और इससे भय पैदा होने के साथ-साथ सामूहिक विनाश के नवीनतम प्रकार के शस्त्रास्त्र तैयार करने के लिए होड़ होती है । विनाश की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई क्षमतायुक्त शस्त्रास्त्रों के

आविष्कार एवं संग्रह के अनुपात में निश्शस्त्रीकरण की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। युद्ध को पूर्णत: निषिद्ध ठहराने की व्यापक इच्छा के फलस्वरूप यह आवश्यक हो जाता है कि निशस्त्रीकरण के मामले में निश्चित, उचित एवं अविलम्ब कार्यवाहियाँ की जाएं। इस विषय में पहले ही एक बड़ी हद तक मतैक्य स्थापित हो चुका है, और कोई वजह नहीं मालूम होती कि शेष कठिनाइयों पर शीघ्र ही विजय क्यों न प्राप्त की जाय यदि लक्ष्य स्थायी शांति है। विशेषकर दोनों देशों के नेता अपने इस दृढ़ विश्वास पर पुनः बल चाहते हैं कि पारमाणविक एवं उद्जन शस्त्रों के निर्माण, प्रयोग एवं परीक्षण के ऊपर बिना शर्त रोक लगाई जाए। इसके साथ-साथ प्रचलित अस्त्रों में अनिवार्यत: ठोस कमी करना और इस प्रकार के निषेध एवं निश्शस्त्रीकरण के कठोर कार्यान्वियन को सुनिश्चित बनाने के लिए कारगर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण स्थापित करना आवश्यक है। जब तक यह नहीं होता युद्ध का भय दुनिया को आतंकित एवं उत्पीड़ित करता रहेगा और जनता को इस बात में सन्देह होगा कि वस्तुत: शांति का प्रयास किया जा रहा है।

सोवियत संघ के नेता तथा भारत के प्रधान मन्त्री इस विषय में सहमत हैं कि शान्ति एवं सुरक्षा को सुनिश्चित बनाने का तरीका सैनिक गुटबन्दियाँ या क्षेत्रीय सैनिक गुट तैयार करना नहीं। इस प्रकार की गुटबन्दियों ने सम्बन्धित देशों के शांतिपूर्ण विकास में रुकावट डालने के साथ-साथ शीतयुद्ध की सीमाओं का विस्तार किया हैं, सम्बन्धित क्षेत्रों में अस्थिरता पैदा की है तथा भय और तनाव बढ़ाया है। राज्यों के सामूहिक प्रयासों के द्वारा ही शान्ति एवँ वास्तविक सुरक्षा सुनिश्चित बनाई जा सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय भय और तनाव में कमी करने की सर्वाधिक कारगर पद्धतियों में एक है पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव के मार्ग में आने वाली रुकावटों को दूर करना। इस उद्देश्य के लिए देशों के बीच साँस्कृतिक एवं आर्थिक सम्पर्कों को बढ़ावा देना चाहिए। दोनों देशों के नेताओं ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया है कि वैज्ञानिकों, प्राविधिज्ञों, अर्थशास्त्रियों, संसद-सदस्यों, लेखकों तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों के अन्य कार्यकर्ताओं के नियमित रूप से एक-दूसरे देश में आने-जाने से

दोनों देशों की जनता को एक-दूसरे की जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक अवसर प्राप्त हो रहा है। वे आशा करते हैं कि एक ऐसे आधार पर जिससे दोनों देशों की विभिन्न जीवन-पद्धतियों के लिए समझबूझ एवं सम्मान को प्रोत्साहन मिले पारस्परिक सम्पर्कों के लिए इस प्रकार के अवसरों में अबोध वृद्धि होगी

अतएव सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद के अध्यक्ष, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष-मण्डल के सदस्य तथा भारत के प्रधान मन्त्री भारत में भिलाई इस्पात कारखाने के निर्माण में दोनों देशों के बीच सहयोग के विकास का, तथा उन वार्त्ताओं का स्वागत करते हैं जो कई अन्य निर्माण योजनाओं के सम्बंध में हो रही हैं। भारत की द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान में जिसमें भारी उद्योग के विकास पर जोर दिया गया है सहयोग के ऐसे और भी अधिक अवसर मिल सकते हैं। वे इस बात को वांछनीय समझते हैं कि जब आवश्यक प्रारम्भिक कार्य पूरा हो जाए, तो दोनों देशों के योग्य प्रतिनिधि आर्थिक एवं प्राविधिक सहयोग के और अधिक परस्पर लाभपूर्ण रूपों पर विचार करने तथा जरूरत पड़ने पर खास विषयों में मतैक्य स्थापित करने के लिए मिलें।

श्री बुल्गानिन और श्री ख्रुश्चेव की भारत-यात्रा न केवल दो देशों को एक-दूसरे के निकट लाने की दृष्टि से वरन् विश्व-शांति के लक्ष्य को आगे बढ़ाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

सोवियत संघ की मन्त्रिपरिषद के अध्यक्ष श्री एन० ए० बुल्गानिन, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष-मण्डल के सदस्य श्री एन० एस० ख्रुश्चेव भविष्य में अपने विश्वास का, तथा न केवल अपने दोनों देशों की वरन् संसार की जनता के हितार्थ शांति को बढ़ावा देने में अपनी शक्तियों को लगा देने के लिए अपने दृढ़ संकल्प का नये सिरे से उद्‌घोष करते हैं।

एन० ए० बुल्गानिन,
सोवियत संघ की
मन्त्रिपरिषद् के अध्यक्ष।

जवाहरलाल नेहरू,
भारत के प्रधान मन्त्री।

हमारे अन्य प्रकाशन

एक ख़त, एक ख़ुश्बू	(कहानी)	कृष्णचन्द्र एम० ए०	३॥)
मिट्टी का कलंक	(उपन्यास)	यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'	३)
राख की परतें	(उपन्यास)	कमल शुक्ल	४)
एक ही पतवार	(उपन्यास)	शिवव्रतलाल वर्मन	३।)
सीमान्त	(कहानियां)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२॥)
मेरे नाटक	(नाटक)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२॥)
कौन किसी का ?	(उपन्यास)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२।)
चाँद सितारे	(कहानियां)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२॥)
समाज का अत्याचार	(उपन्यास)	शरतचन्द्र चटर्जी	२॥।)
चार सौ बीस	(उपन्यास)	शौकत थानवी	३।)
कश्मीर की बेटी	(उपन्यास)	जमनादास 'अख्तर'	३।)
इन्सान जो मर न सका	(उपन्यास)	ओमप्रकाश गुप्त	३॥)
प्रेम पुजारिन	(उपन्यास)	पं० सुदर्शन	२)
शाही लकड़हारा	(उपन्यास)	शिवव्रतलाल वर्मन	३॥)
जीना सीखो	(अध्यात्मिक)	देसराज और गन्धर्व	२॥)